बहन भागीरथी को—

'भैया-दूज' की भेंट

पुस्तक की रामकहानी

इस पुस्तक की रामकहानी भी बड़ी विचित्र है। सत्याग्रह आन्दोलन शुरू होने के पहले, जब मैं कुछ दिनों के लिए छुट्टी पर, काशी जाने लगा तो मैंने अपनी एक बहन से पूछा कि तुम्हारे लिए काशी से क्या लाऊँ? उसने कुछ सोच कर कहा—"मेरे योग्य, स्त्रियोपयोगी पुस्तकें ले आना।" आते समय मैंने, काशी में, कई बड़े-बड़े पुस्तक-विक्रेताओं से तलाश कराया; प्रकाशित स्त्रियोपयोगी पुस्तकें देखीं पर मेरा मन किसी से न भरा। उधर अपनी छोटी बहन भगवती को भी मैं उसके भावी जीवन के लिए दूर बैठे-बैठे तैयार करना चाहता था; इधर बहुत दिनों से मेरी इच्छा भी स्त्रियों के विषय में एक पुस्तक लिखने की थी। स्त्रियोपयोगी पुस्तकों का हिन्दी में अभाव देख इस इच्छा को उत्तेजना मिली। उधर विहार की एक पढ़ी-लिखी बहन से भी, कुछ दिन पहले, स्त्री-समस्या पर पत्र-व्यवहार हुआ था जिसकी बहुतेरी स्मृतियाँ हृदय में बनी हुई थीं। इसलिए दिन-दिन पुस्तक लिखने की इच्छा प्रबल होती गई पर मेरे लिए भाई से भी अधिक हरिभाऊजी के जेल चले जाने पर 'त्यागभूमि' का बोझ बढ़जाने एवं घरेलू कठिनाइयाँ अधिक हो जाने के कारण समय न मिल सका और वह इच्छा मन में ही दबी रही।

इस बार भैयादूज के कुछ दिन पहले मैंने भगवती को इस विषय में कुछ पत्र लिखने का विचार किया। इसी समय स्वास्थ्य खराब हो जाने से मुझे प्रयाग होते हुए काशी जाना पड़ा। वहाँ मैंने अपने प्रिय मित्र श्री प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त' (ओझाबन्धु आश्रम, प्रयाग) को दस-बीस पन्ने जो पत्र-रूप में लिखे हुए थे, दिखाये। उन्हें और उनके पूज्य पिता साहित्याचार्य पं० चन्द्रशेखर शास्त्री को वे बहुत पसन्द आये और उन्होंने उसे अपने यहाँ से प्रकाशित करना स्वीकार कर लिया। मैंने यह

भी सोचा कि इस बार भैयादूज के समय भागीरथी बहन को यही पुस्तक उपहार में देनी चाहिए। उस समय भैयादूज को केवल पन्द्रह दिन रह गये थे। मैंने मुक्तजी से कहा आप आठ-दस दिन में पुस्तक जैसे हो छपवा दीजिए। उन्होंने इसे भी स्वीकार कर लिया। इस समय तक पुस्तक की केवल ३ फार्म की कापी तैयार थी। अजमेर पहुँचते ही रात-दिन परिश्रम कर ४ दिन में सब कापी भेज देने का वादा कर मैं लौटा, पर मुश्किल से ७ फार्म की कापी तैयार हुई थी कि मेरे दाहिने हाथ में फोड़ा निकल आया जिससे लिखना एकदम बन्द होगया। ७ फार्म वहाँ छपकर पड़े रहे। भैयादूज बीत जाने पर मेरा उत्साह भी ठंडा पड़ गया।

इधर सस्ता-साहित्य-मण्डल वालों ने पुस्तक को पसन्द करके अपने यहाँ से निकालने का आग्रह किया। तथा मुझे भी कई कठिनाइयों के कारण यह प्रस्ताव पसन्द आगया। 'मुक्तजी' इस पुस्तक का विज्ञापन तक कर चुके थे। इस पुस्तक के प्रति उनकी ममता थी किन्तु मेरी कठिनाई पर और उससे भी अधिक हम लोगों में जो निजी बन्धु-भाव चला आया है, उसपर ध्यान देकर उन्होंने तथा उनसे भी अधिक प्रेमपूर्वक उनके पिता श्री० शास्त्रीजी ने मुझे आज्ञा दे दी। फलस्वरूप आज यह पुस्तक प्रकाशित हो रही है।

× × ×

इस पुस्तक के लिखने में मुझे अनुज श्री० श्यामलाल, श्रीमती अंजना बहन, भागीरथी बहन इत्यादि से बड़ा उत्साह प्राप्त हुआ है और समय-समय पर अनेक विषयों पर अपनी राय देकर मेरी सहायता की है, जिसके लिए उन्हें धन्यवाद है।

गांधी-आश्रम, हटुंडी (अजमेर)
२८-२-१९३१

विनीत
श्रीरामनाथ 'सुमन'

विषय-सूची

[खण्ड ३ : माता]

[खण्ड ४ : कुछ सच्चे पत्र]

भाई के पत्र

[विवाह-समस्या, स्त्री-जीवन और मातृत्व]

"मेरा बस चले तो आजकल पाठशालाओं में जो पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं उनमें से अधिकांश को नष्ट करदूँ और ऐसी पुस्तकें लिखवाऊँ जिनका गृह-जीवन से निकट सम्बन्ध हो।"

—गांधीजी

प्रस्तावना

दुनिया सुख का रास्ता खोजने में विकल है। वह धीरे-धीरे चलती है; वह दौड़ती है; वह ठहर कर सोचती है; वह रोती और अट्टहास करती है। वह सागर की छाती चीर कर पृथ्वी को नापती है; वह पहाड़ लाँघ कर आकाश को छूती है! वह दूसरो से लड़ती है; वह दूसरों को गुलाम बनाती है; वह मनुष्य को पशु होना सिखाती है! वह दूसरों से मेल करती है; वह दूसरों की सहायता करती है और दूसरो को मित्र बनाती है; वह पशु को मनुष्य—मनुष्य को मनुष्य बनाती है। ये सुख की खोज के साधन है—वह सुख के लिए विकल है, वह अधीर होकर शान्ति के लिए छटपटा रही है पर वह शान्त होकर ही शान्ति पा सकती है, यह बात उसे भूल गई है!

समाज का मूल व्यक्ति है और इसलिए समाज के व्यक्तित्व का मूल भी मनुष्य का व्यक्तित्व है। इसलिए व्यक्ति का व्यक्तित्व अच्छा होने से, इसीलिए आत्मशोध और आत्म-निरीक्षण की भावना उदय होने से व्यक्ति का विकास होता है और व्यक्ति का विकास होने से समाज का कल्याण होता है। समाज व्यक्ति का एक विकसित रूप है। भारतीय संस्कृति में सदा आत्म-सुधार पर ज़ोर दिया गया, इसका कारण यही ज्ञान था, और यही ज्ञान था कि भारतीय संस्कृति आजतक, अपने घुने हुए रूप में, मौजूद है। ग्रीक या यूरोपीय संस्कृति में समाज-सुधार पर, सामूहिक विकास पर, ज़ोर दिया गया। इसका कारण क्या था, हम नहीं कह सकते—शायद नहीं जानते। पर उसमें भ्रम अवश्य था और उसी भ्रम के

कारण जब हम चारों ओर आँख दौड़ाते हैं तो वह संस्कृति दिखाई नहीं देती या दिखाई देती है तो बड़े ही बदले हुए और भयंकर रूप में !

लोग ये बातें भूल गये है, या देखकर भी देखना नहीं चाहते। प्रवाह का, भीड़ का, धक्का बड़ा ज़बरदस्त होता है। न चाहने पर भी वह जिधर धकेल दे उधर जाना पड़ता है। पर यही मानसिक गुलामी का आरम्भ है—यह व्यक्ति के पतन की पहली सीढ़ी है। यह विवेक को गिरवी रखकर लोकप्रियता ख़रीदने का प्रयत्न है;—यह हृदय को बेच-कर बदले में शरीर लेने का उद्योग है! यह विष है; यह हमारी साधना के विरुद्ध है। हम कहते हैं, इससे सम्हलो,—यह हमारा नाश कर देगा।

जीवन भावनाओं मे उड़ने का नाम नही है, जीवन प्रतिक्रिया में बहने का नाम नही है; जीवन लोकप्रियता प्राप्त करने का नाम भी नहीं है। जीवन सिद्धान्तो एवं भावो के संग्रन्थन और साधनाओ एवं विधियो के समझौते का नाम है।

इसलिए राष्ट्र के पुनर्जीवन के इस अवसर पर भारतीय संस्कृति के उद्धार की चेष्टा की पहली एवं अस्पष्ट साधना के समय, मैं कहना चाहता हूँ कि हमारी संस्कृति आत्म-सुधार के सिद्धान्त पर, व्यक्ति को लेकर, बनी थी और कुटुम्ब इस व्यक्ति के विकास की पहली पूर्ण इकाई—'यूनिट' है। इसलिए उस प्रयत्न से बढ़कर श्रेयस्कर कुछ नहीं है जिससे व्यक्ति और कुटुम्ब का सच्चा विकास हो; जिससे हमारा गृह-जीवन शान्तिमय, संयममय और प्रकाशमय हो।

इस गृह-निर्माण मे नारी का प्रधान हाथ है। वह सुकन्या होकर व्यक्ति के 'सत्यम्' को प्रकट करती है; वह नारी होकर व्यक्ति के 'सुन्दरम्' को प्रकाशित करती है, वह माता होकर व्यक्ति के 'शिवम्'

को रूप देती है। कन्या से नारी होने में व्यक्ति से कुटुम्ब में विलीन होने की साधना है। नारी रूप में वह व्यक्ति के अन्दर कुटुम्ब का विकास और प्रसार करती है। माता होकर वह कुटुम्ब के व्यक्तित्व में आत्म-विसर्जन की, त्याग और निवृत्ति की, समाज के विकास की भावना जगाती है। यह नारी का रहस्य है और यह हमारी संस्कृति के विकास-क्रम मे उसकी साधना है।

इसलिए यदि भारत फिर दुनिया को अपनी आत्मा का दिव्य संदेश देना चाहे तो उसे पहले अपने नारी वर्ग का उत्थान करना पड़ेगा; पहले उसे देश में सुकन्यायें, सच्ची नारियाँ और सच्ची मातायें उत्पन्न करनी पड़ेंगी और तब उनके द्वारा, उनकी साधना, सहायता और तपस्या से व्यक्तिगत एवं गृह-जीवन को ऊँचा उठाकर सच्चे सुख एवं शान्तिमय जीवन में समाज का, संस्कृति का निर्द्वंष निर्माण हो सकेगा।

इन बातों का ध्यान रखकर ही यह पुस्तक लिखी गई है। इसे लिखने में मैंने समाज एवं समय की छोटी-छोटी आवश्यकताओं पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया है। शुरू से अन्त तक मैंने केवल यह ध्यान रक्खा है कि मेरी बहनें किस प्रकार ऐसी बन सकती हैं जिससे हमारी संस्कृति का यह आदर्श पूरा हो। इसे लिखते समय मैंने यह ध्यान नहीं रक्खा है कि वे विदुषी बनें और अपने तेजस्वी एवं कौतूहल-भरे व्याख्यानों से हज़ारों श्रोताओं को चकित एवं स्तम्भित कर दें; मैंने इसका ध्यान नहीं रक्खा है कि वे देश और समाज की नेता बनकर उसका उद्धार करनेवाली हों और अपने उपदेशो एवं भौतिक त्याग के दृश्यों से लाखों युवकों को लज्जित और उत्साहित करें! मैंने सिर्फ यह ध्यान रखकर इसे लिखा है कि वे दीन-हीन कन्यायें नहीं, भविष्य की आशा से भरी हुई, अपने अन्दर विश्वास रखनेवाली कन्या बनें। मैंने इसमें यह ध्यान रक्खा है कि वे

लज्जित, संकुचित अबलायें नहीं, नारीत्व की कोमलता और प्रकाश से पूर्ण नारी बनें, मैंने इसमे यह ध्यान रखने की कोशिश की है कि वे कुण्ठित, मृतप्राय और प्राणहीन मातायें नही, आत्म-विसर्जन की प्रतिमा और अपने हृदय के अमृत से भविष्य को—भावी संतति को सींचने वाली माता बने !

मैं उस त्याग का उपासक हूँ जो बोलता नहीं ! जो देश के प्लेट-फार्मों पर नहीं जलता, गाँवो की झोपड़ियों मे टिमटिमाता है ! मैं उस विद्या को ज्ञान नहीं कहता जो बुद्धकाल की मूर्तियों की तिथि निश्चित करने के गौरव से गौरवान्वित है या शेक्सपियर के चरित्र-चित्रण की मीमांसा कर सकती है। मैं उस विद्या को ज्ञान कहता हूँ जो मनुष्य के अन्दर मनुष्यता विकसित करती, और उसे अन्दर की पशुता पर विजय प्राप्त करने के योग्य बनाती है। मैं उस यश का भक्त नहीं हूँ जो दुनिया के बाज़ारों में चाँदी के चन्द ठीकरे लुटा देने से, प्रतियोगिता के व्याख्यानों मे लाखों की तालियाँ बज उठने से या साहसिक कार्यों से दुनिया को चक्कर में डाल देने से प्राप्त होती है। मैं उसको यश कहता हूँ जो एक दीन दुखिया के कलेजे मे सुख की साँस उत्पन्न करती और कृतज्ञ मनुष्यता की उस स्मृति को जगाती है जिसमे आनन्दातिरेक से, स्नेह से आँखों मे आँसू भर आते हैं, मुँह से बोली नहीं निकलती और हृदय अनुभव करता है कि दुनिया मे मनुष्य भी है—मनुष्यता भी है !

इसलिए मैंने ऐसे ही त्याग, ऐसी ही विद्या और ऐसे ही यश का ध्यान रखकर इस पुस्तक के द्वारा बहनो के अन्दर वात्सल्य, स्त्रीत्व और मातृत्व को जगाने की कोशिश की है।

मैं जानता हूँ कि बहुत से उग्र सुधारक इसे पढ़कर चिढ़ेंगे, असन्तुष्ट होंगे। कहेंगे—"देखो, आखिर तो पुरुष ही है न !" मैं जानता हूँ

कि पुरानी लकीर के फ़क़ीर कहेंगे कि "वेद-शास्त्रों का कचूमर निकालकर यह अपनी मनमानी कर रहा है।" मैं जानता हूँ कि मेरी छोटी-सी योग्यता और उससे भी छोटे अनुभव को जाननेवाले मित्र कहेंगे कि "यह बुजुर्गों की तरह बोलता है—'पैट्रनाइज़िंग टोन' मे बातें करता है; बहुत ऊँचा उठना चाहता है गो खुद उड़ने और एक फुट ऊँचा उठने की शक्ति नहीं है।" मैं इन बातों को सिर झुकाकर, गुरुजनों के आशीर्वाद की भाँति, स्वीकार कर लेता हूँ। इसमें कोई शक नही कि मै पुरुष हूँ; मैंने पुरुष का शरीर पाया है। इसमें भी कोई शक नहीं कि मैं प्राचीन ग्रंथों की इज्ज़त करते हुए, उनका अपनी बुद्धि के अनुकूल ही अर्थ ग्रहण करने में समर्थ हूँ। और इस बात में तो बहस की गुंजाइश ही नही कि मैं बहुत ही दुर्बल और बहुत ही छोटी बुद्धि का आदमी हूँ। मेरे मित्र जितना जानते हैं, उससे मेरी कमज़ोरियाँ अधिक और मेरी शक्ति कम है पर इसके साथ ही मैं अपनी सारी दीनता के बल पर यह कह सकता हूँ कि मेरा हृदय स्त्री-हृदय है; मुझे अपने भाइयों के और उससे भी ज्यादा अपने पतन पर, कमज़ोरियों पर लज्जा आती है पर किसी बहन को गिरते—ग़लत रास्ते पर जाते देखकर मेरा हृदय, मेरा मन और मेरा शरीर कराह उठता है! इसलिए नहीं कि मैं पुरुषों की बुराइयो की उपेक्षा करता हूँ, इसलिए कि मैं सच्चाई से स्त्री को पुरुष से तोल मे नहीं पर मोल में ज्यादा क़ीमती चीज़ समझता हूँ; इसलिए कि मेरे नज़दीक पुरुष समर्थ हैं पर स्त्रियाँ पवित्र हैं, महान् हैं!

इसलिए और सिर्फ़ इसीलिए मुझे अधिकार है कि मैं जिन्हें भक्ति करता हूँ, उनके सामने अपना हृदय खोलकर रख दूँ जिससे वे देखलें कि एक भक्त का हृदय अपने देवता से क्या चाहता है?

❀ ❀ ❀ ❀

आज स्त्रियों की समस्या बड़ी जटिल होती जा रही है। स्त्री-सुधार के नाम पर एक तहलका मचा हुआ है! दलबन्दियाँ हो रही हैं। गर्मा-गर्म व्याख्यान दिये जा रहे हैं; छोटे-छोटे स्कूलों से लेकर बड़े-बड़े अखबारों और पुस्तकों तक में बहस चल रही है। इन विषयों से लोग समाज-निर्माण की समस्याओं को हल करना चाहते हैं पर इस शब्द-जाल में मानसिक गुत्थियाँ और भी उलझती जाती है। हिन्दू-मुसलमान यह भूल गये हैं कि उन्हें इसी देश में रहना है—यह एक आदर्श की बात है और इसीलिए उन्हें लड़ते देखकर सुधारको और नेताओं को आश्चर्य होता है पर क्या इससे भी आश्चर्य की बात यह नहीं है कि पुरुषों और स्त्रियों की दलबन्दियाँ अलग-अलग स्वार्थों को लेकर हो—उन पुरुष-स्त्रियों की, जिन्हे न केवल इस देश में, वरन् सारी दुनिया मे सदा एक साथ रहना है।

यह दुःख की बात है और इससे भी अधिक दुःख की बात यह है कि हम दुःख की उत्तेजना में ग़लत मार्ग पर चल रहे हैं; और उस ग़लत रास्ते की दौड़ में ही होड़ हो रही है! पुरुष अपना सुधार करने और अपनी उन ग़लतियों एवं बुराइयो को दूर करने का, जिनके कारण स्त्रियों में बदले की भावना जगती जा रही है, यत्न छोड़कर स्त्रियों के उद्धार मे लग गये हैं और स्त्रियाँ पुरुषों के ज़ुल्मो और अत्याचारो का रजिस्टर खोले बैठी हैं! इससे कुछ होने का नहीं, इससे कटुता और दोनों के बीच का अन्तर और बढ़ेगा।

इसका सीधा हल तो यह है कि पुरुष अपनी ओर—अपने कर्तव्य और आदर्श की ओर देखें; स्त्रियाँ अपने कर्तव्य और आदर्श की ओर देखें। पुरुष सच्चा पुरुष बने, स्त्री सच्ची स्त्री बने। पुरुष राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, चैतन्य को अपना आदर्श बनायें; स्त्रियाँ

सीता, रुक्मिणी, सावित्री, सती, दमयन्ती, मीरा इत्यादि को आदर्श बनावें। तभी काम चलेगा। साहस, धैर्य, क्षमा, वीरता, गांभीर्य, ज्ञान, बल-पराक्रम इत्यादि पुरुष के सद्गुण है और दया, करुणा, स्नेह, ममता, शील, लज्जा, मधुरता, विनय, सरलता, संतोष, सेवा इत्यादि स्त्री के सद्गुण हैं। दोनो अपने-अपने गुणों को अपनायें और एक-दूसरे के प्रति सहानुभूति रखकर, एक-दूसरे में मिलकर, ऊँचा उठे। बस यही इसका सीधा उपाय है।

परन्तु अभी तक बड़े-बड़े पढ़े-लिखे लोग इसी पर बहस करते जा रहे हैं कि स्त्री सम्भवतः छोटे दर्जे की और प्रकृति द्वारा ही पुरुष के अधीन रहने के लिए बनाई गई है। इसमे पुराने ख़याल के लोगों का बहुमत है—पुराने ख़याल के लोगो से मेरा मतलब सिर्फ बड़े-बूढ़ों से नहीं है वरं बहुत से नवयुवकों से भी है, जो समाज के फायदे, जाति के विकास के नाम पर स्त्रियों को पुरुषों से छोटा समझते है—यद्यपि इसमें कट्टर पुराने धर्मवादियों की संख्या ज्यादा है। इसका कारण यह है कि पुरुष-हृदय स्वभावतः अधिकार-प्रिय, स्वार्थी, प्रवृत्तिमय और सन्देहशील है, नहीं तो वेद, महाभारत[1] से लेकर संसार के प्रत्येक महापुरुष ने स्त्री का दर्जा पुरुष से श्रेष्ठ बताया है और उसे विश्वास एवं पूजा के योग्य[2] क़रार दिया है।

१. "हे स्त्री! तू घर की मालिक बनकर जा। वहाँ जितने पुरुष हों सब के साथ रानी की तरह बात-चीत कर।" —ऋग्वेद

"कोई कहता है माँ बड़ी है, कोई कहता है बाप बडा है। पर असल में माँ बड़ी है, क्योंकि वह संतान-पालन जैसा कठिन कार्य करती है और फिर भी प्रसन्न दिखाई देती है।" —महाभारत

२. "स्त्री प्रकृति की बेटी है। उसकी ओर कोप-दृष्टि से मत देख। उसका हृदय कोमल होता है। उसपर विश्वास कर।" —महाभारत

हिन्दू नारी जन्म से ही त्याग करना सीखती है। वह निवृत्तिमयी है। पर अब हम नारी को पुरुष—बालिका को बालक बनना सिखाने लगे हैं; यह हमारी झूठी सहानुभूति और भ्रांति है। जैसे खूब भोग-विलास से रहने और खाने-पीनेवाला आदमी जरा-सा शाक-पात खाकर रहने एवं शरीर की चिन्ता न करने वाले सच्चे तपस्वियों एवं महात्माओं को देखकर उन्हें दुखी मानकर उनपर तरस खाता है वैसे ही हम सोचने लगे है कि इस संयम में रहना हिन्दू नारी के लिए बड़ा दुःखदायी है। नहीं, संयम मे रहना उसने जन्म से सीखा था पर अब हम पुरुष अपने भोगमय, अधिकारमय, असंयत जीवन से उसके मन में क्षोभ उत्पन्न करने लगे हैं। स्त्रियो के संयम से हमारे भोगो मे बाधा पड़ती है इसलिए हम नक़ली सहानुभूति के द्वारा उन्हें उत्तेजित करके उनके संयम की बाँध तोड़ देना चाहते हैं! आजकल समाज-सुधारक और स्त्रियो का उद्धारकर्ता वह है जो अच्छे-अच्छे वस्त्राभूषणों से सजाकर, नये फैशन के साथ, स्त्री को गाड़ियो पर लेकर निकले, उनके साथ सिनेमा जाय, चाय की पार्टियों में शामिल हो। मनोवृत्ति यह नहीं है कि स्त्री ऊँचा उठे; उसे आराम मिले; वह अधिकार लेकर मनुष्य-जाति के लिए सेवा और गौरव की वस्तु बने; मनोवृत्ति यह है कि उसे अधिकार मिल जायँ और हमारी तरह वह भी भोगमयी, प्रवृत्तिमयी हो जाय तो हमारे भोग-विलास में सहायता मिले, उसमे सरलता हो जाय!

इसका फल यह हुआ है कि समाज में स्नेहमूर्ति और प्रतिप्राणा

"स्त्री पुरुप की अर्द्धांगिनी है, उसकी सबसे बडी मित्र है। धर्म, अर्थ और काम की मूल है। जो उसका अपमान करता है, काल उसका नाश करता है। वह घर का धन और शोभा है इसलिए सदा उसकी रक्षा करनी चाहिए! वह माता के समान पूजनीय है।" —महाभारत

कुलवधुओं एवं त्यागी और तपस्विनी माताओं की संख्या दिन-दिन कम होती जाती है और चंचल रमणियो की संख्या बढ़ती जाती है ! जीवन की ऊपरी बातों और सुविधाओ पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है और उन्हीं को लेकर लोग अस्थिर, चंचल हो रहे हैं। स्त्री-पुरुष के गुणों पर से, उनका जो सत्व है, उसपर से लोगो का ध्यान उठता जा रहा है।

परन्तु स्त्रियों के मुख की ओर देखकर फिर भी आशा होती है। मन कहता है—"हिन्दू नारी ! तेरी वह शिक्षा एक दिन की शिक्षा नही है, एक भाव की भी शिक्षा नहीं है, तेरी वह शिक्षा सहज ही विलुप्त नही होगी।"[1]

इसलिए एक ओर तो मैं स्त्रियों से कहता हूँ कि तुम अपने आदर्श की ओर देखो और दूसरी ओर पुरुषों से कहता हूँ कि अपना सुधार करो !

इस पुस्तक में इसी प्रेरणा की प्रबलता है जिससे पुरुष-स्त्री का अंतर मिटे और दोनो एक-दूसरे के अधिकाधिक निकट पहुँचें !

× × ×

निश्चय ही इस पुस्तक में अपूर्णतायें होंगी—मनुष्य की प्रत्येक कृति में अपूर्णता होती है। कोई इसे देखकर कहेगा कि इसमें अमुक-अमुक बात और होनी चाहिए थी; कोई इसे देखकर कहेगा कि इसमें ये-ये बातें न लिखनी चाहिए थीं। मैं जानता हूँ इसमें अभाव हैं—वे अभाव मेरी अयोग्यता के कारण भी रह गये है और इसलिए भी कि पुस्तक, आशा से अधिक बढ़ने लग गई—जो न तो प्रकाशक को और न मुझे प्रिय था क्योंकि बड़ी पुस्तको के प्रसार एवं प्रचार में बड़ी बाधायें आ जाती हैं। संतोष इसी बात का है कि चाहे मैंने अपनी योग्यता से बड़ा काम ले

१. बगला से (नारी-उपदेश)

लिया हो पर उसे सचाई के साथ करने की चेष्टा की है और मेरी सम्मति में दुनिया में, और विशेषतः स्त्रियों की दुनिया में, योग्यता की अपेक्षा सचाई ज्यादा अच्छी चीज़ है।

सचाई के सम्बन्ध में तो इसीसे जाना जा सकता है कि मैंने इस पुस्तक का अधिकांश अपनी छोटी बहन भगवती को लिखा है जो विवाह के योग्य होगई है। उसे—अपनी सगी बहन को, जैसा मैं बनाना चाहता हूँ, वैसा ही मैंने लिखा है। इसलिए इसे पढ़कर कोई मुझपर ईर्ष्या-द्वेष का, झुठाई का इल्ज़ाम नहीं लगा सकता।

मुझे आशा है कि इस पुस्तक से बहनों का उपकार होगा और यदि मेरी आशा पूरी हुई तो मैं अपने को धन्य समझूँगा।

बहनों से एक प्रार्थना है और वह यह कि इस पुस्तक को पढ़ते समय इसका विरोध करने और इसका जवाब देने का ध्यान भुलादें; न इसकी बातों को बिना विचारे मान लें; वे इसे केवल गंभीरता-पूर्वक विचार करने के ख़याल से, इसमें कोई अच्छाई हो तो उसे लेने के लिए ही पढ़ें। बस—

गांधी-आश्रम, हटुण्डी
अजमेर
२८-२-३१

श्रीरामनाथ 'सुमन'

भाई के पत्र

[विवाह-समस्या, स्त्री-जीवन और मातृत्व]

"विरोध और खण्डन करने के लिए इसे मत पढ़ो; न इस पर विश्वास करके इसे ज्यों का त्यों मान लेने के लिए पढ़ो; विवाद एवं बहस-मुबाहिसे के लिए भी इसे मत पढ़ो। सिर्फ तौलने और गम्भीरता-पूर्वक विचार करने के लिए इसे पढ़ो।" — बेकन

हमारी अवस्था

हमारे पतन की नींव उससे कहीं ज्यादा गहरी है, जितना हममे से अधिकाश समझ रहे है। यह केवल हमारी स्थूल परिस्थिति तक ही सीमित नही है, हमारे मानस मे इसकी जडे पनप रही है। इसने हमारे सम्पूर्ण मानसिक और नैतिक आधार को हिला दिया है। इसलिए प्रत्येक क्षेत्र मे बाहरी सुधारो के लिए जो आवाज उठाई जा रही है, उससे काम न चलेगा। जब जड मे घुन लग रहा हो तब डालियों की कॉट-छॉट व्यर्थ सिद्ध होगी।

यह सत्य है कि राजनैतिक दृष्टि से हम गुलाम है, हमारा अपना देश नही, हमारा अपना शासन नहीं। हम स्वाधीनतापूर्वक उस देश में

राजनैतिक

भी अपने विचार प्रकट करने के अधिकार से वचित है, जिसकी मिट्टी मे हमारे पूर्वजो की हड्डियॉ गडी हैं और जिसकी कहानियो मे हमारी कितनी ही बहनो और माताओ के रक्त की स्मृतियॉ जल रही है! स्वदेश-प्रेम ने उस भीषण अपराध का रूप धारण किया है, जिसके लिए कितनी ही माताऍ पुत्रहीन हो गई; कितनी ही बहनें भाइयो की याद मे रोती है और कितनी ही बहुऍ वैधव्य के रूप मे गुलामी की पीडा जगाये हुए ऑसू बहा रही है। साधारण प्रारंभिक अधिकारो से भी हम वचित है।

यह भी सत्य है कि आर्थिक दृष्टि से हमारा अस्तित्व शून्य-सा है। व्यापार-व्यवसाय विध्वस हो गया है; खेती को दुर्भाग्य के पशु ने चर

आर्थिक

लिया है। जहॉ घी-दूध की नदियॉ बहती थी, वहॉ आज विदेशी 'घास का घी' और जमाया दूध भी

खुशहालो को ही नसीब है ! जहाँ के कपड़े से यूरोप की रमणियो का शृंगार होता था, वहाँ के बच्चो के शरीर पर विदेशी कपड़ा भी नाममात्र को ही दिखाई पड़ता है ! मैने अपनी आँखों से एक ही फटी-गुँथी सुहाग की साड़ी पहनकर काम चलाने को मजबूर होने वाली बहुओ को देखा है। स्नान के समय इन्हे आधी साड़ी भिगोकर करुणा की सजीव मूर्ति की तरह तालाबो से 'घर' लौटते देखा है। बम्बई और कलकत्ता की सड़को पर पाँव और सर को मिलाकर भगवान की छत्रछाया मे सडक पर खड़े रहनेवाले कितने ही भाइयो को देखा है और उन माँओं को भी देखा है, जिनके कलेजे के टुकड़े दो-दो दिन की भूख से व्याकुल होकर उनका स्तन चूसते है, पर कुछ नहीं मिलता ! वमन किये हुए अन्न को तथा पशुओं की लीद से निकले दानो को खाकर ज़िन्दगी बिताने वालो का हमारे देश में अभाव नहीं है। भूख की यंत्रणा के कारण अभी कुछ ही दिन पूर्व कलकत्ता मे एक शिक्षित पति-पत्नी एक साथ जहर खाकर मर गये और एक माँ से जब अपने बच्चे का तड़पना न देखा गया तो उसे उसने विष देकर मार डाला ! ये उदाहरण एकाकी नही है। प्रत्येक स्थान से ऐसे अनेक उदाहरण एकत्र किये जा सकते है। हमारा सम्पूर्ण आर्थिक ढाँचा ही गिर गया है। जो धनवान हैं वे भी मानसिक दृष्टि से निकम्मे, आर्थिक दृष्टि से केवल विदेशियो के दलाल, शारीरिक दृष्टि से जीते मुर्दे और सामाजिक दृष्टि से प्रतिगामी हैं। जो गरीब हैं, उनका तो बस राम मालिक है। कैसे वे जी रहे हैं, यह भी समझ मे नही आता।

फिर हमारे शरीर की ही क्या अवस्था है ? पचीस वर्ष के बाद हमारे घरो को स्त्रियो की गिनती युवतियो की जगह बड़ी-बूढियो मे होने लगती है। दो सन्तान हुई कि कहीं प्रसूति-ज्वर घर

शारीरिक

दबाता है, कहीं क्षय हो जाता है; कही कमर-दर्द शुरू

हो जाता है। और हमारे युवक? ये तो जीते हुए मुर्दे है। मलेरिया से घुनी हुई छातियाँ, बैठी हुई आँखे, टूटे हुए बाजू, सूखे हुए निस्तेज चेहरे, ये हमारे भावी समाज के निर्माता युवक है? ये, जिनका हृदय मलिन है, जिन्हे अभी से वासना की साँपिन ने डँस लिया है, जो किसी सुन्दरी बहन को सामने से जाते देखते है तो गैरत को धो-बहाकर लोलुप आँखो से उनको निगल जाना चाहते है! हमारे बच्चो को देखो और अंग्रेजो के बच्चो से उनको मिला लो! ये डरे, सहमे, अधभूखे और वे निर्भय, हँसमुख, हृष्ट-पुष्ट।

बौद्धिक

बुद्धि और विवेक का हाल यह है कि जिन्होने असभ्य संसार को सच्चे ज्ञान के रास्ते पर चलाया; जिन्होने अनेक नई विद्याओ का आविष्कार किया; जिन्होंने ससार को चिरन्तन सुख का मार्ग बताया, आज उनके बच्चे 'मार्संडन' और 'स्मिथ' साहब की बातो को वेदवाक्य समझते हैं। आज उनकी बौद्धिक गुलामी इतनी बढ़ गई है कि जब तक यूरोपवाले कह न दे, हमारे बड़े-बड़े विद्वान किसी बात को प्रामाणिक मानने के लिए तैयार नहीं। जब मिस्टर स्पेण्डर या पादरी होम्स महात्मा गाधी को महापुरुष कहेंगे, तब हमारे कान पर जूँ रेंगेगी!

सामाजिक

और सामाजिक क्षेत्र मे? मै क्या बताऊँ, हिन्दू नारी इसे पुरुषो से कहीं ज्यादा अच्छी तरह समझती है। युद्ध मे निकलकर लड़नेवाली स्त्रियाँ आज परदे के अन्दर विलास की पुतलियाँ बन गई हैं। इस खिलौने को देखकर हँसी आती है! कही कान छिदे हुए, कही नाक मे नथ लटकती हुई, गले गहनो से कसे हुए, पाँवों की अंगुलियाँ विछिया के बन्धन मे खून की गति रुक जाने से सूख गई है; पाँव गहनो के बोझ एवं रगड़ से काले पड़ गये है।

गहनो के लिए शरीर छिदाने को तैयार ये स्त्रियाँ, और उन्हे इस तरह कामुक दृष्टि से देखकर वासना-रजन करने वाले पुरुष, दुनिया मे क्या करेगे ? फिर कही माता गोद मे लेकर 'बच्ची' का ब्याह करा रही है, कही बुढ़ऊ नकली दाँत लगाये जरा-सी लड़की को अपनी हठधर्मी के हवन-कुण्ड मे ढकेलकर ससार से पार उतने को तैयार हैं ! कही लडकी का मोल भाव हो रहा है, कही विधवाएँ झिडकी जाती है। कही सास बहू को झाडू दिखा रही है, कही बहू अपने पति को सास के विरुद्ध भडका रही है। कही स्त्री को श्मशान पर फूँक कर लौटते ही सगाई की बात-चीत चल रही है और कही एक युवती विधवा, गृहस्थ के अभिशाप की भाँति, अपने जीवन से ऊबकर आत्म-हत्या की चेष्टा मे है।

पर

यह तो ऊपर की अवस्था मात्र है, यह तो तफसील है ! यह पौधे के सूखे हुए फूलो, मुरझाती हुई टहनियो और सूखकर गिरती हुई पत्तियो की कहानी है। असली रोग तो दूसरा ही है। कौन कहता है कि ये बुराइयाँ दूर न हो या इनकी उपेक्षा की जाय ? ये बहुत भयकर बुराइयाँ हैं, इन्हे दूर करने का यत्न श्रेयस्कर है; पर परदे के अन्दर, जड़ के नीचे, क्या हो रहा है इसे देखना क्या सबसे जरूरी नही ? जिस नीव पर पौधा खडा किया गया है, जिससे उसके सब अंगो का जन्म हुआ है, उसके रोग का निदान क्यो न किया जाय ? समाज के, राष्ट्र के जीवन का जो मूल सोता है, उसमे जब तक जल न रहेगा, हम भी पनप नहीं सकते। मनुष्य के जीवन की जो नीव है उसमे आज घुन लग गया है ! हर चीज को अपने-अपने स्थान पर ठीक ठीक रखकर उससे काम लेने, उसका उचित उपयोग करने की कला हम भूल गये हैं, जीवन का सतुलन—बैलेंस—झुक गया है। सहानुभूति

मूल रोग

जो प्रत्येक प्रकार की सामाजिक भावना की जननी है, नष्ट हो गई है। आत्म-वंचना ने उसका स्थान ले लिया है। इसका फल यह हुआ है कि व्यक्तिगत सदाचार से मनुष्य गिर गया है और इसीलिए आज घरों मे स्त्री पुरुष को, पुरुष स्त्री को दोष देता है। कुटुम्ब भारतीय समाज की इकाई (यूनिट) है और व्यक्ति कुटुम्ब की इकाई है; इसलिए समाज की शान्ति और पवित्रता के लिए कौटुम्बिक शान्ति और घरेलू तथा व्यक्तिगत जीवन की पवित्रता आवश्यक है। जब तक प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक स्त्री पुरुष अपने कर्तव्य की ओर ध्यान न देगा और अपने कर्तव्य का पालन करते हुए भी दूसरो के प्रति अपनापन, सहानुभूति, उदारता और स्नेह का अनुभव न करेगा, राजनैतिक या सामाजिक किसी भी क्षेत्र मे सच्ची उन्नति कभी नही हो सकती। व्यक्तिगत जीवन की पवित्रता से ही समाज के सामूहिक कल्याण का जन्म होता है, इसलिए बिना उसके, किसी भी प्रकार का सुधार-सम्बन्धी प्रयत्न बहुत दूर तक सफल नहीं हो सकता। थोड़े में इसका मतलब यह है कि व्यक्तिगत सदाचार और कौटुम्बिक शान्ति के बिना समाज का सच्चा कल्याण सभव नही है।

जब हम कुटुम्ब को समाज की इकाई कहकर पुकारते है तो कुटुम्ब शब्द से हमारा अभिप्राय साधारणतः 'माता-पिता एवं सन्तान' (या पति-पत्नी और सन्तान) से होता है। इन तीनो पर ही समाज का भविष्य और हिन्दू सस्कृति का निर्माण निर्भर करता है। इसलिए मै पुस्तक में इस बात पर विचार करना चाहता हूँ कि लडकी और लड़के का जीवन किस तरह ऐसा बन सकता है कि विवाह की वेदी पर वे एक-दूसरे के लिए त्याग करना, एक-दूसरे के सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख समझना सीखे; क्योकि विवाह ही वह सूत्र है, जो उन्हें सुन्दर और कल्पनामय पर गैरजिम्मेदार जीवन से अलग हटाकर माता-पिता के कर्तव्य, त्याग,

सेवा और जिम्मेदारी के जीवन से बदल देता है। आज शिक्षित स्त्री पुरुषो मे अधिकार के लिए जो होड चल रही है और इससे गृहस्थ की सुख-शाति नष्ट होने का जो भय है, उससे हम कैसे बच सकते हैं और दोनो का जीवन दोनो के लिए कैसे परस्पर अवलम्ब का जीवन हो सकता है, इसपर विचार करना आवश्यक है।

खण्ड १ : कन्या

"जब मैं किसी देवी को देखता हूँ तो ऐसा मालूम होता है जैसे ईश्वर के सामने खड़ा हूँ! तू उसकी अन्तिम कारीगरी है। तू हृदय की शान्ति है। प्यारी लड़की! तू आज ऐसी है, बड़ी होकर पता नहीं क्या होगी?

—अलेक्ज़ेण्डर स्मिथ

: १ :

शिशु-जीवन

शिशु सृष्टि की एक बड़ी मनोहर विभूति है। बच्चो से अधिक पवित्र, कोमल, आशापूर्ण और निरीह पदार्थ और क्या हो सकता है ?

वह निर्दोष शिशु !

जब किसी छोटे बच्चे को धूल मे बड़ी गम्भीरता के साथ घर उठाते और भोजन बनाते देखता हूँ; जब उसे बड़े सरल और निर्दोष भाव से ऐसे-ऐसे प्रश्न पूछते देखता हूँ, जिन्हे कहने मे हम बडो को लज्जा आ दबाती है; जब एक बच्चे को अपनी माँ से ही विवाह के लिए हठ करते देखता हूँ या जब एक छोटे बच्चे को साँप से लेकर चन्द्रमा तक सबको हाथ से पकड़कर गोद मे ले लेने को उत्सुक पाता हूँ तो इस कलहपूर्ण संसार की अशान्ति से भागकर इन बच्चो मे ही मिल जाने की इच्छा होती है। ऐसा मालूम होता है मानों इस स्वार्थ और द्वेष की दुनिया मे, जब जीव जीव की हत्या और विनाश मे आनन्द अनुभव करता है, आश्रय का एक मात्र स्थान बचपन का क्रीड़ा-स्थल हो है। इनमें शत्रु-मित्र का, जाति-पाँत का भेदभाव नहीं; ये देशकाल से परे हैं। इन्हे संसार की हवा नही लगी; मानो स्वर्ग से खेलते-खेलते सजीव खिलौने पृथ्वी पर उतर आये हो !

निश्चय ही बच्चो से बढ़कर निर्दोष हृदय और कहाँ मिल सकता है ? तभी तो ईसा ने बडे व्यथातुर शब्दों मे भगवान् से हाथ जोड़कर कहा था—"पिता ! तू मेरा सारा महत्व, शक्ति, पवित्रता और यश ले ले और बदले मे मुझे एक छोटा बच्चा बना दे।"

किन्तु यह एक आश्चर्य और दुःख की बात है कि जो शिशु इतना पवित्र है और जिसके समाज मे स्वतः कोई ईर्ष्या, द्वेष तथा भेद-बुद्धि नहीं, उसके जीवन को भी अपने अविचार स्वार्थपरता एवं आदर्शहीन व्यावहारिकता के कारण हमने जहरीला बना दिया है। बच्चो मे स्वतः बालक-बालिका के प्रति सम-भाव और सम-बुद्धि होती है। एक बच्चा जब दूसरे बच्चे को प्यार करने लगता है तब यह नहीं देखता कि वह लड़का है या लड़की। वह तो उस निर्मल प्रेम की अज्ञात भावना से आकर्षित होता है, जो मनुष्य मे मनुष्यता को खोजती है, और कुछ नहीं। पर दुनिया तो स्वार्थ के तराजू पर हर चीज को तौलती है। इसीलिए समाज मे लड़की की आज दुर्दशा है। उसके महत्व का ध्यान लोगो को नही रह गया है। उसका कारण माता-पिता एवं कुटुम्ब वालो की भेद-बुद्धि मात्र है। वे लड़की होते ही नाक-भौ सिकोडने लगते है। इतना ही हो तो भी गनीमत है, पर लडकियो के पालन-पोषण मे भी लडको की अपेक्षा भेद रक्खा जाता है। जरा भी रोने पर, जरा भी मचलने पर, उसे माता तक झिड़क देती है। लोग समझते हैं कि बच्चे कुछ नही समझते, पर यह विचार सर्वथा भ्रमपूर्ण है। यह ठीक है कि वे भाषा और शब्दो का पूरा-पूरा अर्थ नहीं जानते, पर वे भाव और कुभाव को, चेहरे पर उदित होनेवाले परिवर्तनो को, पहचानने मे बहुत तेज होते है। आश्रय देनेवाले के भावो की नकल करने की शक्ति बच्चो मे बहुत बड़ी मात्रा मे मौजूद रहती है। उनपर उनके पालको के व्यवहार और मनोभावो का बड़ा प्रभाव पड़ता है। भविष्य मे वे जो कुछ हो सकते है उसका बीज इसी कोमल अवस्था मे पड़ता है। इसीलिए लड़कियो के प्रति अवज्ञा का भाव प्रकट करके न केवल हम उनके साथ अन्याय करते है, बल्कि अपनी संतान के हृदय मे भी अवज्ञा और उपेक्षा

यह भेद भाव !

का बीज बोकर इस दुःसह और अवाछनीय परिस्थिति को सदा के लिए दृढ़ और स्थायी कर जाते है। यह ठीक है कि वर्तमान समाज मे लड़कियो के प्रति उदासीनता का जो भाव पाया जाता है, उसका कारण आर्थिक स्वार्थपरता है। हम सोचते हैं कि लड़का तो बड़ा होकर हमे खिलाये-पिलायेगा, हमारी सेवा करेगा; उसके द्वारा कुटुम्ब की वृद्धि होगी और उसका यश अपना यश होगा। लड़की कुछ दिनो बाद पराये घर को हो जायगी। पर इस स्वार्थपरता के मूल मे बुद्धि और विवेक तो जरा भी नहीं है। पुरुष तो आत्म-प्रसारक प्राणी है; वह तो केवल अधिकार और अपने अन्दर की प्रभुत्व-भावना की तृप्ति चाहता है; वह ऐसी भूल करे तो आश्चर्य की बात नहीं; पर माताये, जिन्हे लड़की जनने में उतना ही कष्ट होता है, जितना लड़का जनने मे और जिनके शरीर के खून से लडकी और लडका दोनो के शरीर बनते है, यह कैसे भूल जाती है कि वे अपनी माताओ के पेट से लड़की के रूप मे ही जन्मी थी और यदि लडकियाँ न होगी तो लड़के कहाँ से होगे ?

यह हर्ष की बात है कि पिछले बीस वर्षों मे स्त्रियो की ओर हमारे सामाजिक व्यवहार मे काफी परिवर्तन हुआ है। स्त्री-शिक्षा की ओर समाज का ध्यान सामूहिक रूप से आकृष्ट हुआ है। जो माता-पिता कुछ दिनो पूर्व तक लड़कियों को पढ़ाना अधर्म समझते थे, वे भी अपनी कन्याओं को स्कूल भेजने लगे हैं—कम-से-कम किसी-न-किसी प्रकार उनको अक्षर-ज्ञान कराने का भाव प्रबल होता जा रहा है। साधारणतः पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो मे जागरण के चिह्न अधिक तेजी से फैलते जा रहे है और वे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे पदार्पण कर रही है या करने को उत्सुक है। राजनीति के आघात-प्रत्याघात के कारण हमारा सामाजिक जीवन नई-नई शक्तियो और विचारधाराओं से भर रहा है। इसका असर, अनजान

मे ही सही, सर्वत्र हो रहा है और आज समाज मे सुशिक्षिता, गुणवती कन्याओ की आवश्यकता लोग अनुभव करने लगे हैं और कम-से-कम नगरो मे विवाहित जीवन के लिए उनकी मॉग बढ़ती जा रही है। समाज की वृद्धि और विकास के कार्य मे आज नारी का महत्व पुरुष से भी अधिक है और समाज का भविष्य बहुत करके उसके व्यवहार पर निर्भर है।

इसलिए, यदि हम जरा भी विचार से काम ले तो हमको मालूम होगा कि समाज के सचालन मे और उसे ऊँचा उठाने मे बालको की अपेक्षा बालिकाओ का महत्व अधिक है। एक बालिका के अच्छी, गुणवती और सहृदया होने पर सैकड़ो प्राणियो का भविष्य और सुख-दुःख निर्भर करता है, क्योकि बालिका ही आगे जाकर गृहणी और फिर माता होती है तथा उसके विचार और आचरण का कुटुम्ब और समाज की शान्ति, उन्नति और निर्माण पर बड़ा गहरा असर पड़ता है। एक लड़के के बिगड़ जाने पर, ख़राब निकल जाने और अशिक्षित एवं गुणहीन हो जाने से, समाज की उतनी हानि नही हो सकती, जितनी एक लड़की के कलहप्रिय, असहिष्णु और ख़राब निकल जाने से हो सकती है। इसलिए हमारे धर्म-शास्त्रो मे लड़कियो का स्थान बहुत महत्व का माना गया है। अब भी विशेष अवसरो पर कुमारी कन्याओ की पूजा की जाती है। वे देवी और लक्ष्मी-रूप मानी जाती है। फिर आजकल जब शिक्षित और विचारवान युवक अपने लिए योग्य गृहणियो तथा सच्ची सहधर्मिणियो की आवश्यकता अनुभव करने लगे हैं, अच्छी लड़कियो का महत्व दिन-दिन बढ़ता जाता है। अब लड़कियो के माता-पिताओ को अपना कर्त्तव्य समझना चाहिए। और यदि स्वार्थ की दृष्टि से भी देखें, तो लड़की के विनम्र, सुशील, आज्ञाकारिणी, सेवापरायण और वफ़ादार होने से पति-गृह तो सुधरता और

बालिकाओं का सामाजिक महत्व

स्वर्ग बन ही जाता है, किन्तु पितृ-गृह का भी यश और आदर बढ़ता है। लड़की पराये घर जानेवाली है, इस विचार से हमे लड़कों की अपेक्षा उसके लालन-पालन एवं शिक्षा-दीक्षा में ज्यादा ध्यान देना चाहिए। अन्यथा लड़की का जीवन नष्ट होगा, पति के गृह मे अशान्ति बढ़ेगी और लड़की के पिता की बदनामी भी कुछ कम न होगी। स्वार्थ या परार्थ, जिस दृष्टि से देखे, भावी गृहणी और माता होने के कारण लड़कों की अपेक्षा, कुटुम्ब और समाज दोनो की रचना मे, लड़कियो का महत्व और मूल्य अधिक है। वे समाज की मातायें है। बालक कितना ही गुणी हो, मातारूपी बालिका का शिशु है और जीवन मे बिना उसके सहयोग के वह अपूर्ण—निकम्मा—रह जाता है। यदि हम अपने देश का पिछला इतिहास देखे तो मालूम होगा कि त्याग, बलिदान, श्रद्धा और वफादारी मे स्त्रियाँ सदा पुरुषो से आगे रही हैं। सती, सावित्री, सीता, विदुला, दमयन्ती, चिन्ता इत्यादि सती नारियाँ हिन्दू जाति के इतिहास मे हीरे की तरह चमक रही हैं। जब हम राम का ध्यान करते हैं तब सती और तेजस्विनी सीता की याद तुरन्त आ जाती है। जब हम शिव का स्मरण करते हैं तब सती का तेज से चमकता हुआ चेहरा आँखो मे नाचने लगता है। इन दोनो सतियो के सम्मुख, न्याय कीजिए तो, राम और शिव भी फीके पड़ जाते है। इसलिए प्रत्येक हिन्दू माता-पिता को लड़की होने पर न केवल प्रसन्न होना चाहिए, बल्कि उन्हें अत्यधिक गौरव का अनुभव करना चाहिए कि भगवान की कृपा से उन्हें ऐसी चीज मिली है कि यदि ठीक तरह से उसे रखा जाय और उसका लालन-पालन किया जाय तो समाज के उत्थान और व्यक्तिगत एव कौटुम्बिक सुख के लिए उससे बढ़कर दूसरी चीज दुनिया मे नहीं होसकती। जैसे कली खिले हुए फूल-फल का सक्षिप्त रूप है, वैसे ही लड़की माता का सक्षिप्त सस्करण है और

जैसे कली फल का अविकसित रूप है वैसे ही लड़की सन्तान की आदि प्रतिमा है। इस प्रकार एक लड़की के अन्दर स्त्रीत्व, मातृत्व तथा शिशुत्व तीनो बीज रूप मे वर्तमान रहते है।

लड़कियो के प्रति यह अवज्ञा एव उदासीनता हमारी सभ्यता के मूल पर कुठाराघात है। हमारे आचारशास्त्र मे इसे कभी समर्थन प्राप्त नहीं हुआ। यह शुद्ध स्वार्थ का, शुद्ध आर्थिक प्रश्न है। इससे धर्म का कोई सम्बन्ध नही। समाज मे गरीबी और बेकारी की बाढ ने इस प्रश्न को और विकट कर दिया है। इसलिए लड़की पराई चीज मानी जाने लगी है और इस 'पराई चीज' के प्रति, आत्मवचना के कारण, लोग रुक्ष एवं उदासीन से रह जाते है। मजदूर-पेशा लोगो मे स्त्रियो की मजूरी कम होने और अनेक जातियो मे दहेज की भयकर बुराई के कारण इस भाव को बडा बल मिला है। उत्तर भारत में कायस्थ आदि शिक्षित जातियो मे तो लडकी का अवतार पाप के उदय के समान हो गया है क्योकि दहेज की प्रथा के कारण साधारण और मध्यम श्रेणी का आदमी इनके विवाह की व्यवस्था करने मे पिस जाता है।

परन्तु इसके कारण सामाजिक जीवन मे लड़की के प्रति किसी प्रकार की उपेक्षा का भाव रखना किसी दृष्टि से उचित नही कहा जा सकता। नैतिक और मानवी दृष्टियों से तो यह घोर अपराध है ही, व्यावहारिक दृष्टि से भी यह समस्या का कोई हल नही पेश करता। इसका सीधा हल तो यह है कि लोग आदोलन और सगठन करके समाज का सुधार एवं परिष्कार करे और उसकी बुराइयो तथा कुप्रथाओ को दूर करके एक श्रेष्ठ और कल्याणकारी सतह पर उसका निर्माण करे, न कि अपनी दुर्बलताओ का क्रोध बेचारी लडकियो पर निकालें।

इस अनैतिक और अवाञ्छनीय व्यवहार ने समाज मे एक अप्राकृतिक

वातावरण पैदा कर दिया है। लड़कियो मे अपनी ही हीनता और असमर्थता का भाव पैदा हो गया है जिसकी प्रतिक्रिया विवाहित जीवन में बड़ी भयानक होरही है।

लालन-पालन और शिक्षा

इसलिए बहनो! यदि तुम संसार मे अपनी मृत्यु के बाद योग्य प्रतिनिधि छोड़ जाना चाहती हो, जिन्हे देखकर लोगो को तुम्हारी याद आती रहे, जो अपने जीवन को सार्थक करे, श्रद्धा-भक्ति से गुरुजनो की सेवा करें, सच्ची सहधर्मिणी होकर पति के कार्यों मे हाथ बटावे और सच्ची माता के रूप मे समाज को योग्य, सदाचारी एव आदर्श सन्तति भेट करे तो तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम न केवल अपने मन से लड़कियो के प्रति अवज्ञा के भाव दूर करदो, वर यदि कन्या उत्पन्न हो तो भगवान् की विशेष कृपा और देन समझकर उन्हे सब प्रकार भावी जीवन के योग्य बनाओ।

: २ :

कन्या की शिक्षा

पिछले अध्याय में यह बताया जा चुका है कि कन्या का समाज मे क्या महत्व है और उसका स्थान कितना ऊँचा है। इससे यह नतीजा सहज ही निकलता है कि प्रत्येक माता-पिता अथवा अभिभावक को कन्या की शिक्षा मे बड़ी सावधानी रखने की आवश्यकता है।

हमारे देश की अवस्था ऐसी गिर गई कि हम प्रत्येक क्षेत्र मे अपना ठीक रास्ता भूल गये है या भूलते जा रहे हैं। सैकडो वर्षों की गुलामी ने हमारी मौलिक प्रतिभा और चिन्ताशीलता नष्ट करदी है और हमे बिना सोचे समझे सिर्फ नकल करने का आदी बना दिया है। इससे सबसे बड़ी हानि तो यह हुई है कि हमारी सस्कृति का आदर्श ही लुप्त होता जाता है! इमारत तो ढह गई है, साथ ही नीव में भी, जिस पर कभी हम फिर भविष्य का महल उठा सकते थे, घुन एव कीड़े लग गये हैं। जो कुछ हमारा अपना था, वह सब हम भूलते जा रहे हैं। आज-कल मानव-जीवन का उद्देश्य ही कुछ अस्थिर-सा हो रहा है। हमारे जीवन का, हमारी सभ्यता का उद्देश्य और आदर्श यह था कि विवेक एवं संयम के सहारे मनुष्य के अन्दर की पशुता को दूर करके उसमे देवत्व का विकास किया जाय और क्षणस्थायी शारीरिक सुविधाओ की अपेक्षा मानसिक और आध्यात्मिक विकास के ऊपर ज़्यादा ध्यान देकर निरतिशय—सर्वाधिक—आनन्द की खोज एव प्राप्ति की जाय। इसलिए प्राचीन समय मे हमारी शिक्षा के उद्देश्य और प्रकार भी भिन्न थे। ब्रह्मचारी विद्यार्थी जगलो मे, पशुओ के साथ घूम-घूमकर विश्वप्रेम का पाठ पढते और साक्षा-

मृगतृष्णा के पीछे!

रिक क्षुद्र महात्वाकाक्षाओ से दूर, विवेक एव शुद्ध बुद्धि के विकास के लिए त्यागी और विचारक गुरुओं से विद्या प्राप्त करते थे। उनके जीवन का उद्देश्य दूसरा था, इसलिए शिक्षा भी उसी के अनुकूल थी। आज वर्तमान सभ्यता ने शरीर को, सासारिक एवं भौतिक समृद्धि को, इतना महत्त्व दे दिया है कि मानव-जीवन का आध्यात्मिक आदर्श लुप्त हो गया है। सभ्यता के शरीर की रक्षा जरूरी थी, पर इसकी रक्षा मे दुनिया ऐसी चिमटी कि शरीर के अन्दर शरीर का राजा प्राण भी है, जो भूख-प्यास से छटपटा रहा है, इसका ध्यान ही किसी को नहीं रहा। शरीर की रक्षा मे प्राण और आत्मा की ऐसी उपेक्षा हुई कि शरीर की भी रक्षा न हो सकी। भौतिक सुविधाओ की जरूरत को कौन अस्वीकार करेगा? दुनिया मे रहने वाले साधारण प्राणियों को धन-धाम की आवश्यकता अवश्य है, पर इस धन-धाम का भी एक महान् उद्देश्य है, इसे जैसे नशे मे सब भूल गये हैं। हमने चमक-दमक, चटक-मटक, भोग-विलास को जीवन का एकमात्र कार्यक्रम बना लिया है। इसलिए प्रत्येक विद्यार्थी के हृदय में, अपने चरित्र के उत्थान और समाज की सेवा के बदले, जिस प्रकार से भी हो, ज़्यादा से ज़्यादा कमाने का विषैला धुआँ आरम्भ से ही भर जाता है। सुन्दर बँगला हो, ५००)-६००) रु० की नौकरी हो, ऐसा पद मिले कि हुकूमत की प्यास बुझाई जा सके और लोगो को दिखाया जा सके कि हमारी शान क्या है। सुन्दरो, कमल-सी आखो और चन्द्रमा से मुखवाली, कल्पना के समान नशा करने वाली पत्नी हो, मोटर पर घूमें, भिखमंगो को दुरदुरायें, उम्मेदवारो को अकर्मण्यता के लम्बे-चौड़े उपदेश दे और कभी सिनेमा, कभी थियेटर, कभी क्लब में, मित्रो,—और यदि संभव हो तो विशेषतः स्त्री 'मित्रों'—के साथ हा-हा ही-हीं करते, सिगरेट के चक्करदार धुएँ और बढ़िया बिलायती शराब के—गालो पर गुलाब की पंखड़ियो की

लालो की तरह खिलने वाले—नशे के बीच, हँसी-खुशी से जिन्दगी बीतती रहे। समाज, देश, सब इनके लिए त्रास है, मानो जो कुछ सुविधा वे पाते है, सब उन्होने पेट से उत्पन्न की हो। यह आजकल का सभ्य जीवन-क्रम है; यह आजकल की शिक्षा है!

जब लड़को की शिक्षा ही इतनी हो रही है कि नैतिक आदर्शों का उनसे लोप होता जाता है, तब लड़कियो को कौन पूछता है? भारतवर्ष की मिट्टी मे पलने वाले युवक, जिनके सिर मे, जीवन की अत्यन्त कोमल प्रभावयोग्य अवस्था मे, शेक्सपियर की जूलियट और बर्नर्ड शा की 'मिसेज वारेन' के स्वप्न चक्कर काटने लगते है, जब ये सीता-सावित्री को भूलने लगते है और पीछे जब इन सतियो की वर्तमान छायारूप, अपनी पुरानी ढंगवाली (Old Fashioned) पत्नियो मे उन्हे वह चंचल, दिल गुद-गुदानेवाली स्त्रियॉ, जिनके अतिरिक्त दूसरो को उन्होने कभी न जाना और जो कालेज की अवस्था से ही किताबो के के परदे में उनके साथ हो जाती हैं, उन्हे नहीं मिलती तो क्लबो, वेश्याओ और दूषित मित्र-मण्डलियों के शिकार हो जाते हैं: शराब-कबाब का दौर चलने लगता है। इन युवको के साथ, इनकी जैसी शिक्षा पाकर कालेजों की अधिकाश लड़कियाँ 'शील' के आदर्श से गिरती जा रही हैं। उनके हृदय मे शील, लज्जा, नम्रता की जगह अधिकार, भोग और कठोरता का उदय हो रहा है। एक ओर 'शिक्षित' रमणियो का यह हाल है, दूसरी ओर गॉव की सीधी-सादी स्त्रियॉ दुनियॉ की वर्तमान अवस्था से बिल्कुल अनजान हैं। पर यदि स्त्री-शिक्षा का वही आदर्श हो, जो आजकल हम कालेजो की लड़कियो मे देखते है, तो ईश्वर हमारी इन ग्रामीण अशिक्षित बहनो को सलामत रक्खे, जिनके मक्खन-से कोमल हृदय मे अब भी सतीत्व की सच्ची आभा और त्याग की ऊँची भावना चिनगारी की तरह चमक रही है।

वे और ये।

मेरा यह तात्पर्य नही कि कन्या को अशिक्षित रखा जाय। शिक्षा तो प्रत्येक मानव प्राणी का, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, जन्मसिद्ध अधिकार है। जो मै कहना चाहता हूँ, वह इतना ही है कि कन्या की शिक्षा का प्रश्न अत्यन्त महत्वपूर्ण है—उससे भी अधिक जितना लड़को की शिक्षा का प्रश्न है। मेरा मानना है कि उचित ढग पर शिक्षित की हुई कन्या श्रेष्ठ समाज की माता है। उसपर गृह-जोवन के सुख, मानव-जीवन के विकास और समाज, देश तथा विश्व के सुख की उठान निर्भर है। इसलिए समाज-जीवन में उनका स्थान एवं फलतः उनकी जिम्मेदारी बड़ी है। इस जिम्मेदारी के भाव का जागरण एवं उसे उठा लेने और भलीभॉति निबाह ले जाने की शक्ति का विकास जिस शिक्षा से हो, वही उचित और कल्याणकारी शिक्षा है।

स्वामी विवेकानद ने कहा था कि 'हमारे अन्दर जो देवत्व, जो महती शक्ति प्रस्तुत एवं प्रच्छन्न है उसके प्रति जो चीज हमे जाग्रत कर देती है, वही शिक्षा है।' शिक्षा का तात्पर्य अक्षर-ज्ञान नही है। अक्षर-ज्ञान तो एक साधन-मात्र है। बहुत अधिक पढ़कर भी आदमी अशिक्षित और मूढ़ हो सकता है और निरक्षर व्यक्ति भी ज्ञानी होता देखा गया है। मुख्य बात जीवन को संस्कारवान् बनाना, सच्चाई के प्रति उसे जाग्रत करना है। होना यह चाहिए कि शिक्षा के साथ साथ मनुष्य अधिक उदार हो; उसके गुणो और आन्तरिक शक्ति का विकास हो और उसका दृष्टि-कोण विशद, उदार, प्रेमल एवं उत्सर्गमय होता जाय।

इस दृष्टि से शिक्षा का स्थूल उद्देश्य पुरुष को सच्चा पुरुष और स्त्री को सच्ची स्त्री बनाना है। इसलिए बालिकाओ को जो शिक्षा दी जाय, उससे उनके अन्दर सच्चे स्त्रीत्व एवं मातृत्व का विकास होना चाहिए।

इस बात का तो विरोध नही हो सकता कि स्त्री-शिक्षा का उद्देश्य स्त्री

मे सच्चे 'स्त्रीत्व' का विकास होना चाहिए। पर इस विषय मे लोगो मे बडा मतभेद दीख पड़ता है कि सच्चा 'स्त्रीत्व' क्या है ? कोई वीर, साहसी, अपने पैर पर खडा होने के लिए अधिकार मॉगने और पुरुष से उसके अनुचित व्यवहारो के लिए जवाब तलब करने वाली नारियो मे 'स्त्रीत्व' का आदर्श पूरा होता देखता है, कोई लज्जा और संकोच के आवरण से ढकी, मन ही मन दीप-शिखा-सी घुलनेवाली पर कभी मुँह न खोलनेवाली छुई-मुई को 'स्त्रीत्व' का आदर्श मानता है। समाज और साहित्य मे एक ऐसा दल भी पैदा हो गया है जो स्त्री-पुरुष के विवाह-सम्बन्ध को एक शारीरिक आवश्यकता की वस्तु मानकर उसमे पवित्रता तथा धार्मिकता देखनेवालो की हॅसी उडाने मे व्यस्त है। उसकी दृष्टि से या तो विवाह की प्रथा की वर्तमान रूप मे बिल्कुल आवश्यकता नही है और यदि है तो वैवाहिक सम्बन्ध मे सतीत्व और शारीरिक पवित्रता की भावना केवल पुरुषो—पतियो—के स्त्री को निजी सम्पत्ति समझने के अधिकार का बहाना मात्र है। इन विचार-धाराओ और प्रवृत्तियो के बीच 'स्त्रीत्व' का आदर्श डॉवाडोल हो रहा है।

यह स्त्रीत्व और मातृत्व क्या है

परन्तु जब इन प्रवृत्तियो और विचार-धाराओ के मूल मे पैठते है तब स्त्रीत्व का एक आदर्श स्थापित करने मे विशेष कठिनाई का अनुभव नहीं करना पड़ता। पहले तो गृहजीवन की पवित्रता तथा समाज से उसके सम्बन्ध को कायम रखने के लिए यह मान लेना चाहिए कि पुरुष-स्त्री का सम्बन्ध कुछ स्थायी प्राकृतिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए है और यह सम्बन्ध एक ओर जितना ही मधुर, उदार तथा स्वतत्र प्रवृत्तियो पर आश्रित होना चाहिए, दूसरी ओर उतना ही दृढ़, अन्योन्याश्रयी, व्यापक एवं परस्पर आत्म-समर्पणशील होना चाहिए। यदि इतनी बातें मान ली जायॅ और स्त्रियॉ जहॉ अपने दृष्टिकोण को थोडा विशद बनावे वहॉ पुरुष ज्यादा उदार

बनें और स्त्री को अपनी सम्पत्ति समझने की अधिकार-भावना पर विजय प्राप्त करके थोडा नम्र और आत्मार्पणशील बन जायँ तो स्त्री-पुरुष-युद्ध अपने आप समाप्त हो जायगा। क्योंकि इन सब वाग्युद्धो के बीच भी दोनों को किसी न किसी रूप मे एक-दूसरे का सहयोग प्राप्त करना ही पडता है।

इसलिए यदि स्त्री-पुरुषके परस्पर सम्बन्ध की वर्तमान अवांछनीय दशा का विचार छोड़कर देखें, यदि पुरुष के पतन और हर हाल्त मे नारी को अपनी सम्पत्ति और भोग्य वस्तु समझने से वर्तमान नारी के हृदय मे प्रतिक्रिया के रूप से होड़ की जो आँधी चल रही है, उसे एक स्थायी समस्या न समझ स्त्री-पुरुष के साधारण सम्बन्ध को लेकर ही देखे तो नारी का अपना आदर्श क्या है, इसका विचार करके ही हमे नारीत्व का निश्चय करना पड़ेगा। अपनी अपूर्णता को लेकर प्राणी मे जो आकुलता है उसीके सहारे नारी उसमे व्यवस्थित, सुन्दर और पूर्णतर जोवन का निर्माण करती है। पुरुष मे सृजन की जो शक्ति है उसे जहाँ वह एक ओर मृदुल और सुन्दर बनाकर उसको एक आध्यात्मिक रूप देती है, वहाँ पुरुष के साथ अपने सहयोग से वह जिस नवीन जीवन की सृष्टि करती है, उसकी रक्षा, लालन-पालन भी करती है। इस नवीन प्राणी के तुच्छ मास-पिण्ड मे दया, ममता, प्रेम और सुन्दर चेतन का विकास करना उसी का काम है।

नारी के इस आध्यात्मिक रहस्य की ओर जब हम ध्यान देते हैं तो यह मान लेने में बाधा नहीं पड़ती कि ममता, दया, क्षमा, प्रेम, सहिष्णुता नारी के लिए अधिक आवश्यक हैं क्योंकि इनके बिना वह न तो पुरुष की पशुता को सुन्दर और उपयोगी रूप दे सकती है न नवीन जीवन की वृद्धि और विकास की जिम्मेदारी को सँभाल सकती है।

इस प्रकार स्त्री को जो शिक्षा दी जाय उसमे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसके कारण इन गुणों का विशेष विकास हो।

माता का कर्त्तव्य है कि अपने कमरे मे सती, सीता, सावित्री इत्यादि के चित्र लगा रक्खे और लड़की (या लड़के) को बचपन से इन्हे प्रणाम करना सिखावे। तीन वर्ष की अवस्था से ही सतियो की, वीरागनाओ की कहानियाँ मनोरञ्जक और सरल ढग से उन्हे सुनाने का क्रम डालना चाहिए। इससे मातृत्व का गौरवमय भाव लड़कपन से उनके अन्दर पैदा हो जायगा और बड़ी होने पर वे कभी स्त्री-योनि मे जन्म पाने के कारण अपने को हीन नहीं समझगी। शिशु को पालने मे जो शिक्षा मिलती है, उसका असर जन्म-भर रहता है। दूसरी बात यह है कि गोद की अवस्था से ही लड़की (या लडके) मे सफाई की आदत डालनी चाहिए। इसके लिए माता का सदा स्वच्छ रहना एव उसमे बच्चे के पास जरा भी गन्दगी होते ही उसे तुरन्त दूर कर देने की आतुरता होना जरूरी है। इससे सफाई की आदत पड़ेगी और बच्चो का स्वास्थ्य अच्छा रहेगा।

पहले पाँच वर्ष

सफाई

तीसरी बात, जो लड़के की भाँति ही, लड़की को ३-४ वर्ष की अवस्था से सिखानी चाहिए, सदा सच बोलने और किसी जीव को कष्ट न पहुँचाने की बात है। सच बोलने का अभ्यास कराने वाली माता को उचित है कि वह स्वय सदा सच बोले और बच्चे के सामने कभी दो तरह की परस्पर-विरोधी बाते न करे। यदि आरभ से चेष्टा की जाय तो बच्चो के अन्दर सत्य-भाषण की आदत बड़ी सरलता से डाली जा सकती है। किसी को दुःख न पहुँ-चाने की भावना बच्चो में फैलना जितना सरल है, उतना और कुछ नही। वे सहज ही कोमल, भेद-भाव-रहित और सबको अपनाने वाले होते है। जरा-से अभ्यास से उनसे यह भाव बहुत दूर तक बढ़ाया जा सकता है।

पाँच वर्ष की अवस्था में कन्या का विद्यारभ सस्कार होना चाहिए। पहले गिनती, सती स्त्रियो की कहानियाँ और महापुरुषो के नाम याद कराने

पाँच से साढ़े छः

चाहिएँ। साथ ही गुरुजनो एवं माता-पिता तथा बड़े भाई-बहनों को नित्य उठकर प्रणाम करने का अभ्यास कराना चाहिए। गिनती इत्यादि याद हो जाने पर उन्हे अक्षरो का ज्ञान कराना ठीक होगा। ज्यों-ज्यों अक्षरो का ज्ञान होता जाय, उनसे महापुरुषो एवं प्राचीन सतियों का नाम पट्टी या स्लेट पर लिखाना चाहिए। इनके नाम का अभ्यास होने से उनमे स्वयं यह पूछने की उत्कण्ठा जाग्रत होगी कि ये लोग कौन थे? अपना नाम, पता और माता-पिता का नाम भी लिखाना चाहिए और साथ ही यह भी बताना चाहिए कि हमारा देश भारत-वर्ष है, हम हिन्दू है, हमारी भाषा हिन्दी है और सदा सच बोलना और दूसरों की भलाई करना ही हमारा धर्म है। कभी-कभी सूर्य, चन्द्रमा, बादल, फूल, पेड़-पत्ते दिखाकर उन्हे इनका उपयोग बताना चाहिए। इससे बहुत शीघ्र बच्चे की प्रतिभा बढ़ेगी। लड़कियों को जो कहानियाँ बताई जायँ, उनमें स्त्रियो की वफादारी, साहस, सत्कर्म और वीरता की कहानियाँ ज्यादा होनी चाहिएँ। आठ-नौ वर्ष की अवस्था तक लड़के-लड़कियो की शिक्षा मे इसके सिवा और भेद नही होना चाहिए और जहाँ कहीं संभव हो ८-९ वर्ष तक लड़की-लड़को को एक साथ ही पढ़ाना चाहिए। यदि सुशील माताये इस उम्र तक स्वय शिक्षा दे तो और भी ज्यादा अच्छा प्रभाव पड़ सकता है, क्योंकि बच्चे पुरुष की अपेक्षा, मातृभाव की प्रधानता के कारण, स्त्री के पास अधिक प्रेम और मनोयोगपूर्वक पढ़ते और सीखते है।

मेरी समझ से जितनी बाते मैंने ऊपर बताई है, वे पाँच वर्ष की अवस्था से लेकर साढ़े छः वर्ष की अवस्था तक—डेढ़ वर्ष मे अच्छी तरह सिखाई जा सकती हैं। इतने दिनो तक इससे ज्यादा सिखाने की जरूरत नहीं; क्योंकि इस अवस्था के बच्चो को साधारणतः दो-ढाई घटे रोज से अधिक पढ़ाना ठीक नहीं, इससे उनके स्वास्थ्य पर बुरा असर पडता है। साथ ही

इस अवस्था मे रटने की प्रवृत्ति पर कभी भी जोर न देना चाहिए। देखना यह चाहिए कि वह उन शिक्षाओ को दैनिक जीवन मे कहाँ तक कार्यान्वित कर रहा है। कोई भूल करे तो उसे प्रेम से समझाना चाहिए और उसे पुचकार कर ही उससे उसकी भूलो का पता लगाते रहना चाहिए। कभी मारना-पीटना नहीं चाहिए। इससे बच्चो को लड़कपन से ही पशु-बल के सामने दब जाने की आदत पड़ जाती है और माता या शिक्षक की सारी शिक्षाये व्यर्थ होती है। जब माता या शिक्षक ने यह बताया हो कि क्रोध कभी नही करना चाहिए और खुद क्रोध करके उसे पीटता हो, तो किसी तरह उस बच्चे के मन पर इस शिक्षा का प्रभाव नही पड सकता।

साढ़े छः वर्ष की अवस्था से लेकर नौ वर्ष की अवस्था तक लड़कियो को बोलने-चालने का ढग सिखाने चाहिए तथा अपने सब काम धीरे-धीरे अपने ही हाथो करने की आदत डलवानी चाहिए। इसके साथ ही उन्हे भारत के इतिहास की चुनी हुई कहानियॉ, हमारी गुलामी की गाथा, देश की हीनावस्था, स्वाधीनता की आवश्यकता इत्यादि बाते खास तौर से बतानी चाहिएँ। सामाजिक बातो मे परदे की हानियॉ, गहने की बुराई इत्यादि बाते सिखानी चाहिएँ। थोडा हिसाब-किताब और पत्र लिखना भी आ जाय, तो अच्छा। चरखा कातना इस अवस्था मे प्रत्येक लडकी को जरूर जान लेना चाहिए और नियमित रूप से कम से कम एक घण्टा कातने का अभ्यास भी उसे करना चाहिये।

साढे छः से नौ

लड़की का स्वास्थ्य ठीक रहे, इसलिए उसे सुबह-शाम एकान्त और खुली जगह मे दौडना चाहिए; घर साफ करने और दस-पॉच बार चक्की घुमाने का भी अभ्यास आवश्यक है।

यदि ठीक तरह से इस क्रम का पालन किया जाय तो पॉच से नौ वर्ष के बीच मे—४ वर्षों में—लडकियो का नैतिक, मानसिक और शारीरिक

विकास यथेष्ट मात्रा मे हो सकता है। इससे उन्हे इतिहास का थोड़ा ज्ञान हो जायगा, देश की वर्तमान अवस्था मालूम हो जायगी, थोड़ा हिसाब-किताब आ जायगा, वे चिट्ठी-पत्री लिखने लगेगी, चरखा कातने का अभ्यास होगा, साधारण पुस्तके पढ़ने-समझने की अक्ल आ जायगी और स्वास्थ्य ठीक होने के साथ ही समाज मे किस तरह उठना-बैठना, बोलना-चालना चाहिये, यह भी वे सीख जायँगी।

नौ से बारह वर्ष की अवस्था लड़की के लिए बड़ी महत्वपूर्ण अवस्था है। मेरा विचार है कि जो माता-पिता प्रबन्ध कर सके, लड़की को संगीत की शिक्षा अवश्य दें। वीणा, सितार या हारमोनियम मे से कोई एक चीज थोड़ा-बहुत बजाना जान ले तो अच्छी बात होगी। सगीत पति की, और अपनी भी, मानसिक चिन्ता दूर करने का एक रामबाण उपाय है, पर गानो में गजल इत्यादि की जगह ऊँचे विचार वाले गीत या भजन ही सिखाने चाहिएँ।

नौ से बारह

इस अवस्था मे पुस्तक की शिक्षा से भी अधिक ध्यान घरेलू जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली व्यावहारिक शिक्षा की ओर देना चाहिए। जैसे भोजन बनाना, कपड़े काटना एवं सीना, थोड़ा कसीदे का काम, घर को कैसे साफ-सुथरा रखना चाहिए तथा अतिथियो का स्वागत-सत्कार कैसे करना चाहिए, इत्यादि बाते खास तौर से सिखानी चाहिएँ। बड़ो के सम्मुख शील, संकोच और आदर से बोलना और छोटो से ममता एवं स्नेहपूर्वक बात करना सिखाना चाहिए। एक बहुत जरूरी शिक्षा यह है कि घर का हिसाब-किताब कैसे रखना, जिसमे दो पैसा बचता रहे। इसकी व्यावहारिक शिक्षा इस तरह दी जा सकती है कि चार-छः महीने घर का खर्च लड़की की सलाह से ही चलाया जाय, जिससे उसे गृहस्थी के खर्च की सब कठिनाइयाँ मालूम हो जायँ।

इसके साथ-साथ पुस्तक की शिक्षा भी थोड़ी-बहुत होती रहनी चाहिए।

भारत मे, और विशेषतः हिन्दू समाज मे, १२ वर्ष की अवस्था प्राप्त करते ही लड़की विवाह-योग्य समझी जाने लगती है पर यह नितान्त भ्रम है। इतनी कम उम्र मे न तो लड़कियो का पूर्ण शारीरिक विकास ही सभव है और न मानसिक विकास ही विवाहित जीवन की जिम्मेदारियो को उठाने योग्य हो सकता है। सच पूछो तो १२ वर्ष के बाद तो कन्या जीवन को कुछ-कुछ समझने के योग्य बनती है। १६ वर्ष से पूर्व लडकी का विवाह मेरी सम्मति मे उसका कामुकता के अग्नि-कुण्ड मे बलिदान मात्र है। यह हर्ष की बात है कि पिछले १० वर्षों मे इस दिशा मे जन-मत मे वाछनीय प्रगति हुई है और अब छोटी उम्र की शादियो को बुराई को लोग समझने लगे है। सरकारी कानून ने भी इस दिशा मे किंचित सहायता की है।

१२ वर्ष से १६ वर्ष की अवस्था कन्या के जीवन मे अत्यन्त महत्व-पूर्ण है। इस अवधि मे उसके अन्दर अनेक शारीरिक तथा मानसिक परिवर्तन होते हैं। मासिक धर्म आरम्भ होता है। इससे अनेक कन्याएँ भयग्रस्त एवं चिन्तित हो जाती है। पर इसमे चिन्ता की कोई बात नहीं। यह प्राकृतिक धर्म है और इस बात का द्योतक है कि कन्या किशोरावस्था की सीमा मे प्रवेश कर रही है। यह जीवन मे मानो एक नयी ऋतु के आगमन की सूचना है। माता का कर्तव्य है कि कन्या को इसका तात्पर्य और महत्व बताकर उसे पूर्णतः निश्चिन्त एवं भय-रहित कर दे।

१२ से १६ वर्ष की अवस्था मे कन्या की शिक्षा पर बहुत ध्यान देने की आवश्यकता है। उसमे नवीन प्रवृत्तियाँ विकसित होती है। माता-पिता का कर्तव्य है कि वे देखते रहे कि लडकी किस प्रकार की पुस्तकें पढती है—किन चीजो मे उसका मन अधिक लगता है। इस काल मे

चित्त में विनय एवं संयम की अत्यधिक आवश्यकता है। साधारण शिक्षा के साथ-साथ उसके अन्दर वे सब उपकरण जाग्रत करने चाहिएँ जिनकी उसे भावी जीवन में आवश्यकता पड़ेगी। यह भावी जीवन की जिम्मेदारियाँ उठाने योग्य बनने की तैयारी का समय है।

सबसे अधिक आवश्यकता इस बात की है कि लड़की पूर्णतः नीरोग हो। उसके स्वास्थ्य पर इस काल मे सबसे अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। विवाहित नारी जीवन की जिम्मेदारियाँ इतनी अधिक हैं और आजकल समाज मे फैली हुई गरीबी और बेकारी के कारण उनका रूप कुछ ऐसा जटिल हो गया है कि अस्वस्थ अथवा दुर्बल नारी कभी विवाहित जीवन मे सफल और सुखी होने की आशा नही कर सकती। विवाहित जीवन मे स्वास्थ्य नारी की मुख्य पूँजी है। अस्वस्थ नारी न केवल अपने लिए भार-रूप है बल्कि वह विवाहित जीवन एवं मातृत्व के लिए अभिशाप है। वह स्वयं दुःख उठाती, सारे कुटुम्बियो की चिन्ता का कारण होती और दुर्बल सन्तानो का दान कर समाज की हानि करती है। इसलिए १२ से १६ वर्ष की अवस्था तक अपने स्वास्थ्य को बनाने मे लड़की और उसके माता-पिता को पूरा ध्यान देना चाहिए। घूमना, तैरना, चक्की चलाना, बागवानी तथा अन्य स्त्रियोचित व्यायाम करके शरीर को पुष्ट करना चाहिए। यद्यपि आज हेय समझकर उसका त्याग कर दिया गया है किन्तु चक्की चलाना प्रत्येक अवस्था मे (बीमारी को छोड़कर) नारी के लिए सर्वोत्तम व्यायाम है।

शरीर-संपत्ति का संचय करते हुए लड़कियों के लिए दूसरी आवश्यकता इस बात की है कि उदारता और मृदुता का भाव उनमे खूब बढ़ाया जाय। प्रायः विवाहित जीवन की असफलता का कारण साधारण स्थितियों को ठीक तरह से हल करने की अक्षमता होती है। मेरा अनुभव है कि सहन-

शीलता, मृदुता और उदारता विवाहित जीवन की सफलता के लिए सबसे आवश्यक बातें हैं। अधिकाश अवस्थाओ मे विवाहित जीवन की असफलता का कारण यह नही होता कि पति-पत्नी मे एक-दूसरे के प्रति सदाशयता अथवा शुभाकाक्षा की कमी होती है, बल्कि वह इसलिए असफल होता है कि अपनी सदाशयता को प्रकट किस प्रकार करना चाहिए, किस अवस्था मे उसका कैसा उपयोग करना चाहिए, यह वे नही जानते। पति के अशान्त मन के कारण निकली हुई एक कटु बात का जवाब मृदुता से देकर योग्य एव चतुर पत्नी दुःखदायी प्रसग को टाल देती है और मूर्ख पत्नी उसका जवाब देकर बात का बतगड बना लेती है जिससे गृह मे कलह का आरम्भ होता और पति-पत्नी एक दूसरे से दूर हटते जाते हैं। विवाहित जीवन मे 'टैक्ट' की—चतुराई की बडी जरूरत है। मृदुभाववाली पत्नी कडवी घूँट पीकर पति के दिल के कॉटे को निकाल लेती है; विष अमृत हो जाता है। मृदु स्वभाव, न कि पाडित्य, विवाहित जीवन की सफलता के लिए आवश्यक है। इसलिए कन्या को मृदुता, सहनशीलता, विनोद की वृत्ति—Sense of humour—कडुवी बात सुनकर भी प्रसन्न एव हॅसमुख रहने की आदत डालनी चाहिए।

इसलिए साधारण—साहित्यिक—शिक्षा के साथ-साथ लड़की को बड़ी सावधानी के साथ भावी जीवन के लिए तैयार करना चाहिए। उसे धीरे-धीरे यह बताना चाहिए कि उसका विवाह होने वाला है, उसे दूसरे के घर जाना होगा तथा उस अपरिचित एव बिल्कुल नई जगह मे उसे एक पूरी गृहस्थी का भार सम्भालना होगा। विवाह का क्या उद्देश्य है; पति, सास, श्वसुर, ननद, एव भौजाइयो से कैसे बोलना-चालना, कैसा व्यवहार करना कि सब वश मे हो जायॅ, इत्यादि बातें समझनी चाहिऍ। यह बताना चाहिए कि विवाह

भावी जीवन की तैयारी

के बाद लड़कपन की स्वतन्त्रता नही रह सकती, दूसरो के सुख-दुःख का हर समय ख़याल रखना पड़ेगा और स्वयं कष्ट सहकर भी दूसरो को सुखी बनाना होगा।

मेरा अपना अनुभव तो यह है कि आज-कल नारी-जीवन जो इतना दुःखमय हो रहा है उसके मूल मे जहाँ अनेक सामाजिक कुरीतियाँ काम कर रही है वहाँ माता-पिता या संरक्षको के पालन-पोषण का ढग भी इसमे सहायता करता है। लड़कियाँ या तो बहुत ज़्यादा उपेक्षा के साथ पाली जाती है जिससे लड़कपन से ही उनके व्यवहार मे कटुता और जीवन में सुस्ती तथा उदासीनता आ जाती है या उनका लाड-प्यार इस ढग से होता है कि उनमें कर्त्तव्य की अपेक्षा मोह का भाव ज्यादा आ जाता है। चूँकि लड़की को माता-पिता का घर छोड कर एक नई जगह जाना पडता है इसलिए उसके अन्दर ममता की जगह कर्तव्यशीलता का भाव लड़कपन से जगाना चाहिए। मेरा यह अपना अनुभव है कि बहुत सी लडकियाँ यद्यपि वे सुशील, अच्छे हृदय की और प्रेममयी होती हैं, अच्छे और उदार पतियो को पाकर भी अपना दाम्पत्य जीवन दुःखपूर्ण कर लेती है। लड़कपन से उनका लालन-पालन ही इस प्रकार होता है कि ससुराल जाने पर भी वे मायके की चिन्ता और मोह मे पड़ी रहती है और दुःखी होकर अपना स्वास्थ्य खो बैठती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि पति-पत्नी दोनों के सहृदय और प्रेमपूर्ण होते हुए भी दोनो के जीवन मे एक प्रकार की उदासीनता छा जाती है और यदि वह शीघ्र दूर न की गई तो उसका असर अन्त तक रहता है। और दोनो के जीवन मे एक प्रकार का दुःख, एक तरह का अभाव बना रहता है। इस प्रकार मैंने देखा है कि निर्दोष होते हुए, एक-दूसरे को सुखी करने की इच्छा रखते हुए तथा परस्पर प्रेम होते हुए भी, लड़कियो का तथा उनके साथ

उनके पतियो का भी, जीवन दुःखमय हो जाता है। सच पूछो तो यह जीवन मे एक बड़ी करुणाजनक घटना है। जहाँ हृदय ही खराब हो, प्रेम न हो वहाँ दुःख उतना दुःख नही देता जितना प्रेम होते हुए भी, कर्त्तव्य-बुद्धि के अभाव के कारण होनेवाला दुःख जीवन को असह्य बना देता है।

इसका कारण यह है कि दुनिया मे केवल प्रेम से ही सब समस्याएँ नही सुलझ सकती। प्रेम का किस प्रकार, कहाँ, कैसा प्रयोग करना चाहिए, यह जानना भी जरूरी होता है। प्रेम शक्ति है, कर्तव्य उस शक्ति को उपयोगी करके जीवन को मधुर और सुन्दर के साथ ही कर्तव्य-परायण और विवेकशील बना देता है। इसलिए लड़कियो को आरम्भ से ऐसी शिक्षा देनी चाहिए जिससे वे प्रेम के साथ ही कर्तव्य को प्रधानता दे। समझने योग्य अवस्था होते ही उन्हे यह बताना चाहिए कि जैसे उनकी माँ अपने माँ-बाप का घर छोड़कर इस घर मे आई वैसे उन्हे भी एक दिन माता-पिता का घर छोड कर दूसरे घर मे जाना पड़ेगा और उसे ही अपना घर बनाना पड़ेगा।

इसके साथ ही लड़कियो को समय-समय पर अपने माता-पिता से दूर अपने निकट एव विश्वस्त सम्बन्धियो के घर भी दो-दो चार-चार महीने रखना चाहिए। इससे माता-पिता से दूर रहने का भी उन्हे अभ्यास होगा।

यदि इन बातो का ध्यान रक्खा जाय तो विवाह के बाद, मायके के मोह से, लड़कियाँ जो कई बार अपने को दुखी चिन्तित और बीमार बना लेती है और सदा के लिए दाम्पत्य जीवन के सुख को खो बैठती हैं, उससे उनकी रक्षा होगी। माता-पिता अथवा संरक्षक यदि इन बातो का ध्यान रक्खे तो लडकियो का कल्याण करेगे।

लड़कियों का साधारण शिक्षण-क्रम

साहित्यिक :

भाषा-ज्ञान। मातृभाषा लिखने-पढ़ने एवं बोलनेकी अच्छी योग्यता।

अंग्रेजी एव राष्ट्रभाषा का काम चलाऊ ज्ञान।

· भारत का भूगोल। विश्व के भूगोल की रूप-रेखा।

भारत का इतिहास। हमारी सस्कृति, सभ्यता का उत्कर्ष, पराभव एव पतन की कहानी।

देश का अच्छा ज्ञान। स्वतन्त्रता के आन्दोलन। काग्रेस का इतिहास।

गणित। हिसाब-किताब रखने भर।

· मातृभाषा के साहित्य का ज्ञान।

धार्मिक एवं सामाजिक :

हिन्दू धर्म के सर्वात्मभाव की शिक्षा। अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णुता एव मैत्रीभाव की शिक्षा।

जीवन मे अहिंसा का व्यावहारिक उपयोग।

श्रीकृष्ण, बुद्ध, ईसा, मोहम्मद, गाधी इत्यादि की शिक्षाओ पर मनन।

हिन्दू त्योहारों, व्रतों का ज्ञान।

हिन्दू सतियो एव सन्तो का ज्ञान।

जीवन मे विवेक एव श्रद्धा के सामञ्जस्य की आवश्यकता की अनुभूति।

परदे, गहने, दहेज, अस्पृश्यता इत्यादि सामाजिक बुराइयो से होने-वाली हानियॉ। उनके त्याग का निश्चय करानेवाली शिक्षा। वर्तमान जीवन में फैशन की घातकता। सादगी पर जोर। बाहरी प्रदर्शन एव चटक-मटक से दूर रहने की शिक्षा।

औद्योगिक एवं व्यावहारिक :

चर्खा कातने का अभ्यास। 'कपड़ो की कटाई, सिलाई, बुनाई एव सगीत की शिक्षा। सम्भव हो तो चित्रकला को भी शिक्षा।

' भोजन बनाने, गृह को सादगी के साथ एव व्यवस्थित रूप मे रखने की शिक्षा। सौन्दर्य वृत्ति एवं कला-वृत्ति का सस्कार।

तैरना, चक्की, घूमना तथा अन्य प्रकार के व्यायाम।

'घरेलू औषधियो का ज्ञान।

शिशु-पालन।

साधारण :

शिष्टाचार का शिक्षण।

पूजीवाद, साम्यवाद, उग्रराष्ट्रवाद, गाधीवाद के मूल सिद्धान्त एव इनके अन्तर का साधारण ज्ञान।

, अपने कार्य को अपने हाथ से करने मे गौरव की अनुभूति।

'नियमित रूप से समाचार पत्र पढने का अभ्यास।

खण्ड २ : नारी

"कौन-सी ऊँचाई है जहाँ स्त्री चढ़ नहीं सकती ? कौन-सा ऐसा स्थान है जहाँ वह पहुँच नहीं सकती ? हज़ारों अपराध करो, वह क्षमा कर देती है। जब किसी बात पर अड़ जाय तो संसार की कोई भी शक्ति उसे रोक नहीं सकती। ऐ देवी ! बिना तेरे संसार के पुरुषों का क्या हाल होता ? निराशा, उदासी, दुःख सब मिल कर तेरे हृदय से प्रेम-भाव को नही छीन सकते।"

—कार्लटन

: १ :

विवाह के पहले

लखनऊ
४ १०. ३०.

प्यारी बहन भगवती,

इसे मैं भी जानता हूँ और तुम भी जानती हो कि अब बहुत दिनो तक तुम हमारे घर मे न रह सकोगी। तुम्हारी अवस्था विवाह के योग्य हो गई है। पिताजी बहुत दिनों से तुम्हारा विवाह शीघ्र कर देने पर जोर देते रहे हैं और मै उसे टालता रहा हूँ। तुम यह भी जानती हो कि मेरे विचार इस सम्बन्ध मे पिताजी के विचारों से भिन्न है। माँ बेचारी तो मँझधार मे हैं। उनकी अवस्था प्राचीनता की ओर झुकी हुई है, उनकी बुद्धि मेरी बातो का समर्थन करती है; किन्तु अब वे भी अधीर हो रही हैं।

मुझे भगवान् ने दुनिया मे बहुत थोड़ी पूँजी देकर भेजा था। मुझे अपने कुटुम्ब से उन्नति के साधन कभी प्राप्त नही हुए। समाज, कुटुम्ब, सबका रुख बराबर उलटा रहा और मुझे सदा विरोधी परिस्थितियों मे रहकर, स्वजनो का विरोध सहकर, अकेले अपने बल पर रास्ता बनाना पड़ा। अब तो बहुत-सी बाधाएँ दूर भी हो गई है, पर अब भी मेरे पास अपने विचारो के अनुकूल तुम लोगों का निर्माण करने योग्य शक्ति नही है। जो कुछ साधन मैं जुटा सका, उसके अनुसार तुम्हे योग्य शिक्षा देने की मैंने सदा चेष्टा की। लगातार बाहर रहने के कारण मै जिस क्रम और नियम से तुम्हें शिक्षा देना चाहता था, न दे सका। फिर भी मुझे सन्तोष

है कि इस परिस्थिति में, अनेक चिन्ताओ और कार्यों के बीच, जो कुछ किया जा सकता था, मैंने किया है। मुझे हर्ष है कि पढ़ने-लिखने तथा अच्छी-अच्छी बाते एव कलाएँ सीखने की तुममे लगन है। इसलिए मुझे विश्वास है कि तुम जहाँ भी रहोगी, थोड़ी-बहुत मात्रा में अपना अध्ययन जारी रक्खोगी।

मेरे जीवन का कार्यक्रम कुछ निश्चित नही है। मैं कब कहाँ रहूँगा, इसका भी कुछ ठीक नहीं है। सम्भव है, तुम्हारे विवाह के समय मैं उपस्थित न रहूँ, इसलिए इस सम्बन्ध मे मुझे तुम से जो कुछ कहना है, लिख रहा हूँ। यदि तुम इन बातो पर ध्यान दोगी तो सुखी रहोगी।

अब तुम निरी बालिका नही हो। माँ के या मेरे कही चले जाने पर तुम रोने लगती हो। इससे तुम्हारे हृदय की कोमलता सिद्ध होती है। यह ठीक है कि कोमलता स्त्री का एक विशेष गुण है, पर सबसे आवश्यक शर्त उसके जीवन को सुखी बनाने के लिए यह है कि वह जहाँ जिस अवस्था मे रहे, अपने को उसके अनुकूल बनाले। यदि तुम इसका अभ्यास कर लोगी तो कभी दुखी न होगी। तुम्हारी अवस्था की अनेक लड़कियाँ आज बड़े-बड़े घरो को अकेले सँभाल रही है और कई तो तुम्हारी अवस्था मे माताएँ भी हो जाती है। ऐसी हालत में तुम्हे गम्भीरतापूर्वक उस जिम्मेदारी के लिए, जो तुम पर आने वाली है, अपने को जल्दी से जल्दी तैयार कर लेना चाहिए।

यह ठीक है कि जिस माँ का तुमने दूध पिया है, जिस भाई की गोद मे तुम खेली हो, जिस घर मे तुम्हारे जीवन के सर्वश्रेष्ठ सोलह वर्ष बीते हैं, उसे छोड़ कर एक अपरिचित घर को अपनाने मे, आरम्भ मे, तुम्हे दुःख होगा। तुम्हें क्या, एक साधारण पशु को भी इतने दिन एक जगह रहने के बाद वहाँ से अलग होते कष्ट होता है। प्रत्येक प्राणी का

यह स्वभाव है कि वह जहाॅ रहता है, जिन लोगो के साथ रहता है, उनसे उसका अपनापन हो जाता है। फिर जिस माता-पिता के रक्त-मास से तुम्हारा शरीर बना है, जिन भाइयो की शुभाकाक्षाओ की छाया मे तुम इतने दिनो तक पली हो, उन्हे छोड़ते दुःख होना स्वाभाविक है, पर दुनिया केवल भावुकता की जगह नही है। यह कर्तव्य की रगशाला है। समस्त संसार मे, प्रत्येक देश और समाज मे (एकाध जगली जातियो को छोड़ कर) विवाह होने पर लड़की को पिता का घर छोड़ कर पति के घर जाना पड़ता है और उसके बाद पति का घर ही उसका अपना घर होता है, पति की सम्पत्ति ही उसकी अपनी सम्पत्ति होती है। वहाॅ सास-ससुर का माता-पिता से भी बढ़कर सम्मान और आदर करना पड़ता है।

पति-पत्नी का सम्बन्ध

शास्त्रो मे पति, स्त्री का देवता कहा गया है। इसका यह मतलब नही कि पति के सामने पत्नी का कोई स्थान ही नही है। जहाॅ पति देवता है, वहाॅ पत्नी देवी है। पति विष्णुरूप और स्त्री लक्ष्मी-रूप है। बल्कि कई बातो मे पत्नी का महत्व और जिम्मेदारी पति से भी अधिक है, क्योकि पुरुष चाहे जो हो, वह स्त्री की सन्तान ही है।

पति को देवता मानने का अर्थ इतना ही है कि जिस प्रकार देवता की पूजा और उपासना मे लीन हो जाना, अपने अस्तित्व को, अपनी हस्ती को भूल जाना पड़ता है, वैसे ही पति मे पत्नी को एकदम मिल जाना चाहिए। उसके सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख समझना चाहिए; उसकी रक्षा, उसकी सेवा मे अपनी शक्ति लगा देनी चाहिए।

विवाह के पूर्व ही तुम्हे यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि जिस घर मे तुम जाओगी वह चाहे कैसा ही हो, स्वर्ग नही होगा, न

भावी जीवन

एकदम नरक ही होगा। दुःख-कष्ट, ईर्ष्या-द्वेष, कटुता एवं संघर्ष भी वहाँ होगे और स्नेह, विश्वास, मृदुता एवं सहानुभूति भी होगी। इन दोनो की मात्रा मे कमी-ज्यादती हो सकती है, पर किसी एक का बिल्कुल अभाव हो, यह नही हो सकता। अब अपनी सहन-शीलता, अपने कोमल व्यवहार, अपनी सेवा एवं मृदु-वाणी से कटुता का वातावरण दूर करके अँधेरे घर मे उजाला करना, अशान्त एवं असहिष्णु प्राणियो पर प्रेम एवं सेवा से विजय प्राप्त करना तुम्हारा काम है। लड़की को पिता के घर जितनी आजादी, जितनी बेतकल्लुफी और जितनी स्वच्छन्दता होती है, ससुराल मे उसे प्रत्येक क्षण उतने ही बन्धन, शील, संकोच एव संयम से काम लेना पडता है। वहाँ उसकी जिम्मेदारी बढ़ जाती है और प्रत्येक विषय मे बड़ी गम्भीरता, संयम और प्रसन्नता से काम लेना पडता है।

इसलिये सब से पहली बात तुम्हारे जानने की यह है कि कुछ दिनो बाद तुम्हे एक ऐसा घर सँभालना पडेगा, जिसे पहले तुमने कभी नहीं देखा,—जहाँ के लोग तुम्हारे लिए बिल्कुल अपरिचित है, किन्तु तुम्हे इन्हीं लोगो को अपना सब कुछ समझना पड़ेगा, वही तुम्हारा कुटुम्ब है, यह भावना मन मे पैदा करनी होगी। पति हमारे लिए सब कुछ है, सास हमारे लिए माता-तुल्य है और श्वसुर पिता के समान है तथा देवर और ननद से भाई-बहन का स्नेह प्राप्त किया जा सकता है, इसे अच्छी तरह मन मे समझ लेना चाहिए।

दूसरी बात यह है कि ससार मे बहुत से लोग विवाह को सुख का खजाना समझते है, पर मै तुम्हे पहले से बता देना चाहता हूँ कि यह बात गलत है। विवाह खेल की चीज नही, विवाह के बाद स्वतन्त्रता कम हो जाती है; जिम्मेदारियाँ और चिन्ताएँ बढ़ जाती हैं। इसलिए

तुम अपने मन मे कभी बड़ी-बड़ी आशाएँ मत रखना। सदा यही सोचना कि जो जीवन आगे हमको बिताना है, उसमे सुख की अपेक्षा कष्ट ही अधिक होगा और भोग की अपेक्षा त्याग और सेवा की ही उसमे प्रधानता होगी। भावी जीवन की कठिनाइयो के लिए तुम्हें अपना हृदय दृढ़ बनाना चाहिए और उसके लिए तैयार रहना चाहिए। झूठे और रगीन स्वप्नो का जाल बुन कर उसमें अपने को फँसा लेना आसान तो है पर बाद मे जब सपने सपने ही रह जाते हैं या जागरण की ठोकर से टूट जाते है तब बड़ा कष्ट होता है। इसलिए कल्पनाओ पर भी संयम रखना चाहिए और अपने को छुई-मुई नही बना लेना चाहिए।

: २ :

विवाह और उसका उद्देश्य

अजमेर

बहन भगवती, ९. १०. ३०.

तुमको इसके पहले विवाह के सम्बन्ध मे एक पत्र लिख चुका हूँ! उससे तुम्हे इस बात का थोड़ा-बहुत ज्ञान हो गया होगा कि तुम्हे अब एक बिल्कुल ही नये प्रकार के जीवन के लिए तैयारी करनी है और उसी जीवन के सुख-दुःख पर तुम्हारा भविष्य निर्भर है।

इसके पहले कि तुम अपने मन से कुछ कल्पना कर लो, मैं तुम्हें इस सम्बन्ध की सारी बाते, थोड़े मे, समझा देना चाहता हूँ! सबसे

जीवन-साथी

पहली बात यह है कि विवाह की आवश्यकता क्यो है और वह क्या चीज है! यह ठीक है कि अपने मन और शरीर को सब प्रकार से पवित्र और शुद्ध रख कर जीवन को सच्ची विद्या प्राप्त करने मे लगा देना और उसकी सहायता से समाज की, मनुष्य जाति की सेवा करना एक बडा भारी उद्देश्य और कार्य है; पर समाज को ठीक तरह से चलाने के लिए प्रत्येक स्त्री-पुरुष को जीवन मे आश्रय और सहायता की जरूरत पड़ती है। जीवन मे हम अकेले नहीं रह सकते। हम जो कुछ करना चाहते हैं, उसके लिए सदा सहायक और साथी की आवश्यकता पड़ती है! अब यदि वह सहायक या साथी ऐसा हो कि जिन्दगी भर दोनो का सहयोग बना रहे, दोनो के मन मिल जायॅ और दोनो के सुख-दुःख एक हो जायॅ तो एक-दूसरे से उन्हे बहुत अधिक उत्साह और सतोष प्राप्त होगा।

जीवन मे विवाह की आवश्यकता इसलिए नहीं है कि पुरुष को एक रोटी बनाने वाली और सेवा करने वाली की जरूरत पड़ती है और स्त्री को विवाहित होकर रहे बिना स्वर्ग नही मिल सकता, बल्कि विवाह की जरूरत इसलिए है कि उसके द्वारा स्त्री पुरुष दोनों ऐसे साथी पा जाते हैं, जिनका साथ मृत्यु तक बना रहता है और जिनके स्वार्थ, जिनका सुख-दुःख जिनका हृदय मिलकर एक हो जाने की संभावना की जा सकती है। जिसको जीवन मे ऐसा साथी प्राप्त होगया है जो उसके स्नेह को उसके सुख-दुःख को, हृदय से समझता और अनुभव करता है, जिसे एक ऐसे मित्र का या एक ऐसी बहन का या एक ऐसे भाई का वह सच्चा स्नेह प्राप्त है जिसमे दोनो का हृदय मिल गया है जिसमे एक का दुःख देखकर दूसरा तडपने लगता है और सोचता है कि मैं स्वयं इसके बदले कष्ट उठाकर कैसे इसके दुःख को दूर कर सकता हूँ; जहाँ एक को सुखी देखकर दूसरा सन्तोष की साँस लेता है और अपने को सुखी समझता है, वहाँ निश्चय ही विवाह की आवश्यकता, मेरी समझ से, नहीं है। जीवन मे विवाह की सबसे बड़ी जरूरत अपना एक सच्चा साथी ढूँढने के लिए है। और जिसे वह साथी मिल गया है, उसे विवाह की कोई वैसी जरूरत नहीं है।

किन्तु बिना विवाह किये सबको इस प्रकार का साथी मिल जाना कठिन, प्रायः असंभव, है। मानलो, किसी लड़की को एक ऐसा प्रेममय मित्र या भाई मिल गया, जो उसे बहुत स्नेह करता है। दोनों एक-दूसरे के सुख-दुःख को ही अपना सुख-दुःख समझते है। उस भाई के माता-पिता ने उसका विवाह कर दिया, उसकी स्त्री आगई और उसके प्रति उसकी जिम्मेदारी बढ़ गई। इधर उस लड़की की भी शादी होगई— या शादी की बात हटा दे तो उसके माँ-बाप उसे लेकर कहीं दूर चले गये

तो—दोनो मे स्नेह रहते हुए भी, दोनो एक-दूसरे के सुख-दुःख मे कुछ भाग नहीं ले सकेंगे। समाज की वर्तमान अवस्था ऐसी है कि सिवा पति-पत्नी के और किसी प्रकार के सम्बन्ध मे दो साथियो का हमेशा एक साथ रहना असम्भव है; इसलिए साधारणतः विवाह के बिना जीवन मे ऐसा साथी प्राप्त नही होता जिसे मृत्यु के सिवा दूसरी घटना अलग न कर सके और जिसका सहयोग सदा हमको प्राप्त होता रहे। इसलिए साधारण अवस्था मे एक सच्चा जीवन-साथी प्राप्त करने के लिए विवाह जरूरी है।

विवाह के और भी कई आर्थिक और शारीरिक कारण है, पर मुख्य बात यही है। कुछ यह भी मानते हैं कि जबतक स्त्री माता न हो जाय या पुरुष को सन्तान न हो, वे अपने मात-पिता के ऋण से नहीं छूटते। यह तो कोई अच्छी दलील नहीं है, पर हाँ, यह स्वीकार किया जा सकता है कि समाज की रचना और विकास के लिए सन्तानोत्पत्ति की आवश्यकता है। मातृत्व मे स्त्रीत्व की परणति है। नारी माता होकर समाज को संतति का दान करती और उसके जीवन-स्रोत को अक्षुण्ण रखती है। इस रूप मे वह समाज के जीवन की स्रोतस्विनी है।

दूसरे पहलू

विवाह एक साथ ही जीवन की अनेक आवश्यकताओ की पूर्ति करता है। यह हमे एक स्थायी संगी या साथी प्रदान करता है। यह हमारी वासनाओ को एक ही स्त्री या पुरुष तक सीमित करता है। यह समाज-जीवन के लिए आवश्यक सहयोग एव आत्मोत्सर्ग के वातावरण को अपने अन्दर पैदा और विकसित करने का मौका हमे देता है।

हम हिन्दुओ के यहाँ विवाह एक धार्मिक संस्कार है। इसका उद्देश्य, दो हृदयो का, दो प्राणो का सच्चा मिलन है। इसके द्वारा प्रत्येक स्त्री-पुरुष को एक दूसरे के लिए त्याग और बलिदान करने की शिक्षा

मिलती है। प्रत्येक विवाहित स्त्री का धर्म है कि वह अपनी अपेक्षा अपने पति के, अपने सास-ससुर के, अपने कुटुम्बियो के सुख का ध्यान अधिक रक्खे। वह अपने सुख का पति और कुटुम्ब के लिए बलिदान करती है और उन्ही के सुख से सुखी होना सीखती है। इससे उसे त्याग और सेवा की, अपनी अपेक्षा दूसरो के सुख का ज्यादा खयाल रखने की शिक्षा मिलती है। इसी प्रकार पति पत्नी की रक्षा, सुख-सुविधा तथा उसकी सहायता से माता-पिता एवं कुटुम्बियो की सेवा और उनके पालन मे अपनी शक्ति, समय और बुद्धि लगाता है। इस तरह विवाहित जीवन भोग-विलास और स्वार्थ की अपेक्षा, अपने सच्चे अर्थ मे, त्याग-तपस्या, कष्ट-सहिष्णुता और सेवा तथा परोपकार की भावना से मिश्रित परस्परावलम्बन—एक-दूसरे की सहायता—का जीवन है। इस दृष्टि से समाज के ऊपर गृहस्थ जीवन के अच्छे-बुरे होने का बडा असर पड़ता है।

किन्तु विवाहित जीवन के अच्छे होने के लिए इस बात की ज़रूरत है कि स्त्री सुख के बडे-बड़े सपने लेकर ससुराल न जाय। वह यह कभी न सोचे कि वहॉ रुपये-पैसे, खाने-पीने का सुख रहेगा, वहॉ मै आराम से रहूँगी, सुख और भोग-विलास का जीवन बिताऊँगी; अच्छी सास मिलेगी जो मुझे हाथो हाथ रखेगी; नौकर-चाकर मिलेंगे, पति का प्रेम प्राप्त होगा। ये सब सपने, ये सब कल्पनायें देखने मे सुन्दर है पर ये मृगतृष्णा की तरह धोखा देकर निराश और दुखी कर देनेवाली है। जो इन बडे-बड़े सपनो को लेकर ससुराल जाती है, वह अवश्य धोखा खाती है, उसे बहुत सम्भवतः निराश होना पड़ता है और उसकी नासमझी से उसका जीवन दुःखमय हो जाता है। ऐसी बाते सोचना स्वयं अपने भावी जीवन को दुखी करने, कष्टमय बनाने के समान है। इस प्रकार की आकाक्षाये पैदा करने मे पिता-माता और

कल्पना के महल।

लड़की की सहेलियों का भी काफी हाथ होता है। वे विवाहित जीवन की वास्तविकताओ के लिए लड़की को तैयार करने मे उतना रस नहीं लेतीं जितना इस प्रकार की दिल गुदगुदानेवाली कल्पनाओ और सपनो से लड़की का मन उन्मत्त कर देने मे लेती है।

सच बात यह है कि विवाह होने के बाद तो लड़की का वह लड़कपन का सरल, स्वच्छन्द और स्वतंत्र जीवन छिन जाता है। उसकी जिम्मेदारी, उसका बोझ, बढ़ जाता है और जीवन की प्रत्येक घड़ी मे अपने सुख के बदले, ससुराल के लोगो के सुख का ज़्यादा ख़याल रखना पड़ता है। विवाह होने के बाद मृत्यु तक उसकी सारी जिदगी कष्ट-सहन, त्याग, सेवा और कर्तव्यपरायणता की ज़िन्दगी होती है। एक विवाहित स्त्री फूल की उस कली के समान है, जो एक देवता के चरणो पर चढ चुकी हो और अपने हृदय की सारी सुगन्ध को देवता के मन्दिर मे बिखराती हुई एक दिन सूख जाय। इसलिए प्रत्येक विवाहित लड़की को इस तरह का ख़याल कभी न रखना चाहिए कि मुझे विवाह के बाद यह सुख मिलेगा, वह सुख मिलेगा। उसको सदा यह सोचना चाहिए कि किस प्रकार मैं अपने पति को, अपने सास-ससुर इत्यादि को सब तरह से सुखी कर सकती हूँ; कौन काम किस ढङ्ग से किया जाय, कौन बात किस तरह कही जाय कि ससुराल के सब लोग ज़्यादा-से-ज़्यादा सुखी हो। उसको अपने सुख का ध्यान ही न करना चाहिए और सच्चे हृदय से प्रत्येक समय अनुभव करना चाहिए कि पति इत्यादि सुखी हैं तो मैं भी सुखी हूँ।

आत्मोत्सर्ग

मेरा तात्पर्य यह नही है कि माता-पिता अथवा अभिभावको को वर का चुनाव करते समय भौतिक सुविधाओं—धन-धान्य, परिवार इत्यादि का विचार न करना चाहिए। इनका विचार तो उचित ही है। मेरा

मतलब केवल यह है कि लड़की का ध्यान इन बातो पर केन्द्रित नही करना चाहिए। उसे ये वस्तुएँ स्वाभाविक रूप मे प्राप्त हुईं तो वह सुखी होगी तथा उनका सदुपयोग करेगी और उनके कारण प्रयत्न एव कर्तव्य के प्रति असावधान नही होगी। यदि उसका ध्यान इन्ही बातो मे केन्द्रित कर दिया गया तो वह कर्तव्यच्युत होकर अंत मे दुखी हो सकती है।

समानता का भाव

प्रेममय दाम्पत्य जीवन के लिए यह आवश्यक है कि पत्नी और पति दोनो एक-दूसरे के हृदय को, एक-दूसरे के भावों और विचारो को समझे और सदा एक-दूसरे मे विश्वास रखते हुए मिलजुल कर काम करे। किन्तु इस विषय मे पुरुष बड़े जल्दबाज, नासमझ और गैरजिम्मेदार होते है। दुनिया मे प्रत्येक पुरुष यह चाहता है कि मेरी पत्नी पूर्णतः पतिव्रता और सीता-पार्वती जैसी हो; वह यह भी चाहता है कि मैं चाहे कैसा ही होऊँ पर मेरी स्त्री मुझे देवता समझे और सदा मुझ पर श्रद्धा रखे और मेरा अनुकरण करे। वह भूल से, पहले से ही समझ लेता है कि मानो पत्नी का प्रेम प्राप्त करने के लिए मुझे कुछ नही करना है; वह स्त्री पर स्वभावतः अपना अधिकार समझता है और सोचता है कि मेरी पत्नी का यह धर्म है कि वह हर अवस्था मे मेरी बात माने और मेरी प्रशसा करे—मुझ पर श्रद्धा रक्खे। वह यह भूल जाता है कि मेरी पत्नी भी मनुष्य है, उसके पास भी मेरे ही जैसा, बल्कि मुझ से भी कोमल, एक हृदय है जो सुख-दुःख अनुभव कर सकता है, जो मेरी ओर से दो मीठे शब्द सुनने के लिए, मेरी सहानुभूति पाने के लिए विकल है। पुरुष ने सदा ग्रहण करना, अधिकार जताना और शासन करना सीखा है। देना, आत्मसमर्पण करना और शासित होना उसने कभी नहीं जाना। इससे जहाँ पुरुष कठोर,

साहसी, हठी, उद्दण्ड और असन्तुष्ट हो गया है, वहाँ स्त्री ने बहुत अंशो मे अब भी, अपनी कोमलता, सहिष्णुता, दया, क्षमा, प्रेम, सेवा और सन्तोष को कायम रक्खा है। यह एक स्वीकृत बात है कि साधारणतः आजकल भी स्त्रियाँ पुरुषो की अपेक्षा ज्यादा वफादार है, उनमे त्याग, बलिदान और आत्म-समर्पण की भावना अब भी बनी है। सार्वजनिक क्षेत्र मे आकर पुरुष जहाँ यश इत्यादि के प्रलोभन मे पड गया है; जहाँ पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष, दम्भ और दलबन्दी मे उसने अपने व्यक्तिगत सदाचार को नष्ट कर दिया है और घरेलू मामलो मे बहुत नीचे गिर गया है, वहाँ स्त्रियो ने अपनी धर्मशीलता, श्रद्धा, गृहस्थ-सम्बन्धी सदाचार और सन्तोष की वृत्ति को कायम रखा है। यदि निष्पक्ष होकर तौला जाय तो आज भी एक साधारण स्त्री के साथ, पवित्रता और आचार की सुन्दरता मे, एक साधारण पुरुष तुल नही सकता।

इसलिए मेरा तुमको यह उपदेश है कि पति की अपेक्षा सदा तुम्हे अधिक त्याग करने को तैयार रहना चाहिए। पुरुष से स्त्री को कभी अधिक आशा न करनी चाहिए। वह इस विषय मे बहुत निकम्मा और क्षुद्र हो गया है। अपने चारो ओर उसने अनेक झूठे प्रलोभनो और कल्पनाओ का जाल बिछा रक्खा है और उसमे खुद ही फॅस गया है। इसलिए पुरुषो की बेवफाई और स्वार्थवृत्ति को देखते हुए स्त्रियो से अधिक त्याग के लिए कहना यद्यपि उनके साथ एक प्रकार का अन्याय है, फिर भी समाज की रक्षा और उन्नति के लिए जरूरी है कि जब पुरुष अपने सच्चे गौरव को भूल गये है, स्त्रियाँ अपने स्त्रीत्व के गौरव और आदर्श को कायम रक्खे।

स्त्रीत्व का गौरव

इसलिए विवाह के बाद प्रत्येक लड़की को समझना चाहिए कि वह लड़कपन की सुखमय सुनहली स्वतंत्रता छोड़कर नारीत्व के कठोर शासन

मे आ गई है। पहले जहाँ उसका जीवन अपने ही तक था, वहाँ अब उसका सुख-दुःख दूसरो के सुख-दुःख से मिल गया है। अब उसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व नही, अब उसका जीवन, उसका सुख-दुःख दूसरे के जीवन और सुख-दुःख पर निर्भर है।

इसलिए लड़कियाँ अपने साथ अपने सुख के जितने ही कम सपने लेकर ससुराल जायँगी, अपने सुख-दुःख के बारे मे जितना ही कम सोचेगी तथा ससुरालवालो के सुख का, सुविधा का, ख़याल रखकर निष्कपट और उदार-हृदय से उनकी सेवा मे जितना ही परिश्रम करेगी, उतनी ही सुखी होगी।

तुम इन बातो को अच्छी तरह समझ लेना। यदि हम किसी से दो पैसे की आशा रक्खे और हमे एक ही पैसा मिले तो उतना दुःख न होगा, पर यदि हम पहले से ही एक रुपये की आशा मन मे बाँध ले और एक ही पैसा मिले तो हमे ज्यादा निराशा होगी और फलतः ज्यादा चोट भी लगेगी। इसलिए यदि पहले से ही बड़ी-बड़ी आशाये न करके थोड़ी ही आशा की जाय तो सदा आदमी दुःख से बच सकता है। यदि तुम मेरी इन बातो को मन मे अच्छी तरह रक्खोगी तो कठिन अवसरो पर भी बहुत से दुःखो और चिन्ताओ से बच जाओगी।

: ३ :

सुखमय दाम्पत्य जीवन

अजमेर

बहन भगवती, १०. १०. ३०.

इसके पहले के दो पत्रो से विवाह के सम्बन्ध मे तुम्हे बहुत-सी बाते मालूम हुई होंगी। मोटी-मोटी प्रायः सभी बाते उनमे बताई जा चुकी हैं। उच्चकोटि का दाम्पत्य जीवन कैसे बिताया जा सकता है, इस सम्बन्ध मे यहाँ चन्द बातें लिखता हूँ।

प्रत्येक विवाहिता कन्या के लिए सबसे पहली जरूरी बात यह है कि वह पति को भली प्रकार समझ ले। पति के क्या विचार हैं, उनकी क्या आशायें हैं, किन बातो से वे सुखी हो सकते हैं, किन बातो मे अधिक रुचि रखते हैं, इन सब पर ध्यान रखना चाहिए। उनमे जो अच्छी बाते हो उनका प्रतिक्षण अनुकरण करने की चेष्टा करनी चाहिए। उनके कार्य मे यथासभव सहायता करनी चाहिए। यदि कोई दोष हो तो उससे निराश, उदासीन या क्रुद्ध न होकर, भगवान् में विश्वास रखते हुए, अपनी सेवा, अपने प्रेम और अपने सद्भावो के बल पर उसे धीरे-धीरे दूर करने का यत्न करना चाहिए।

पति का ज्ञान

जो स्त्री पति को कोई गलती करते देख नाराज होकर चुप-चाप बैठ रहती है, या झगड़ा कर बैठती है, वह अपने पॉव में आप कुल्हाडी मारती है। इससे न उसका काम बनता है, न पति की वह बुराई ही दूर होती है। स्त्री को सदा यह खयाल रखना चाहिए कि हृदय ऐसी चीज़ नहीं जो बाज़ारू चीजो की तरह रुपये-

स्त्री और पुरुष का हृदय

पैसे या साधारण प्रलोभनो से खरीदा जा सके, न वह ऐसा सस्ता पदार्थ है, जिसपर बिना त्याग, बलिदान और निरन्तर प्रेम के, अधिकार मिल जाय। हृदय एक अत्यन्त रहस्यमय वस्तु है। विशेषतः पुरुष का हृदय एक स्थान पर स्थिर न रहने वाला और बिना कीमत चुकाये सुख प्राप्त करने को लालायित रहने वाला होता है। इसके विरुद्ध स्त्री का हृदय शान्त, कोमल, लजीला और स्थिर होता है। स्त्री पहले तो बहुत डरती-डरती हृदय को प्रकाशित करती है; हृदय-दान करने मे वह पुरुष-जितनी जल्दबाज नही होती, पर एक बार स्नेह करने पर, एक बार हृदय दान करने पर, वह देती ही जाती है और सब कुछ चढ़ा देती है। स्त्री के लिये स्नेह और प्रेम जीवन-भर की बात है, जब कि पुरुष के लिए वह एक खेल और मन-बहलाव तथा स्त्री को विजय करने, उस पर अधिकार करने का एक साधन-मात्र है। फलतः पुरुष प्रायः ज्यादा दिनो तक अपने प्रेम को कायम नहीं रख सकता, बल्कि इसे एक झझट समझने लगता है। इसलिए स्त्री को पुरुष के दोषो को दूर करने की चेष्टा मे बहुत सावधानी से काम लेना चाहिए।

अविश्वास का परिणाम

दूसरी बात यह कि आजकल जमाना बुरा है। हमारा समाज इतना गिर गया है, हमारे हृदय इतने कलुषित हो गये हैं और हमारा जीवन इतना स्वार्थमय हो गया है कि निर्मूल कल्पनाओ के कारण कितने ही घर चौपट हो जाते है। अभी बहुत दिन नहीं हुए, जब एक शिक्षित पति ने अपनी पत्नी की हत्या इसलिए कर डाली थी कि उसने उसे अपने एक मित्र के कन्धे पर हाथ रक्खे हुए देख लिया था। बात असल मे यह थी कि पति महोदय मदिरापान और वेश्यागमन मे फँस गये थे। उनके एक घनिष्ट मित्र से, जो उनके घर प्रायः आया-जाया करते थे, उनकी पत्नी रोती और बार-बार सहायता

के लिए याचना करती थी। उनके मित्र अवस्था मे उनसे छोटे थे और अपने मित्र की पत्नी को अत्यन्त पूज्य मातृ-भाव से देखते थे। एक दिन वह कोई उपयुक्त उपाय सोच कर अपने मित्र की रक्षा और सुधार के लिए विदा ले रहे थे कि पति महोदय कही से आ गये और अपनी स्त्री को उनके कन्धे पर हाथ रक्खे देख दूर ही से चुपचाप लौट गये। उन बेचारो को पता भी न चला। स्त्री अत्यन्त पतिव्रता और स्वामी की मंगल-कामना मे दिन-रात बितानेवाली थी, पर बिना समझे-बूझे पति ने रात मे सोते समय उसकी हत्या कर डाली। पीछे उसके बिस्तरे के नीचे उनके मित्र का एक पत्र मिला जो उनकी पत्नी के नाम लिखा गया था। इस पत्र का आरम्भ यो था—

"आदरणीया मातेश्वरी..............."

इसे पढ़ कर पति की आँखे भर आईं। फूट-फूट कर रोने लगे, पर अब क्या हो सकता था ? पीछे इन्हे भी फाँसी हो गई।

यह तो एक नमूना है। ऐसी अनेक दुर्घटनाएँ हमारे समाज मे अविश्वास और हृदय की दुर्बलता के कारण रोज हुआ करती हैं। हमने

क्या स्त्री केवल भोग की वस्तु है ?

स्त्रियो को केवल भोग-विलास की सामग्री समझ रक्खा है, इसीलिए हमारा हृदय इतना विषमय हो गया है कि एक स्त्री और एक पुरुष को बात-चीत करते देख तुरन्त हमारे मन मे अनुचित और भ्रष्ट शकाये उठ खड़ी होती हैं। हालत यहाँ तक खराब हो गई है कि यदि सडक पर से कोई भाई अपनी किसी सुन्दरी बहन के साथ कही जा रहा हो, तो नीच पुरुष यही सोचते हैं कि न जाने इन दोनो मे क्या सम्बन्ध है ? इस विषमय वातावरण का असर यहाँ तक पडा है कि अपनी पत्नियो के प्रेम मे विश्वास रखने वाले कितने ही अच्छे विचार के पति भी अपनी पत्नियो से दूसरे

पुरुषो की घनिष्ठता को शङ्का की दृष्टि से देखने लगे हैं। इसी तरह अनेक स्त्रियॉ भी पति का दूसरी स्त्रियो की ओर ममता और स्नेह देखकर जल उठती है। मानो वासना-रञ्जन और शारीरिक सम्बन्ध के अतिरिक्त स्त्री-पुरुष मे कोई पवित्र घनिष्ठ बन्धन हो ही नहीं सकता।

इस प्रकार की अविचार-मूलक कल्पनाओ के कारण पति-पत्नी के अन्दर प्राय: गलतफहमी फैलने की आशङ्का रहती है, जिसका फल आगे जाकर बड़ा खराब निकलता है। इसलिए प्रत्येक अवस्था मे पति-पत्नी को एक दूसरे मे विश्वास रखना चाहिए। इस विश्वास का फल,सदा मीठा होगा। दोनो को इस विषय मे ऐसा आदर्श कायम कर लेना चाहिए कि यदि एक बार कोई ऐसी बात देख भी ले तो यही समझे कि यह ऑखो का भ्रम है। जीवन मे कितनी ही घटनाये ऐसी होती है जो ऊपर से देखने मे कुछ दूसरी लगती है, पर उनके भीतर कुछ दूसरी ही बात छिपी रहती है। इसलिए किसी बात को देखते ही उत्तेजना मे कोई निश्चय नहीं कर लेना चाहिए। पति-पत्नी एक-दूसरे मे सन्देह और शङ्का रखने की जगह, एक-दूसरे मे विश्वास रक्खे और एक-दूसरे को समझने-समझाने की कोशिश करते रहे तो वे बहुत-सी गलतफहमियो और उनसे पैदा होने वाले दु:खो और कठिनाइयो से बच जायॅगे।

जहॉ मै इतनी बात कह रहा हूॅ तहॉ इस ओर भी तुम्हारा ध्यान आकर्षित करना चाहता हूॅ कि आज-कल जमाना खराब है। जिस वातावरण मे हम पल रहे हैं वह अत्यन्त दूषित हो गया है। आज-कल की शिक्षा मे सदाचार का महत्व बहुत घट गया है। स्त्री और पुरुष दोनो मे सदाचरण के अकुश ढीले हो गये है। इसलिए स्त्रियो का अन्य पुरुषो से अधिक घनिष्ठता रखना और बार-बार कार्यवश भी एकान्त मे मिलना प्राय: विनाश का कारण होता है। यही नियम पुरुष के लिए भी है।

दोनो को अन्य स्त्री-पुरुषो के प्रति अपने व्यवहार मे बड़ा संयत रहने की आवश्यकता है।

स्त्री के लिए तीसरी और शायद सबसे बड़ी शर्त यह है कि वह मन और शरीर दोनो से पतिव्रता हो। पतिव्रता का अर्थ यह है कि वह सदा अपने पति का कल्याण और मङ्गल चाहने वाली हो और अपने शरीर को कभी दूसरे पुरुष द्वारा अपवित्र न होने दे। पति के अतिरिक्त अन्य किसी पुरुष की ओर उसका शारीरिक—वैषयिक झुकाव न हो। पतिव्रता होने का यह मतलब नही है कि स्त्री के हृदय मे पति के सिवा दूसरे किसी के लिए स्थान ही नही हो और न इसका यही अभिप्राय है कि विवाहित स्त्री अपने भाई को, अपने देवरो को या अन्य किसी पुरुष को पवित्र एवं घनिष्ठ स्नेह के बन्धन मे बॉध नही सकती। एक स्त्री पूर्ण पतिव्रता और पतिपरायणा होते हुए भी दूसरो को अपने कोमल हृदय के मधुर स्नेह से सीच सकती है, पर कितनी सीमा तक इस प्रकार का स्नेह किया जा सकता है, यह सब पति-पत्नी के हृदय की उच्चता, पति की उदारता और दोनो के पारस्परिक विश्वास पर निर्भर है।

पतिव्रता और सतीत्व

सत् या सतीत्व स्त्री का प्राण है। जो स्त्री इसके महत्व को नहीं समझती, वह स्त्रीत्व के आदर्श और रहस्य को भी नही समझती। हमारे धर्म-ग्रन्थ सती नारियो के ऊँचे त्याग की कहानियो से भरे है। सतीत्व का अर्थ केवल शरीर की पवित्रता नहीं है। पत्नी को मन, शरीर और वचन सबमे पतिव्रता होना चाहिए। वह स्त्री सती या पवित्र नहीं हो सकती, जिसका मन तो पवित्र नही, पर वह लोकलज्जा के भय से अपनी शारीरिक पवित्रता बनाये हुए है।

पहले ज़माने की अपेक्षा आजकल हमारा जीवन बहुत बनावटी हो

गया है। शान-शौकत, रंग-रूप, चमक-दमक का आकर्षण बढ़ता जाता है। शहरो का जीवन तो खराब हो ही गया है, पर देहात मे भी छल-कपट ने अपना घर बना लिया है।

पुरुषों की बेवफ़ाई

जहॉ किसी गॉव के एक घर की बेटी को सब गॉव वाले अपनी बेटी समझते थे, वहॉ समय के प्रभाव से एक ही कुटुम्ब मे भी पवित्र सम्बन्ध को बनाये रखना कठिन हो रहा है। इसलिए सीता और सावित्री के समय से आजकल की स्त्रियों के लिए अपनी रक्षा करना अधिक कठिन होगया है। फिर सीता और सावित्री-जैसी स्त्रियॉ तो अब भी मिल जाती है, पर राम और सत्यवान का हममे अभाव-सा हो गया है। हमारा पुरुष-वर्ग बहुत गिर गया है। जहॉ प्रत्येक पुरुष अपनी पत्नी को पतिव्रता का आदर्श उपस्थित करते देखना चाहता है, वहॉ स्वयं पत्नी-व्रत की बात चलते ही झुॅझला उठता है। मानो पुरुष के लिए कही कोई नियम-बन्धन और सीमा ही नही है। स्त्री को चिता पर धूल मे मिलाकर आते ही शादी की बात चलने लगती है और इतनी बेवफाई और निर्लज्जता से मरी हुई पत्नी की याद की जाती है कि आश्चर्य और दुःख होता है। कितने ही सभ्य और शिक्षित तथा सदाचार की महिमा जानने वाले पुरुष भी अनेक घरेलू कठिनाइयो की आड लेकर, अपनी सफ़ाई देते हुए, दूसरा विवाह कर लेते है, जब स्त्री के विषय मे ऐसी बात आते ही शास्त्रों और पुराणो की गाडी लाकर सामने खड़ी कर दी जाती है। मेरी समझ से यह स्पष्टतः पुरुषो की कमजोरी है। पति के मर जाने पर पत्नी को जितनी कठिनाइयॉ पडती है, पत्नी के मर जाने पर साधारणतः पति को उतनी कठिनाइयॉ नहीं पडती। इसलिए जब हम दीन-हीन और असहाय विधवा बहनों से सतीत्व और आजीवन पातिव्रत की आशा कर सकते है तो शक्तिमान् और समर्थ पुरुषो को कठिनाइयो की दोहाई देते देख उन पर घृणा और लज्जा

आती है। मेरी समझ से अब वह समय आ गया है जब पतिव्रत धर्म की तरह पत्नी-व्रत धर्म को भी विवाह की एक आवश्यक शर्त बना देना चाहिए जब तक ऐसा न होगा, स्त्री-पुरुषो का जीवन बहुत ऊँचा नहीं उठ सकता।

फिर भी मेरा तुम से, और तुम्हारे रूप मे समाज की बहनो से, यही नम्र निवेदन है कि वे यह देखकर न चले कि पुरुष कैसे हैं। पुरुष गिर गये हैं, इसलिए उन्हे भी गिर जाना चाहिए, यह कोई तर्क नहीं है। स्त्री समाज का निर्माण करने वाली है। वह पुरुष की माता है, इसलिए पुरुष के बनने-बिगड़ने का समाज पर, सन्तान पर, उतना असर नही पड़ता जितना स्त्री के ऊँचा उठने या नीचे गिरने का पड़ता है। आज पुरुषो ने अपना तेज, अपना गौरव, अपना पुरुषत्व खो दिया है तो हमारी माताओं, बहनो और बहू—बेटियो का कर्त्तव्य है कि अपने जीवन की पवित्रता कायम रखते हुए, त्याग और बलिदान, अपनी सेवा और कष्ट-सहिष्णुता से हमारे सामने सच्चे नारीत्व का, सच्चे मातृत्व का प्रकाश उपस्थित कर हमे सच्चा रास्ता दिखाये, हम गिरे हुए पुरुषो को भी ऊपर उठाएँ। यह हमारे लिए कम गौरव की बात नही है कि जब पुरुषो ने अपनी लज्जा और अपने गौरव को फॉसी लगा दी है, समाज मे कितनी ही बहनें अपनी ऑखों के ऑसू और अपनी पवित्रता की आग से उनके पापो को धोकर बहाती और उनके जीवन को प्रकाशित करती रही हैं। ये बाते मैं एक पुरुष की हैसियत से, पुरुष के प्रतिनिधि की हैसियत से, नही कह रहा हूँ। पुरुषो का, स्त्रियो से कुछ कहने का मुँह नहीं रह गया है। उनको पहले अपनी ओर देखना चाहिये; मैं तुम से, तथा तुम्हारे द्वारा अन्य बहनो से, सतीत्व के महत्व की बात इसलिए कह रहा हूँ कि मैं अपने अभागे भाइयों की तरह

बहन ज्यादा मूल्यवान है।

अपनी बहनो को भी नीचे गिरते देख नहीं सकता हूँ। मैं जानता हूँ कि पुरुष-हृदय बहुत मलिन हो गया है, फिर भी अपनी बहनों की ओर देख कर आशा की हलकी साँस ले सकता हूँ। उन्हे देख कर विश्वास होता है कि हमारे पास संसार को दिखाने योग्य जो कुछ था, वह सभी नष्ट नही हो गया है। उसमे अभी कुछ बचा भी है, जिसे देख कर, जिसकी सहायता से सम्हलकर, सम्भव है कि हम बाजार मे अपनी साख फिर कायम कर सकें। इसलिए जब एक पुरुष को पतित होते देखता हूँ तो क्रोध आता है, पर एक बहन को गिरते देखता हूँ तो दिल को चोट लगती है, कलेजा मुँह को आने लगता है और रोना आता है। मेरे नजदीक बहन भाई से ज्यादा मूल्यवान चीज है, इसलिए एक भाई को खोने का दर्द सहा जा सकता है पर एक बहन को खोकर संसार सूना-सा अनुभव करता हूँ!

सेवा, स्त्री-जीवन को सुखी बनाने के लिए चौथी जरूरी बात है। केवल पतिव्रता होने से गृहस्थ का काम नही चल सकता, उसे मधुर और सुखी बनाने के लिए, अथक परिश्रम और सेवा की जरूरत पडती है। ससुराल में पति का प्रेम प्राप्त करने लेने के बाद भी आवश्यक कर्त्तव्य रह जाते हैं। फिर कितनी ही स्त्रियाँ पति की वासनामय अनुरक्ति को प्रेम समझ बैठती है और सोचती है अब क्या, मेरा पति तो मुझे प्राणो से भी अधिक चाहता है। पर जब यह क्षणिक आवेश, यह रूप की प्यास और मोह, शरीर के साथ शिथिल और नष्ट होने लगता है, तब आँखें खुलती हैं। दुनिया मे बहुत थोड़े लोग सच्चा प्रेम करते देखे जाते हैं और उनसे भी कम मे सच्चे प्रेम को पहचानने की शक्ति होती है। पर सदा यह समझना चाहिए कि जहाँ इच्छायें बढ़ती जा रही हो, जहाँ प्रेम मे स्थिरता

नकली बनाम असली प्रेम

न हो, जहाँ बहुत जल्द एक-दूसरे मे प्राणो से भी अधिक प्रेम करने की बातें होने लगें वहाँ प्रेम नही, क्षणिक मोह है और बहुत दिन तक इस पूँजी से दूकान न चलाई जा सकेगी। प्रेम हृदय के एक हो जाने से होता है और इसीलिए प्रेम ज्यो-ज्यो शुद्ध और सच्चा होता जाता है, त्यो-त्यो शरीर का खयाल उससे कम होने लगता है। जहाँ भोग-वासना और शारीरिक मिलन की कामना बलवान रहती है, वहाँ सच्चा और कभी न मिटनेवाला प्रेम पनप नही सकता। स्त्री-पुरुष दोनो को यह भली भाँति गाँठ बाँध लेना चाहिए कि प्रेम का भोजन शरीर-सुख नही, हृदय की अनुभूति है। आजकल बाजार मे प्रेम के नाम पर अत्यन्त दूषित और कलुषित चीजे बिकने लगी है। शारीरिक आकर्षण और मोह को, भूल से, प्रेम का नाम दे दिया गया है। विवाह के बाद पति-पत्नी मे इस प्रकार का झूठा 'प्रेम' (जो असल मे विषयभोग का एक प्रवाह मात्र होता है) बहुत देखा जाता है। इसलिए जो पति-पत्नी आजन्म स्नेह बनाये रखना चाहे, उन्हे यह समझना चाहिए कि यद्यपि उनका सम्बन्ध बिल्कुल शुद्ध और भाई-बहिन की तरह पवित्र और ऊँचे प्रेम से पूर्ण नहीं हो सकता, क्योकि उसमे शारीरिक वासना का कुछ भाव रहता ही है, पर वे चाहे तो अपनी वासना को बहुत नियमित करके अपने स्नेह को एक सीमा तक पवित्र बना सकते हैं और शारीरिक मोह को प्रेम मे बदल सकते हैं।

जहाँ पति और पत्नी अपने कर्तव्य को ठीक-ठीक समझते है; जहाँ उनके जीवन का उद्देश्य सिर्फ चौके-चूल्हे और भोग-विलास तक ही सीमित नहीं है और वे एक-दूसरे की सहायता से ऊँचा उठना, किसी आदर्श को प्राप्त करना चाहते हैं, वहाँ उनको अधिक-से-अधिक संयम से काम लेना चाहिए।

सेवा का मेवा

इस सयम के लिए स्त्री मे सेवा की और पुरुष मे परोपकार और त्याग की लगन होनी चाहिए। आजकल कितने ही पति, पत्नी के शारीरिक आकर्षण मे पड़कर अपने सामाजिक और घरेलू दोनो प्रकार के कर्त्तव्य भूल जाते है। माँ-बाप का अनादर तक करने लगते है। यदि माता या घर की कोई और स्त्री उनकी पत्नी से कोई काम करने को कह दे तो वे झुँझला उठते है। ऐसे पति वासना और मोह के कारण अपनी पत्नियो को सिर्फ भोगविलास की मूर्ति और शृंगार करके देखते रहने की वस्तु समझते हैं। इसी तरह कितनी ही स्त्रियाँ इतनी अनुदार और ईर्ष्यालु होती हैं कि यदि घरमे उनका पति ही कमानेवाला है तो सास-ससुर, देवरो-ननदो इत्यादि को चोट पहुँचाने वाले व्यग-बाणो से घायल किया करती हैं, जिसका फल कभी-कभी जहरीला और दुःखदाई हो जाता है। पति को पत्नी पर और पत्नी को पति पर अपना अधिकार तो ज़रूर समझना चाहिए पर इस अधिकार का उपयोग अच्छी बातो में होना चाहिए। पत्नी को सदा खयाल रखना चाहिए कि उसकी सास ने ही उसके पति को जन्म दिया है, उसने उसके पति के लिए अगणित कष्ट सहे हैं; उसका पति जो कुछ है, उसमे उसकी सास का बहुत बड़ा हिस्सा है इसलिए उसके पति पर उसकी सास का कुछ कम अधिकार नही है। यदि पति अच्छा है, तो इसका श्रेय सास को ही है। इस ख़याल से प्रत्येक विवहिता लड़की को सदा पति के साथ ही सास-ससुर एव घर के अन्य लोगो की सुविधा और सेवा का भी ख़याल रहना चाहिए और स्वयं कष्ट सहकर भी उन्हे सुख पहुँचाने का यत्न करना चाहिए।

निःस्वार्थ सेवा और प्रेममय हृदय से बढ़कर मनुष्य को ऊँचा उठाने वाली दूसरी चीज़ दुनिया में नही है। जो स्त्री जीवन का सच्चा सुख चाहती हो उसे कभी आलस्य न करना चाहिए और सदा, यथासंभव,

गलत धारणा

घर को सुधारने, छोटे-बडो की सेवा करने में लगा रहना चाहिए। भूल से, बहुत से लोग सेवा को दासता का चिह्न और एक बुरी चीज़ समझते हैं। वे यह नही जानते कि सेवा भी कई प्रकार की होती है। एक कुली भी सेवक है और महात्मा गाँधी भी अपना समय सेवा मे लगाते है, पर जब एक कुली का काम लोग नापसन्द करते है, महात्मा गाँधी-जैसी सेवा के लिए बड़े-बड़े लोग तरसते हैं। इससे यह सहज ही समझा जा सकता है कि सेवा कोई बुरी वस्तु नहीं है। हाँ, उसका ढग अच्छा या बुरा हो सकता है। जिस सेवा मे अपने लाभ या स्वार्थ का भाव जितना ही कम होता है, वह उतनी ही ऊँची समझी जाती है। इससे हम दूसरो की सहायता तो करते ही हैं, अपने मन को भी निर्मल बनाते है। झूठा अहंकार और आलस्य हमारे पास नही फटकने पाते और शरीर का उपयोग अच्छे काम में होता है। इसके अतिरिक्त सच्ची और प्रेममय सेवा से हम विरोधी के हृदय में भी स्थान पा सकते है और उसके हृदय से भी ईर्ष्या-द्वेष और जलन दूर करके उसे भी अपने साथ ऊपर उठा सकते है।

हिन्दू स्त्रियो को सेवा का उपदेश देना एक प्रकार से व्यर्थ है। उनका सारा जीवन ही सेवा और त्याग का जीवन होता है, पर इतनी बात लिखने की आवश्यकता इसलिए पड़ी कि सेवा करते हुए बहुत-सी स्त्रियाँ, अपने को दुःखी और दासी के रूप में अनुभव करती हैं, इसलिए उनकी सेवा का जो मधुर परिणाम होना चाहिए वह नहीं होता। मन में खीझकर सेवा करने से लाभ के बदले उलटे हानि होती है। इस प्रकार की सेवा, सेवा नहीं वस्तुतः अपने प्रति प्रतिहिंसा है। इसके मूल में अहंकार और क्रोध होता है। सेवा का स्रोत अपने कर्तव्य का ज्ञान एवं दूसरो के प्रति गहरी सहानुभूति है। इसलिए तुमको, और अन्य बहनो को, अच्छी

तरह समझना चाहिए कि सेवा कोई बुरी चीज नही है और इससे चाहे दूसरे प्रसन्न न भी हो तो भी स्वय अपना हृदय बहुत शुद्ध और निर्मल हो जाता है।

इस पत्र में दाम्पत्य जीवन की मुख्य-मुख्य बाते मैंने लिख दी है। कुछ व्यावहारिक बातें जो अभी लिखनी रह गई हैं, अगले पत्रो मे लिखूंगा।

: ४ :

पुरुष-हृदय का रहस्य

अजमेर

चिं० भगवती, १४. १० ३०.

पिछले पत्रो मे विवाहित जीवन से सम्बन्ध रखने वाली बहुत-सी बाते मै तुम्हे लिख चुका हूँ। उनको जानने, समझने और उनके अनुसार चलने से भावी जीवन की तुम्हारी कितनी ही कठिनाइयाँ दूर हो जायँगी किन्तु उनके साथ ही प्रत्येक स्त्री को यह भी जानना चाहिए कि पुरुषो और स्त्रियो के हृदय और स्वभाव मे अतर है। इस विषय मे भी पिछले किसी पत्र मे मै थोड़ा बहुत लिख चुका हूँ, पर यहाँ कुछ विस्तार से समझाने की आवश्यकता है।

मैने लिखा था कि पुरुष अधिकार चाहता है; शासन करने, हुक्म देने की उसकी आदत है इसलिए वह हर अवस्था मे शासन करना और इस प्रकार अपने मन मे भरे हुए अभिमान की भूख मिटाना चाहता है। चाहे कितने ही सुधरे विचार का कितना ही उदार पुरुष हो, वह सदा यह चाहता है कि स्त्री उसकी आज्ञा माने, उसकी इच्छाओ के पीछे चले। बहुत से पुरुष इसे अस्वीकार करेंगे और अपनी पत्नियो से कहेंगे कि 'यह तो मेरी इच्छा है पर तुम ठीक न समझो तो जाने दो।' किन्तु यह कहने वाला पुरुष भी मन मे यही चाहता है कि स्त्री उससे कहे कि 'नही, मेरी इच्छा क्या ! जो आपकी इच्छा है वही मेरी इच्छा है।' यदि स्त्री मतभेद ही प्रकट करके रह जाय और कहे कि 'मेरा तो यह मत है किन्तु आपकी बात मानना मेरा धर्म

अधिकारप्रिय पुरुष

हैं तो पुरुष के गर्व की भूख मिट जाती है; वह सोचता है कि मेरी स्त्री संपूर्णतः मेरे अधिकार को मानती है। बस, उसका अहंकार तृप्त हो जाता है। यदि स्त्री जिस बात को ठीक समझती है, उसी को करती जाय, तो जो पुरुष स्त्रियों की श्रेष्ठता और बराबरी के अधिकार को मानता है, वह भी मन मे असंतोष का अनुभव करेगा।

जहाँ स्त्री से पुरुष सदा अपने पीछे चलने की आशा रखता है, वहाँ वह स्वयं मतभेद होने पर स्त्री की बात मान कर चलने को तैयार नहीं होता। वह हर अवस्था मे यही चाहता है कि उसी की बात मानी जाय। मैंने अनेक ऐसी स्त्रियो को देखा है, जिन्होने अपने अस्तित्व को, अपने विचारो को और अपनी इच्छाओ को पतियो की इच्छाओ पर बलिदान कर दिया, किन्तु अभी तक ऐसा पुरुष नही देखा जिसने मतभेद होने पर जीवन की अपनी खास धारणाओं और सिद्धान्तो को पत्नी की इच्छा और सम्मति पर बलिदान कर दिया हो। यदि कही दो-एक ऐसे उदाहरण मिलते भी है तो उनमे शारीरिक भोग-विलास और यौवन-उन्माद की प्रधानता होती है। पुरुष सदा यह चाहता है कि उसका अधिकार माना जाय, जो वह कहे और जिसे वह ठीक समझे, वही हो पर वह खुद अपने ऊपर अधिकार नहीं देना चाहता। वह बन्धन में रखना जानता है, पर बंधन में रहना उसने नहीं सीखा। उसके स्वभाव में लेना ही लेना है, देना नहीं।

ऐसा नही कि पुरुष स्नेह करता ही नहीं। वह स्नेह करने लगता है तो बहुत शीघ्र पागल हो जाता है; देर उसे असह्य हो जाती है। वह स्नेह के लिए प्राण दे सकता है, पर स्त्री की तरह जीवन-भर धीरे-धीरे, तिल-तिल जलना उसकी प्रकृति के विरुद्ध है। वह एक बार सब कुछ त्याग कर सकता है पर उस सब को धीरे-धीरे, जन्म भर, दान करते रहना और अंत

नक पूरी तरह और पहले की भाँति वफादार बना रहना उसके लिए कठिन है। वह सदा झंझट से बचा रहना चाहता है और इसके लिए बुद्धि और सिद्धान्त की आड़ में कई बार ऐसे बहाने ढूढ़ता है कि भोली स्त्री को उसके साथ चलना ही पड़ता है। सन्तान के सम्बन्ध मे न्यायतः माता-पिता दोनो की जिम्मेदारी बराबर ही है किन्तु व्यवहारतः पुरुष उस 'झगडे' को स्त्री पर छोड देता है। अपने बच्चे को देखकर वह प्रसन्नता प्रकट करता है; वह चाहता है कि मेरे आते ही मेरा बच्चा प्रिय सम्बोधनो से पुकारता हुआ, दौड़कर, मेरी गोद मे आजाय, पर यदि माता यह चाहे कि चार छः महीने पिता बच्चे को सम्हाले तो पिता इसके लिए कभी प्रसन्नता-पूर्वक तैयार न होगा। वह दाई या नौकरानी रख दे सकता है, पर स्वयं इस 'झंझट' मे नही फँसेगा। इसका कारण कुछ हद तक तो यह है कि उसे जीविका-उपार्जन के कार्य मे अधिक समय तक घर के बाहर रहना पडता है। पर इसके साथ इस प्रकार के झझटो से दूर रहने की उसकी इच्छा भी एक मुख्य कारण है। पुरुष प्रायः घरेलू जीवन की जिम्मे-दारियो और बन्धनो से उदासीन रहता है, पर वही पुरुष यह भी चाहता है कि स्त्री उन्हीं बन्धनों मे जीवन के सुख का अनुभव करे। यह कैसी विचित्र बात है!

पुरुष की प्रकृति केन्द्रापसारी (Centrifugal) है अर्थात् वह अपने को, अपने अस्तित्व को विस्तृत करना—फैलाना चाहता है। वह बाहरी जीवन का; बाहरी ससार का प्रेमी है; एक को स्नेह करके उसी के लिए जीवन उत्सर्ग कर देना और दुनिया की अन्य बातो का खयाल न करना—यह बहुत ही कम पुरुषो के लिए संभव है। जीवन मे उसका कार्य-विभाग ही कुछ ऐसा है कि ऐसा करके वह टिक नही सकता—न यह उसके लिए बहुत उचित ही कहा जायगा। पुरुष केवल यह नहीं

चाहता कि उसकी स्त्री उससे स्नेह करती रहे; वह यह भी चाहता है कि उसकी स्त्री उसके प्रति अपने स्नेह को बार-बार प्रकट करती रहे। वह पत्नी के चुपचाप शात और मधुर भाव से स्नेह करने से ही सन्तुष्ट नही हो जाता, वह चाहता है कि पत्नी आकर उससे कहे—"प्राणनाथ, तुम्हारे प्रेम मे मेरी बुरी दशा है, मुझे तुम्हारे न रहने पर खाना-पीना कुछ अच्छा नही लगता।" वह प्रेम भी चाहता है और उस प्रेम का प्रकाशन—विज्ञापन भी चाहता है। बिना इसके चुपचाप प्रेम के अमृत को पीकर तृप्त हो जाने वाला प्राणी वह नही है। वह तो स्त्री ही है जो भीतर के 'अनबोलते' (मूक) को पाकर ही तृप्त हो जाती और अपने को धन्य अनुभवी करती है।

आश्रय की आकांक्षा

दूसरी बात यह है कि पुरुष यद्यपि अपने को स्त्री का रक्षक और स्वामी समझता और अनुभव करता है, फिर भी वह चाहता है कि मेरी स्त्री सेवा एवं देख-रेख इस तरह करे और मेरा इस तरह ख्याल रक्खे जैसे वह अपने बच्चे का रखती है या रख सकती है! यह बात केवल पति-पत्नी के लिए ही नही है। पुरुष जिस रूप मे भी किसी स्त्री को स्नेह करे—फिर चाहे वह बहन हो, मित्र हो, पुत्री हो—वह सदा उससे ऐसी आशा रखता है। वह चाहता है कि जैसे माँ बच्चे की बीमारी मे क्षण भर उसे नही छोड़ती; जैसे वह उसके लिए तड़पने लगती है, वैसे ही जिस स्त्री को मै स्नेह करता हूँ और जिसके साथ अपनेपन का अनुभव करता हूँ, वह भी मेरे दुःख-दर्द मे माता के समान मेरी सेवा करे, मुझे अपने आश्रय और छाया से अलग न करे; मेरी जरूरतों का, मेरी सुविधाओ का वह उसी तरह ख़्याल रक्खे जैसे माँ बच्चे का रखती है। स्त्री-पुरुष मे किसी तरह का स्नेह-सम्बन्ध हो, पुरुष स्त्री पर ही अपनी सुविधाओं की जिम्मेदारी डालना चाहता है, वह इस

मामले मे उस पर पूर्णतः निर्भर करता है। वह यह नहीं चाहता कि अपने कपड़े-लत्ते की खबर मुझे रखनी पडे, वह यह भी नहीं चाहता कि मुझे खाने-पीने के लिए स्त्री को हिदायत करनी पडे। वह यह चाहता है कि स्त्री उसे खिलावे-पिलावे, उसके साथ हँसे-बोले, दुःख मे हाथ मे हाथ लेकर धीरज दे और कहे कि 'तुम घबड़ाओ मत, भगवान् जो करेंगे, अच्छा ही होगा। तुम दिल छोटा मत करो। जब तुम्हीं हिम्मत हारोगे तो हम लोगो की क्या हालत होगी?' हर एक पुरुष चाहता है कि वह बीमार पड़े तो उसकी स्त्री या उसकी स्नेहपात्री पास बैठी रहे और कहने पर भी न उठे; अपने तन-बदन की सुध भूलकर सेवा करे। बीमार पुरुष स्त्री से कहता है कि 'जाओ भोजन करो, नही देर हो जायगी और तुम भी बीमार पड़ोगी तो मुझे और दुःख होगा; तबीयत और खराब होगी।' किन्तु स्त्री यदि तुरन्त उसकी बात मानकर वहाँ से चली जाय तो उसे उतना सुख और सन्तोष अनुभव न होगा जितना उस अवस्था मे होगा जब स्त्री कहे "जाती हूँ, तुम्हे जरा नींद आ जाय तो चली जाऊँगी।" या "हॉ जाती हूँ, पर भोजन करने की ओर रुचि नहीं होती। जब तुम पड़े हो तो मै खाकर क्या करूँगी या मुझे खाना क्यों कर अच्छा लगेगा?" इन बातो को सुनकर पुरुष का हृदय खिल उठता है और वह सन्तोष की सॉस लेता है। ज़रा भी बीमारी मे, जरा भी कष्ट मे, पुरुष अभाव का अनुभव करता है और उस स्नेह के लिए तड़पने लगता है जो बच्चे का मॉ के प्रति होता है। तुमने देखा होगा कि जब हम-लोग बीमार पडते है तो अनायास मॉ की याद आ जाती है और कई बार उसे उसकी अनुपस्थिति मे भी पुकारने लगते हैं। इसका कारण आदमी के अन्दर बनी हुई बचपन की स्मृति है। स्त्रियो को पुरुषों के प्रति इस अभाव का इतना अनुभव नहीं हो सकता क्योंकि स्त्री की माता तो स्वयं स्त्री ही है,

पुरुष नहीं; पर पुरुष—चाहे वह पति रूप मे हो, पुत्र रूप मे हो, या भाई के रूप मे हो—हर हालत मे स्त्री का ही पुत्र है, उसी के पेट से उत्पन्न हुआ है; इसलिए स्वभावतः स्त्री को पाने के लिए, उसके अभाव में, उसका हृदय, मातृहीन बालक के समान, तड़पने लगता है। जब बचपन मे बच्चे को ज़रा-सी चोट लग जाती है, जब वह जरा-सी बात के लिए रोने लगता है, तो माँ के लिए उसकी वह जरा-सी पीड़ा भी असह्य हो जाती है, वह बच्चे को गोद मे चिपटा लेती और उसका मुख चूमकर उसे सान्त्वना देती है। जब पुरुष बड़ा हो जाता है, जब वह विवाहित होकर गृहस्थ-धर्म के बन्धन में बँध जाता है, तो माता की अपेक्षा पत्नी पर वह अधिक निर्भर करता है; इसलिए बचपन मे जो आशा उसे माँ से होती है वह विवाहित जीवन मे, ज़रा बदले हुए रूप में, पत्नी से होती है। पुरुष स्त्री को प्रेम प्रकाशित करते देखने के लिए इतना अधीर होता है कि ज़रा-सा सिर-दर्द होने पर यदि वह अपनी स्त्री को व्याकुल और घब-डाई हुई न देखे, यदि वह स्त्री को ऐसे रूप मे न पाये मानो दर्द स्त्री को ही हो रहा है तो यही समझेगा कि स्त्री बिल्कुल पत्थर का दिल रखती है। यहाँ तक कि कभी-कभी स्त्री के स्नेह मे ही शका होने लगती है।

जैसा कि मैं लिख चुका हूँ, यह बात विवाहित पुरुषों के लिए ही नहीं है। पुरुष चाहे विवाहित हो या अविवाहित, जिस स्त्री को वह अधिक स्नेह या आदर या श्रद्धा करता होगा, कोई शारीरिक या मानसिक कष्ट उपस्थित होने पर यही आशा रखता है कि वह माँ के समान मेरी सेवा-शुश्रूषा करेगी; मुझे धीरज देगी और मेरे दुःख मे हाथ बटायेगी।

यह यो भी साधारण समझ की बात है कि जिसे हम स्नेह करते है या जिसको अपना समझते है, दुःख या कष्ट में उसकी याद पहले आती है। इसलिए तुम इस बात को सदा याद रखना कि सेवा करने मे पति

अपना अधिकार और प्रभुत्व रखने के कारण प्रत्येक पुरुष के अन्दर होता है। प्रत्येक पुरुष, प्रत्येक पति, पत्नी द्वारा अपनी बहुत बढ़ाकर की जानेवाली प्रशसा या प्रशंसापूर्ण सम्बोधनो से सन्तोष और प्रसन्नता का अनुभव करता है। जब पत्नी पति को 'प्राणनाथ' लिखती है, तो पति को प्रसन्नता होती है; यद्यपि सच्चे अर्थ मे इस शब्द का कोई मूल्य नहीं, क्योकि यदि इन प्राणो का नाथ अगर कोई है तो वह ईश्वर है। जिस पति के अधिकार मे प्राण देना और प्राण लेना दोनो ही नहीं है, उसे 'प्राणनाथ' कहना एक प्रकार से भगवान के अस्तित्व की हॅसी उड़ाना है। प्राण का निर्माण करने मे पति की अपेक्षा माता-पिता अधिक सहायक और कारण होते हैं। पति शरीर और हृदय तक का ही स्वामी हो सकता है। कौन पति इस बात को नहीं जानता, पर इस सम्बोधन से उसके अहंकार की भूख मिटती है और सन्तोष होता है, इसलिए वह चाहता है कि स्त्री उसे ही जीवन मे अपना सर्वस्व समझे, वह उसे ही अपना ईश्वर, अपना देवता माने।

यद्यपि मैं इस बात मे विश्वास नहीं रखता कि पति ही पत्नी के लिए ईश्वर है और दूसरे किसी देवता या ईश्वर की कल्पना करने की ज़रूरत उसके लिए नही है, फिर भी अभी हमारे समाज में, शिक्षा और विवेक की कमी के कारण, ऐसी अवस्था उत्पन्न नहीं हुई है कि हम इस धारणा के—इस विचार के विरुद्ध विद्रोह करे। इससे स्त्रियो की ही हानि की सम्भावना अधिक है क्योकि वे असहाय एवं अशक्त हैं, तथा पति पर ही सब अवस्था में निर्भर करती हैं। इसलिए सुख की इच्छा रखनेवाली पतिव्रता बहनों को, जहाँ तक हो सके, पति के अन्दर श्रद्धा रखने की चेष्टा करनी चाहिए और उसके साथ रहने में सन्तोष का अनुभव करना चाहिए।

चौथी बात यह कि प्रत्येक पुरुष चाहता है कि उसकी स्त्री उन्ही बातो को पसन्द करे जो उसे अच्छी लगती हैं; जो लोग उसके प्रिय हैं वे उसकी स्त्री को भी प्रिय हो। पुरुष चाहता है कि स्त्री मुझे घर की कठिनाइयो से तो मुक्त रक्खे ही पर घर-बार सम्हालते हुए मेरे दुःखो और कठिनाइयों में भी भाग ले, मेरे बाहर के कामो के बारे मे उत्साह प्रकट करती रहे। जैसे किसी का पति देश-सेवक है तो वह चाहता है कि मेरी स्त्री भी, अगर राष्ट्रीय आन्दोलनो मे भाग न ले सके तो कम से कम, मेरे कामो की ओर निगाह रक्खे; मेरे साथियो का आदर करे और मेरा अनुसरण करने के लिए तैयार रहे। इसलिए स्वयं दुःख और कष्ट उठा कर भी स्त्री को पति के अच्छे कामो का अनुसरण करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

सखा और मित्र के रूप में

पुरुष विवाह करके अपनी स्त्री को अर्द्धांगिनी के रूप मे स्वीकार करता है। आधे अंग का काम पूरा करना स्त्री का परम धर्म है। स्त्री के हिस्से मे जो काम आते है उनमे घर का सम्हालना मुख्य है। पति के लिए सुख-शान्तिमय घर तैयार करना उसका कर्तव्य है और उसका बहुत-सा सुख-दुःख इसी बात पर निर्भर करता है। अनेक स्त्रियाँ जीवन में घर का महत्व नही समझती। स्त्री को समझना चाहिए कि पति के हृदय की सुख-शाति बहुत-कुछ घर के वातावरण पर निर्भर है। पुरुष-हृदय चचल और अस्थिर है। जब घरेलू झगड़ो और अशान्ति के कारण वह उद्विग्न हो जाता है तो कभी-कभी बड़े भयानक काम कर डालता है, अथवा घर एवं पत्नी से भीतर ही भीतर उदासीन-और विरक्त होता जाता है। तब वह घर से बाहर के लोगों की सहानुभूति खोजता फिरता है। यही से स्त्री के सोहाग का सर्वनाश होने लगता है। इसलिए जो चतुर स्त्री है, वह पति के लिए सदा सुखमय

स्त्री का हिस्सा

परिस्थिति तैयार करती है। पुरुष यह चाहता है कि घर उसके लिए आराम की जगह हो, जहाँ जाकर वह ससार की चिन्ताओ और कष्टो से क्षण भर के लिए छुटकारा पा सके और सुख की सॉस ले। जो स्त्री अपने दाम्पत्य-जीवन को सुखी बनाना चाहे, वह सदा घर को ईर्ष्या-द्वेष और झगड़ो से मुक्त रक्खे और यदि साधारण झगड़े खड़े हो जाँय तो अपनी सहनशीलता और मृदु-स्वभाव से उनका अन्त कर दे; पति को उस झगड़े मे डालकर उसकी शान्ति नष्ट न करे। इस तरह चले और चलाये कि कुटुम्ब के लोगो मे एक दूसरे के दुःख-दर्द के प्रति आन्तरिक समवेदना—फलतः सहानुभूति—हो और मिल जुलकर काम निकलता रहे। इससे कठिनाइयॉ कम हो जाती हैं।

: ५ :

स्त्री-हृदय का रहस्य

अजमेर

प्रिय भगवती, १७-१०-३०

पिछले पत्र मे मैने तुम्हे यह लिखा था कि पुरुष और स्त्री के हृदय मे भिन्नता होती है और यह भी बताया था कि पुरुष का हृदय स्त्रियों से क्या चाहता है और क्या करने से स्त्री पुरुष को सन्तुष्ट रख सकती है। इस पत्र मे मै यह लिखना चाहता हूँ कि स्त्री क्या चाहती है और उसके हृदय की भावनाये किस तरह काम करती हैं।

मेरी यह ढिठाई यदि अन्य बहनों को मालूम हो तो निश्चय ही उन्हे हँसी आयेगी। मै, एक पुरुष, जिसके पास इस संबंध मे बहुत कम अनुभव है, स्त्री-हृदय के बारे मे कलम उठावे, यह निस्सन्देह कुछ समझ मे आ सकने योग्य बात नही है। किन्तु मैंने अपने विवाहित मित्रो से एव अपनी कई विवाहित बहनो से इस विषय मे जो कुछ जानकारी प्राप्त की है, उसे तुम तक पहुँचा देना मेरा कर्तव्य है। मेरे पास जो है, वही तो मैं तुम्हे दे सकता हूँ। यदि मेरे पास लाखो रुपये नहीं है, तो इसका यह मतलब नही कि मेरे पास सौ-पचास जो है, उनसे तुम्हारी सहायता न करूँ! फिर स्त्री का एकमात्र पत्नी ही रूप तो नहीं है। उनमे अविवाहित भी हैं; विधवा भी है। इसी प्रकार माताएँ भी हैं, बहने भी हैं और बेटियाँ भी हैं। इसलिए जब मैं स्त्री-हृदय के रहस्य तुम्हे बताने चला हूँ तो इसका यह आशय नहीं कि केवल विवाहित स्त्रियो के हृदय की चर्चा करना मेरा उद्देश्य है; मैं सभी प्रकार की स्त्रियो की बात कर रहा हूँ।

विवाहित और अविवाहित की आकाक्षाओ के प्रकाशन मे भेद हो सकता है, पर हृदय की मूल भावनायें बहुत कम बदलती हैं।

यह ठीक है और इसे मै आरंभ से ही स्वीकार कर लेना चाहता हूँ कि स्त्री-हृदय को जानना और समझ लेना पुरुष हृदय को जानने के समान सरल नही है। सभ्यता के आरम्भकाल से ही स्त्री एक बहुत गूढ और रहस्यपूर्ण वस्तु रही है। लेखको, कवियों और विचारको ने उसकी इस गूढता को कम नही किया, बढ़ाया ही है। इतने दिनो के अनुभव के बाद भी उसके बारे मे लोगो में बहुत मत-भेद है। इसका कारण यह है कि स्त्री का हृदय बहुत संकोचशील होता है। जहाँ पुरुष बाह्य का, बाहरी ससार का, प्रेमी है वहा स्त्री अन्तर की, आन्तरिक ससार की, प्रेमिका है। पुरुष के पास जो कुछ है, उसका वह विज्ञापन, प्रकाशन चाहता है—दुनिया भर पर छा जाना चाहता है। स्त्री के पास जो कुछ होता है, उसे वह अपने ही अन्दर छिपाकर रखना चाहती है। इसलिए पुरुष जहाँ जल्द पहचान लिया जाता है, वहाँ स्त्री, अपने को छिपाकर रखने के कारण, देर मे पहचानी जाती है या उसको पहचानने में पुरुष प्रायः गलती कर जाता है। कितनी ही स्त्रियाँ ऐसी हैं जो अपने पतियों को देवता मानती हैं, पूर्ण पतिव्रता हैं और हृदय से स्नेह करती है, पर स्वभाव, सस्कार, लज्जा और कौटुम्बिक परिस्थिति के कारण अपने प्रेम को लम्बी-चौड़ी बातो और पुरुष को प्रिय लगनेवाले प्रशंसात्मक वाक्यों में प्रकट नही कर सकतीं। यहाँ तक कि कई बार पुरुष का उतावला और अधीर हृदय, गलती से, कुछ का कुछ समझ बैठता है। विवाह के बाद कुछ दिनों तक लज्जा के कारण यह अवस्था विशेष कर देखी जाती है।

स्त्री-जाति की गूढता

पुरुष समझता है कि विवाह करते ही मैं स्त्री के सर्वस्व का स्वामी हो

गया। इसलिये उसके पास जो कुछ है, वह सब अविलम्ब मुझ पर प्रकट कर दे या सौंप दे। यह पुरुष की, विवाहित जीवन में, स्त्री के सम्बन्ध मे, सबसे बड़ी मनोवैज्ञानिक भूल है।

स्त्री और पुरुष

स्त्री के पास, उसके अन्दर, उसक हृदय में, जो कुछ होता है, उसी पूँजी से उसे जन्मभर अपना काम चलाना पड़ता है। एक-मात्र पति के साथ ही बँध जाने के कारण उसका ध्यान ससार की अन्य वस्तुओ से हटकर एक पुरुष मे केन्द्रित हो जाता है, वह पुरुष ही उसका सर्वस्व हो उठता है, इसलिए जन्मभर उस पुरुष मे ही अपने जीवन के सुख को अनुभव करने का प्रयत्न स्त्री को करना पड़ता है। यदि स्त्री अपने हृदय की ममता, प्रेम और सहानुभूति को, पुरुष के उतावलेपन को सन्तुष्ट करने के लिए, अपने जीवन की यात्रा के आरम्भ में ही दान कर दे या प्रकाशित कर दे, तो आगे वह कैसे अपना रास्ता तय कर सकेगी? पुरुष के लिए संसार में आकर्षण की, ध्यान देने की, बहुत-सी चीजे हैं। जो पुरुष सदाचारी है, अपनी पत्नी को हृदय से प्रेम करता है, वह भी केवल स्त्री के स्नेह पर ही जीवित नहीं रह सकता, उसे दुनिया मे और भी काम है। प्रेम उसके जीवन के कार्य-क्रम का एक हिस्सा है; उसके लिए वह अन्य सब कामो का त्याग नही कर सकता। स्त्री के लिए ऐसी कोई बात नहीं। उसके लिए प्रेम ही सब कुछ है। प्रेम ही उसके लिए जीवन है। पति का, या जिसे वह स्नेह करती हो उसका, प्रेम प्राप्त किये विना, या स्वयं उसके प्रेम मे अपने को वलिदान किये विना, कोई स्त्री, यदि वह सचमुच स्त्री है, रह नहीं सकती। एक विवाहित स्त्री घर के सब कष्टो को सहती है, इतना बड़ा बोझ उठा लेती है, उसमे अपने स्वास्थ्य तथा जीवन तक का वलिदान कर देती है। क्यो? स्वभाव के कारण। इसलिए विवाहित या अविवाहित किसी प्रकार के जीवन में लड-

स्त्रियाँ बिना प्रेम किये नहीं रह सकतीं। इस प्रेम का मतलब शारीरिक वासना नहीं है। एक लड़की अपने पिता मे या अपने भाई मे ही इतनी श्रद्धा, इतना स्नेह रख सकती है कि दुनिया को भूल जाय। स्त्री के लिए स्नेह करने को कोई ऐसा प्राणी चाहिए जिसमे वह अपने को भूल जाय; जिसके लिए वह बडे से बड़ा त्याग करने से सुख का अनुभव करे। लडकपन मे माता-पिता, भाई-बहन मे से किसी एक को, विवाहित अवस्था मे पति को और माता हो जाने पर सन्तान को प्रायः स्त्रियाँ बहुत अधिक स्नेह करती, उनके स्नेह मे विकल देखी जाती है। इसलिए मैने ऊपर जो-कुछ लिखा है, वह केवल विवाहिता स्त्रियो के ऊपर ही घटित नहीं होता, सब पर लगता है।

बात यह है कि जहाँ पुरुष की प्रकृति केन्द्रापसारी (Centrifugal) अर्थात् अपना विस्तार करने की, अपने को दुनिया मे फैलाने की ओर है,

हृदय की देवी

वहाँ स्त्री की प्रकृति केन्द्रोन्मुखी (Centripetal) होती है। केन्द्रोन्मुखी का तात्पर्य यह है कि सब ओर से ध्यान हटाकर वह एक वस्तु मे अपना ध्यान लगाने की चेष्टा करती है। पुरुष भी अपना हृदय एक के लिए ही सुरक्षित रख सकता है, पर जन्म भर आत्यन्तिक सीमा पर स्नेह को निभा ले जाना उसके लिए कठिन है; क्योंकि पुरुष मे कर्तव्य और विवेक का भाव प्रायः उसके प्रेम पर हावी रहता है और यह उचित ही है। स्त्री के लिए तो प्रेम उसका स्वभाव बन गया है।

दूसरी बात यह है कि स्त्री हृदय की प्रतिनिधि है और पुरुष शरीर और दिमाग का। इसका यह मतलब नहीं कि पुरुषों के पास हृदय नहीं

सभ्यता की देवी

होता या स्त्रियो मे बुद्धि नही होती। इसका मतलब यह है कि स्त्री मे हृदय के गुण अधिक होते है, पुरुष

की अपेक्षा उसका हृदय अधिक कोमल, अधिक उदार, अधिक भावनामय होता है। उसमे प्रेम, दया, श्रद्धा, सहानुभूति, क्षमा, करुणा, त्याग, सेवा के भावो की अधिकता होती है और पुरुष मे शरीर और दिमाग के गुण अधिक होते हैं। उसमे साहस, उत्साह, विचार-शक्ति, कठोरता अधिक होती है। इस बात पर ध्यान देकर देखे तो प्रकट होगा कि मनुष्यता के खयाल से स्त्री पुरुष से श्रेष्ठ है। साहस तो जगली और अत्यन्त पाशविक विचार रखने वाली जातियो मे भी पाया जाता है। मनुष्य को सभ्य बनाने और उसके अन्दर अधिक से अधिक देवत्व का विकास करने मे साहस और बल का हिस्सा प्रधान नहीं है। पुरुष की विचार शक्ति ने अवश्य इस क्षेत्र में बड़ा काम किया है, उसकी बुद्धि के सहारे सभ्यता की बड़ी उन्नति हुई है, पर मनुष्य बनानें मे दिमाग की अपेक्षा हृदय ने ही अधिक काम किया है। ससार के श्रेष्ठ से श्रेष्ठ काम प्रेम, सहानुभूति, करुणा, दया और क्षमा से ही किये जा सके हैं। बुद्धि और प्रेम का, दिमाग और हृदय का बदला नहीं किया जा सकता क्योकि दोनो के मूल्य में अन्तर है। बुद्धि के बिना भी आदमी आदमी रह सकता है, पर प्रेम के बिना वह पशु है। ससार का इतिहास स्वय पुकार-पुकार कर इसकी घोषणा कर रहा है। आज इस बुद्धि-प्रधान ईर्ष्या-द्वेष और कलह के समय मे भी बुद्ध और ईसा का मानव-हृदय पर जो प्रभाव है, उन्होंने हमारी सभ्यता और सस्कृति को जितना ऊँचा उठाया है, उतना न्यूटन और एडिसन, मार्कोनी और जगदीशचन्द्र[1] ने नही उठाया। कबीरदास और मीराबाई का स्थान पं० मोतीलाल और सर तेजबहादुर सप्रू नही ले सकते। इसलिए बहुत प्राचीनकाल से, जब मनुष्य जगलो मे पशुओ के समान घूमा करता था, जब खून-खराबी लूट-मार ही उसका प्रधान कार्य था,

१. संसार के बड़े-बड़े वैज्ञानिक, जिन्होंने अनेक आविष्कार किये हैं।

स्त्री ने पुरुष को आदमी होना सिखाया है और अपने आकर्षण तथा अपनी ममता से एक योग्य पति, एक स्नेही भाई और एक श्रद्धालु पुत्र के रूप मे ससार के सामने ला खड़ा किया है। जब पुरुष स्वय खा-पीकर मस्त रहने और दूसरो के सताने में तृप्ति का अनुभव करता था, तभी स्त्री ने उसे अपने स्नेह से, अपनी ममता से, अपनी सेवा और वफ़ादारी से, एक कुटुम्ब के बन्धन में डाला और सिर्फ अपने ही लिए नही, दूसरो के लिए परिश्रम करने की प्रवृत्ति उसमें पैदा की। यही वह सड़क है जिस-पर चल कर आज दुनिया मनुष्यता का इतना विकास कर सकी है। संसार की सभ्यता की शरीर-रचना मे जहॉ पुरुष ने अपना बडा विज्ञापन किया है, वहॉ स्त्री ने चुपचाप कष्ट-सहन, त्याग, बलिदान एव ममतामयी शालीनता के साथ उसके प्राणो की रचना की है।

हाँ, तो मै तुम्हे यह समझा रहा था कि पुरुष और स्त्री के हृदय मे बड़ा अन्तर है। हृदय ही क्यो शरीर की रचना, स्वभाव, सोचने-विचारने के ढंग भी दोनो के अलग-अलग है। प्रत्येक स्त्री-पुरुष को यह जान लेना चाहिए। स्त्री सेवा और त्याग की प्रतिमा है, पुरुष साहस और बुद्धि का पुतला है। स्त्री-दान की देवी है—अन्नपूर्णा है। वह देना जानती है। आत्म-समर्पण,—जिसे चाहती है उसपर सब कुछ चढ़ा देना—उसका धर्म है। पुरुष ग्रहण करने वाला, दान लेनेवाला प्राणी है। वह कुछ देना नही चाहता और जब कुछ देता भी है तो उससे अधिक पाने की आशा रखता है। जहाँ स्त्री जिसे चाहती है उसे आत्मसमर्पण करती है, वहॉ पुरुष जिसे प्रेम करता है उसपर अधिकार चाहता है। यह बात मै उन स्त्रियो के विषय में कह रहा हूँ जिन्होंने अपना सत् और अपनी श्रद्धा एवं आत्मनिष्ठा इस युग मे भी कायम रखी है। अन्यथा आजकल की फैशनेबल रमणियॉ

दानमयी

इस कसौटी पर बिल्कुल असफल हो रही है और उनके मुकाबिले मे तो सामान्य पुरुष ही अधिक आत्मार्पणशील और गभीर प्रेमी ठहरता है। यह एक निश्चित-सी बात है कि जिस प्रेम मे आत्म-समर्पण का भाव जितना ही अधिक रहेगा, उसमे त्याग की भावना उतनी ही अधिक होगी, उसमे स्वार्थ की उतनी ही कमी रहेगी और वह उतनी ही उच्च कोटि का प्रेम होगा। जिस प्रेम में अधिकार का, ग्रहण का भाव जितना अधिक होगा, वह प्रेम उतना ही स्वार्थमय और वासनापूर्ण होगा। यदि पुरुष स्त्री को और स्त्री पुरुष को समझ ले तो जीवन की बहुत-सी गलतफहमी घट जा सकती है, पर साधारण सकोच और लज्जा के कारण स्त्री अपने हृदय को बहुत छिपाकर रखती है और इस गोपनीयता से, इस छिपाने की प्रकृति से, उसके प्रति पुरुष का आकर्षण साधारण सीमा और उत्कण्ठा से बढ़कर प्रायः अधीर हो जाता और भोग-विलास और वासना-रंजन के रूप मे बदल जाता है। पुरुष ने हृदय के अन्दर छिपाकर रखने योग्य बातों को कभी न समझा। इसे न समझने से ही स्त्री को समझने के लिए अनादिकाल से पुरुष विकल है।

इसलिए तुम सदा इस बात का खयाल रखना कि पुरुष का हृदय दूसरी धातु का बना होता है। उसके व्यवहार से अपनी प्रकृति के अनुकूल अर्थ नही निकालना चाहिए। तुम्हे केवल अपना कर्तव्य समझना चाहिए; अपने धर्म का खयाल रखना चाहिए। न तो स्त्री को पुरुष से स्त्री-हृदय के भावो की आशा रखनी चाहिए; न पुरुष के उतावलेपन पर अपने स्त्रीत्व को, अपने प्रेम की गम्भीरता को बलिदान करना चाहिए। पर हॉ, स्नेही पुरुष को अनुकूल बनाने और उसके स्नेह को कायम रखने के लिए जिस स्नेह, सहानुभूति और सेवा की आवश्यकता होती है, उसका उपयोग बराबर करते रहना चाहिए।

जैसा कि मै कह चुका हूँ, साधारणतः पुरुष का हृदय नित्य-नवीनता ढूँढने वाला, असहनशील, और शीघ्र ऊब जाने वाला होता है।

एक ज़रूरी बात

क्योकि उसे जीवन के सघर्ष में बडा कठोर कार्य करना पडता है। इसलिए उसे ऊँचा उठाकर उसमे स्थायी प्रेम की सुगन्ध भरना स्त्री की सेवा, बुद्धिमानी और मधुरता पर निर्भर है। **स्त्री जिसे हृदय दान करती है, उसे ही जीवन-दान भी कर देती है। प्रेम और जीवन उसके लिए एक है;** इसलिए स्त्री सदा अपने स्वामी को, अपने प्रेमी को सुखी करने के लिए सब कुछ कर सकती है। हाँ, एक बात का सहन करना उसके लिए अत्यन्त कठिन है। साधारणतः कोई स्त्री यह नही सह सकती कि उसका पति किसी अन्य स्त्री को हृदय दान करदे। वह पति के लिए प्राण दे सकती है; वह अपने सब अधिकार छोड़ सकती है; पर पति को, पत्नीत्व के भाव के साथ, दूसरी स्त्री को ग्रहण करते नहीं देख सकती। वह तो उसकी पूँजी का ही सर्वनाश है, जिसके बल पर ससार के बड़े से बड़े कष्ट वह झेल सकती है। वह उसके सोहाग की चिता है, जिसका जलना देखने मे वह प्राण रहते असमर्थ है। यह ठीक है कि कही-कहीं ऐसी स्त्रियाँ भी देखी गई है, जिन्होने पति के सुख के लिए हँसते-हँसते, अपने कलेजे के दर्द को दबाकर उन्हे दूसरी स्त्रियो को सौंप दिया है, पर वे बहुत उच्चकोटि की त्यागी स्त्रियो के उदाहरण हैं, जो दुनिया मे कभी-कभी दिखाई पड़ जाती हैं। मै तो साधारण स्त्रियों की बात कर रहा हूँ। फिर ऐसा करते हुए उन स्त्रियो को भी मानसिक वेदना तो होती ही है। अन्तर इतना ही है कि वे उसे छिपाकर रख सकती हैं।

इसलिए प्रत्येक साधारण स्त्री अपने सारे कष्ट-दुःख, सेवा, त्याग और जीवनव्यापी बलिदान के बदले पति का प्रेम अवश्य चाहती है। इसी

नीव पर, इसी शक्ति के, इसी पूॅजी के सहारे वह ऊॅचे से ऊॅचा उठ सकती है और जीवन की कठिनाइयो को सहती है। किन्तु पति का प्रेम प्राप्त करना भी बहुत-कुछ स्त्री के ही हाथ है। स्त्री को आरम्भ मे न तो पुरुष के उतावले प्रेम पर पागल हो जाना चाहिए और न उससे बहुत अधिक आशा रखनी चाहिए। उसे सदा अपने सतीत्व, अपने प्रेम और अपनी भक्ति मे विश्वास होना चाहिए और यह समझते रहना चाहिए कि मै अपनी सेवा और अपने मधुर व्यवहार से पति की विरक्ति और चिन्ताओ को दूर करके उसके हृदय पर विजय प्राप्त कर लूॅगी। सबसे अच्छी बात तो यह है कि स्त्री बदले मे कुछ आशा किये बिना ही सच्चे प्रेम और आत्म-समर्पण का आदर्श उपस्थित करे पर यह एक बहुत कठिन बात है और सबसे सम्भव नही पर तुम्हे पति से एकदम बहुत अधिक आशा भी न कर लेनी चाहिए।

स्त्रियों की भूल

बहुत-सी स्त्रियॉ सदा अप्रसन्न रहती हैं। वे सब काम-काज करती है, पति की, सास-ससुर की सेवा भी करती हैं, पर गलत-फहमी के कारण वे मन ही मन कुढती रहती है। वे सेवा करती है, पर उस सेवा मे प्रसन्नता का अनुभव नहीं करती, अतः दुखी रहती हैं और उनके काम का, उनके त्याग का, उनकी सेवा का कुछ असर भी नही होता। सुख केवल उन स्त्रियो को प्राप्त होता है, जो विवाह रूपी साझे मे अपने हिस्से का काम ठीक तरह से पूरा करती है। इसके विरुद्ध जो स्त्रियॉ बड़ी-बड़ी आशाये लेकर जाती है और उनकी पूर्ति न होने के कारण दुखी और अनमने हृदय से गृहस्थी का काम-काज चलाती है, वे घर के वातावरण को मधुर और शान्तिमय नहीं रख सकती। वे पति के लिए, पति के मंगल एव कल्याण के लिए, प्रसन्नता-पूर्वक काम नही करतीं। उनका दाम्पत्य जीवन उनके

लिए बोझ हो जाता है और वे सदा अपने विवाहित जीवन को दासी का जीवन समझने के कारण अपने मन और शरीर दोनों को दुर्बल और कृश कर डालती हैं। इसलिए तुम्हें सदा याद रहे कि स्त्री को संसार को कठिनाइयाँ उठाने की शक्ति तभी मिल सकती है, जब वह अपने सुख का ध्यान न करके पति के कल्याण के लिए सदा प्रयत्नशील रहे और पति तथा घर के अन्य लोगो की सच्ची सेवा मे ही अपना सुख खोजे और पति के सुख-दुःख को ही अपना सुख-दुःख समझे। मैं यह जानता हूँ, इसलिए तुम्हे पहले से ही सचेत कर देना चाहता हूँ, कि बहुत-सी स्त्रियाँ मुँह फुलाकर ग़लत-फ़हमी के कारण या अपने पतियो के उतावलेपन की शिकार होकर, बहुत जल्द अपने सौभाग्य-सुख मे चिन-गारी लगा देती हैं और बहुत-से पुरुष भी ज़्यादा सिर चढ़ाकर या आलसी, आराम-तलब और हठी बनने की आदत डाल कर अपनी स्त्रियो को नष्ट कर डालते हैं। हर अवस्था मे, हर क्षेत्र मे, इस सिद्धान्त को सदा याद रखो कि **उत्तेजना में बह जाने की अपेक्षा मन एवं विचार पर संयम रखकर किसी काम के बारे में कुछ निश्चय करना अच्छा है।** कभी उस रास्ते पर न जाओ जिसमें बड़े जोर से, आँधी की हरहराहट के समान, तूफ़ान या धारा में बह जाने का खतरा हो, क्योकि ऐसे समय सदा विचार-शक्ति का लोप हो जाता है और आदमी ठीक रास्ते का निर्णय नहीं कर सकता।

मेरे लिए, एक पुरुष होने के कारण किसी स्त्री को—चाहे वह कितनी ही छोटी और अज्ञान हो—उपदेश करना विडम्बना मात्र है। मैंने सदा बहनो को नतमस्तक हो प्रणाम किया है। मै उनके सामने, उनके त्याग के सामने, अपने को बहुत क्षुद्र अनुभव करता हूँ; पर स्वयं मेरे हृदय के अन्दर स्त्रीत्व के गुण ही अधिक है, इसलिए यदि मै साहस

करके तुमसे या किसी बहन से यह कहूँ कि पुरुषों की कमज़ोरियाँ और उनके हृदय एवं अपने हृदय के अन्तर को समझकर भी तुम विवाहित होने पर स्वयं अपने स्त्रीत्व के सेवा एवं त्यागमय आदर्श को एक इञ्च झुकने न देना, तो आशा है, मैं क्षमा का पात्र समझा जाऊँगा।

: ६ :

गृह-जीवन

अजमेर

चिं० भगवती, २१-१०-३०

जहाँ तक एक पुरुष के लिए सम्भव है, मैं पिछले पत्रो मे विवाहित जीवन की जिम्मेदारियो, पति-व्रत, सेवा तथा पुरुष-स्त्री-हृदय के रहस्य और अन्तर के सम्बन्ध मे लिख चुका हूँ। उनपर ध्यान देने से लाभ उठाया जा सकता है। पर उनके अतिरिक्त कुछ और बातें भी हैं, जिन्हे तुम्हारे जान लेने की आवश्यकता है। इस पत्र मे उन्हीं के सम्बन्ध मे लिखना चाहता हूँ।

यद्यपि यह ठीक है कि स्त्री का पहला कर्तव्य पति की सेवा है, किन्तु कुटुम्ब में रहते हुए, जहाँ सबके स्वार्थ एक-दूसरे से बँधे हुए हैं,

प्रेम का नशा

केवल पति-प्रेम में दीवानी रहने से ही स्त्री का गृहस्थ-जीवन सफल और सुखदायक नहीं हो सकता। पति के साथ ही, उनके माता-पिता, उनके भाई-बहन इत्यादि का भी ध्यान रखना पड़ता है। स्त्री को ससुराल मे अपना जीवन ऐसा बना लेना चाहिए कि हरेक को उसकी आवश्यकता मालूम पड़े और प्रत्येक प्राणी अनुभव करे कि इसके आने से मेरा जीवन अधिक सुखपूर्ण, सुन्दर और मधुर हो गया है। इसलिए पति की सेवा करने तथा उसके सुख-दुःख मे हाथ बटाते रहने के साथ ही, स्त्री को उन सब बातों पर भी ध्यान देना पड़ता है, जिनके ऊपर पति के मन की शान्ति तथा दोनो के सम्बन्ध का अटूट स्नेह निर्भर करता है।

इसके लिए सब से आवश्यक बात, जिसके बारे मे मै पहले भी लिख चुका हूँ, यह है कि पत्नी को पति में गहरी श्रद्धा होनी चाहिए और उसे शरीर, मन और वाणी से पतिव्रता होना चाहिए। जिस स्त्री का अपने पति के प्रति सच्चा प्रेम नही है, उनका मन घर के काम-काज मे कभी नहीं लग सकता, वह उसे एक बोझ समझ कर दुखी चित्त से करती है और अपने को घर की मालकिन की जगह दासी समझकर व्यर्थ कष्ट पाती है। इसके विरुद्ध जिस स्त्री का अपने पति मे प्रेम होता है, उसे घर का अधिक से अधिक काम करने मे आनन्द आता है; वह सदा प्रसन्नतापूर्वक घर के सारे काम करती है, क्योकि वह अनुभव करती है कि घर मेरा है; मैं इसकी मालकिन हूँ। बुरा है तो, भला है तो, अपनी चीज है।

पुरुष के लिए, दुनिया मे मन बहलाने के अनेक साधन हैं। वह घर के बाहर भी अपने मित्रो मे, सभा-सोसाइटियो मे, सिनेमा और नाटक-घरो मे, सैर-सपाटे मे, अपने मन के दुःख को भुला सकता और प्रसन्नता प्राप्त कर सकता है; परन्तु स्त्री के लिए, यदि पति का प्रेम नहीं है, तो जीवन व्यतीत करना कठिन हो जाता है।

यह प्रेम, एक सीमा तक, कैसे प्राप्त किया जा सकता है, इसके सम्बन्ध मे पहले के पत्रों मे लिख चुका हूँ। प्रेम प्राप्त करने का कोई खास नुस्खा नहीं है। यह पत्नी की सरलता, पति में श्रद्धा-विश्वास, घरेलू जीवन की शान्ति, सेवा, मधुरता तथा पति की मनोवृत्ति पर निर्भर है। इनके अतिरिक्त अपने विचार और अपने भावो से भी सुख-दुःख का बहुत सम्बन्ध होता है। अमेरिका की एक अनुभवी स्त्री ने लिखा है—"स्त्री के हृदय का भाव ही वह चीज़ है जो उसके जीवन को सुख-दुःखमय बना सकता है।" किसी महात्मा ने कहा है—"स्वर्ग और

नरक सब मन के अन्दर है।" स्त्री के लिए यह बात ख़ास तौर से ठीक है, क्योंकि स्त्रियाँ जब सुख का अनुभव करती है तो बहुत अधिक करती है और दुःख का अनुभव करती हैं तो भी बहुत अधिक करती हैं। हर हालत मे एक साधारण स्त्री की अनुभव-शक्ति एक साधारण पुरुष की अनुभव-शक्ति से अधिक होती है। इसलिए स्त्रियाँ पति का थोड़ा भी प्रेम पाने पर पागल-सी हो जाती है और अपना सब कुछ भूल जाती हैं। पर इस तरह का प्रेम जिसमें संयम नही है, उन्माद और पागलपन है, स्थायी नहीं हो सकता। प्रेम सदा आदमी को ऊँचा उठाता है; इसलिए पागल और कर्तव्य से विमुख करनेवाले प्रेम से सदा बचना चाहिए।

उत्तरदायित्व

पुरुष का—पति का—पत्नी के प्रति जो कर्तव्य है, उसे ग़रीबी, चिन्ता, गुलामी, मूर्खता और अव्यवस्था के कारण हम लोग भूल-से गये हैं। जो स्त्री पति के मुँह से स्नेहमय दो शब्द सुनने के लिए तड़प रही हो, उनकी निराशा की कल्पना पुरुष बडी कठिनाई से कर सकता है। पुरुष यह भूल जाता है कि स्त्री उसकी तरह अपने मनको ससार के अन्य साधनो से तृप्त नहीं कर सकती और चाहे पति भोजन, वस्त्र, गहने तथा अन्य बातो की सुविधा पत्नी के लिए कर दे परन्तु यदि स्त्री को पति की सहानुभूति और स्नेह प्राप्त नहीं है और वह सच्चे हृदय से पति को प्रेम करती है, तो ये सारी सुविधायें और ऐश्वर्य उसके लिए मिट्टी के समान हैं। ऐसी स्त्री मन मे अनुभव करती है कि मानों उसकी कोई क़ीमती चीज खो गई है, जिसके बिना उसका जीवन बिल्कुल सूखा जा रहा है और वह सदा उस खोई हुई चीज के लिए बेसुध और बेचैन रहती है।

किन्तु परिस्थिति का विचार करने पर और मन को शान्त रखने से, वह बेचैनी और कठिनाई भी, एक सीमा तक, कम की जा सकती

है। एक तो ऊपर मैंने जो बात लिखी है वह बहुत ही उदार, प्रेमी, भावुक और बहुत करके शिक्षित स्त्रियो के लिए ही ठीक है। हमारे देश मे सौ मे निन्यानवे विवाह तो ऐसे ही होते हैं जिनमे हृदय और प्रेम को कोई स्थान नही होता। विवाह एक जरूरी बात है, यही समझ कर विवाह किया जाता है और जीवन के एक साधारण कार्य-क्रम—रूटीन—की तरह वह भी बन जाता है। इसलिए स्त्रियाँ, साधारणतः अपने पति की सेवा और गृहस्थी के काम-काज करते हुए, तथा बच्चे, होने पर उनके पालन-पोषण मे, अपना जीवन बिता देती हैं। अधिकाश स्त्री-पुरुष संस्कार और अपनी मर्यादा का ख़याल करके, समाज में अपनी इज्ज़त बनाये रखने के लिए, एक-दूसरे के प्रति वफ़ादार रहते और अन्य सासारिक कार्यों का पालन करते हुए अपनी ज़िन्दगी के दिन बिता देते हैं। उनमे प्रेम की अपेक्षा कर्तव्य और प्रथा से पैदा होनेवाली भावना की ही प्रधानता होती है। जीवन मे कर्तव्य की प्रधानता उचित ही है पर प्रथा-मर्दित विवाहित जीवन रुक्ष एवं बोझल हो जाता है। पति यह समझता है कि यह मेरी ब्याहता है; इसे अच्छे से अच्छे कपड़े पहनना, अच्छी तरह खिलाना, इसकी रक्षा करना मेरा कर्तव्य है और स्त्री सोचती है कि अब तो मेरा ब्याह हो गया; जैसा भी हो, अपना आदमी है; उसकी, उसके कुटुम्बियो की सेवा करना मेरा काम है। इस पतिव्रत भाव मे प्रेम की अपेक्षा संस्कार की ही प्रबलता होती है। साधारणतः हमारा विवाहित जीवन इसी तरह बीतता है। न पति पत्नी के उस प्रेम के लिए विकल होता है, जिसके प्राप्त होने पर और किसी वस्तु की इच्छा बाकी नहीं रहती और न पत्नी पति के इस प्रेम के लिए पागल हो उठती है, जिसके प्राप्त होने पर जीवन मे पूर्णता का अनुभव होता है। इसलिए विवाहित जीवन मे भी अनेक स्त्रियो को ऐसे प्रेम का अभाव अनुभव

नहीं होता; न पतियों का ही इनकी ओर विशेष झुकाव होता है। खाने-पीने, घर-बाहर के काम-धन्धे, सेवा-चाकरी में उनका अधिकाश समय जाता है और इसके अतिरिक्त जो बचता है, वह शारीरिक वासनाओं की तृप्ति मे लग जाता है। साधारण विवाहित पुरुष-स्त्री का यही जीवन है और इस जीवन मे उन स्त्री-पुरुषो के जीवन से कम चिन्ता और दुःख है, जो प्रेम के अभाव मे, जीवन में बहुत बड़ी कमी अनुभव कर, तड़प रहे है।

तुम यह न भूल जाना,—तुम क्या, किसी भी बहन-भाई को यह बात भूलनी न चाहिए—कि हमारे यहाँ विवाह की नींव प्रेम पर नहीं, सासारिक धर्म-बन्धन और सामाजिक सुविधा के ऊपर खडी की गई है। बुरी है या भली, यह मैं नही कहता पर स्थिति यही है। इसलिए उत्कट प्रेम के अभाव में, सहानुभूति रखते, सेवा करते, परस्पर सहायक होकर अपने कर्तव्यो का पालन करते हुए, जीवन अच्छी तरह बिता दिया जा सकता है। प्रेम का अभाव इसमे बाधक तभी हो सकता है, जब हमें प्रेम की चाट, पुस्तको मे पढ़कर या आन्तरिक प्रेरणा के कारण या दूसरो को देखकर, पहले से ही लग गई हो। यूरोप में बात इसके विपरीत है; वहाँ जिससे प्रेम हो जाता है (यद्यपि प्रायः इस प्रेम मे शारीरिक आकर्षण ही अधिक होता है) उससे विवाह होता है या उसी से विवाह करने की चेष्टा स्वयं स्त्री-पुरुष करते हैं। यहाँ विवाह होता है गृहस्थ-धर्म के पालन के लिए और वहाँ होता है जीवन के सुख के लिए इसलिए संस्कार के कारण साधारण-स्त्री-पुरुष हमारे देश मे विवाह के बाद ही अपने नियमित कार्यों मे लग जाते हैं; प्रेम के अभाव के कारण पागल नही होते। अपना-अपना काम करते हुए उनका जीवन कट जाता है।

इसलिए जो स्त्रिया पति से साधारण स्नेह और सहानुभूति की आशा

रखती हैं, वे उन स्त्रियो से कहीं अधिक सुखी रहती हैं, जो पति के प्रेम के लिए पागल हो जाती हैं। बहुत बडी-बड़ी आशायें कभी न बॉधो; न हवाई-किले बनाओ। कर्तव्य और धर्म समझकर विवाहित जीवन के आदर्श का पालन करो।

हर हालत मे, अपने लिए, सन्तोष का फल मीठा होता है। अधिक प्राप्त करने का यत्न तो सदा करना चाहिए, पर अधिक न मिलने की हालत में, जो मिला है, उसी पर सन्तोष कर लेने से, जीवन की कठिनाइयॉ कम हो जाती है। प्रत्येक भाई-बहन को यह बात याद रखनी चाहिए कि दुनिया मे सब सुख-स्वप्न पूरे नही उतरते। मन की सभी इच्छाओ का पूरा होना असम्भव है। न तो भावुक पतियो को वैसी स्त्रियॉ मिलती हैं, जिनका आदर्श उनके दिल मे पहले से उपस्थित रहता है; न स्त्रियों को सदा वैसे पति ही प्राप्त हो सकते हैं, जिनकी कल्पना वे पहले से कर रखती है। इसलिए मैं बहनों से कहूँगा कि ऐसी अवस्था से सामना होने पर—मनचाहा पति न मिलने पर—दुखी और अधीर हो जाने की जगह, शाति से बैठकर मन में विचारो कि क्या दुनिया मे मुझसे दुखी और अभागी स्त्रियॉ नही हैं? सोचो कि क्या किसी की भी सब इच्छायें दुनिया मे पूरी होती हैं? ससार मे कोई भी प्राणी ऐसा नहीं है जिसको चिन्ता, उद्विग्नता, रोग, शोक और निराशा से कभी काम न पड़ा हो। जो बात सबके लिए है, वही तुम्हारे लिए भी है। फिर जैसा कि मैं लिख चुका हूँ, दुःख को घटाना-बढ़ाना भी अपने मनोभावो के संयम पर निर्भर है। हाँ, कुछ दुःख ऐसे भी होते है जिनको सहने मे भी कई प्रकार का सन्तोष और सुख होता है। कोई मनुष्य जिसे स्नेह करता है उसका हृदय से, हर हालत में, भला चाहता है। वह उसके लिए कष्ट

सन्तोष का फल

और दुःख सहने में सन्तोष और तृप्ति का अनुभव करता है। यदि कोई विवाहित स्त्री सच्चे हृदय से पतिव्रता है तो पति के कल्याण और पति के सुख में ही उसे सच्चा सुख अनुभव होगा। इसलिए यदि बिल्कुल मन के आदर्श के अनुकूल पति न प्राप्त हो तो जो पूँजी मिले उसी के सहारे जीवन की इमारत खड़ी करने की चेष्टा प्रसन्नतापूर्वक करनी चाहिए। उच्च जातियो की हिन्दू स्त्रियों के लिए यह संयम विशेष आवश्यक है; क्योंकि इनके सम्बन्ध में न तो समाज में, न कानून में, पति के जीवित रहते स्त्री के लिए विवाह के बधन से कोई छुटकारा है। इसलिए दुखी होकर जीवन-भर घुलने से तो हर हालत में यही अच्छा है कि जो कुछ है उसी पर सन्तोष करके शान्ति के साथ जीवन बिताने का यत्न किया जाय। एक बार व्याह हो जाने पर स्त्री को सदा यह याद रखना चाहिए कि वह जिन्दगी-भर के लिए एक ऐसे संस्कार के बंधन में बँध गई है जिसकी गाँठे खुल जाने पर भी जन्म-भर बनी रहती हैं। जहाँ तलाक को प्रथा है, जहाँ पति-पत्नी का जीवन एक-दूसरे के साथ न मिलने पर वैवाहिक सम्बन्ध तोड़ देने और दूसरे पुरुष से कर लेने की सुविधा है, वहाँ भी स्त्रियों को दूसरे व्याह से पहले व्याह की आशा, प्रसन्नता और उत्साह नहीं मिलता। इसलिए हर हालत में सन्तोषमय विवाहित जीवन असन्तोषमय जीवन से श्रेष्ठ है।

दूसरी बात जो मैं इस सम्बन्ध मे देखता हूँ स्त्रियों के दुःख को बढ़ाकर कहने और पुरुषो की कठिनाइयों का बिल्कुल ख़याल न करने की मनोवृत्ति है। जो लोग आज समाज में स्त्रियो की समस्या को लेकर आन्दोलन कर रहे हैं और उनके सच्चे हितैषी समझे जाते हैं, वे सारे अपराधों और दोषो का बोझ पुरुषो पर डालना चाहते हैं। दुःख की बात तो यह है कि स्वयं स्त्रियाँ

अपराध किसका है ?

भी पुरुषों की कठनाइयो को समझने का प्रयत्न नही करती। इसका फल बड़ा विषैला हो रहा है; क्योंकि सिर्फ एक पर ही बोझ डालते समय हम भूल जाते है कि विवाहित जीवन या स्त्री-पुरुष का सुख-दुःख एक-दूसरे पर निर्भर करता है। दोनों को दोनो की कठिनाइया समझने और सहानुभूति के साथ उनपर विचार करने की जरूरत है। हम लोग यह भूल गये हैं कि घर के छोटे-से कमरे मे रहने वाली स्त्री को जितनी कठिनाइयो का सामना करना पड़ता है, बाहर—समाज मे—काम करने वाले पुरुष को उससे अधिक कठिनाइयो से लडना पडता है। पुरुषो के सामने प्रलोभन भी अधिक हैं। उन्हे बीसो आदमियो से व्यवहार रखना पड़ता है, इधर-उधर अनेक तरह के स्त्री-पुरुष उनके संसर्ग मे आते रहते है। इसलिए स्त्री की भॉति मन को केन्द्रित और एकाग्र रखना पुरुष के लिए बहुत कठिन हो जाता है। आज समाज मे पुरुषो के समान अधिकार लेकर, नई रोशनी की चटक-मटक मे जो स्त्रियॉ पुरुषो के कन्धे-से-कन्धा मिला कर काम कर रही हैं, वे पतिव्रत धर्म का पालन करने मे उन स्त्रियो से अधिक कठिनाइयों का अनुभव करती हैं, जो घरेलू जीवन को—पति, सास-ससुर इत्यादि को—अपना कार्यक्षेत्र मानकर चल रही हैं और जिनका "उद्धार" करने को शिक्षित और अधिकार-प्रिय स्त्रियॉ बाहर निकलकर आवाज बुलन्द कर रही हैं! इसका कारण यही है कि उन्हे समाज मे पुरुषों की भॉति नाना प्रकार के प्रलोभनो और व्यक्तियों के संसर्ग से उत्पन्न होनेवाली मानसिक कठिनाइयो का सामना करना पड़ रहा है।

आज-कल ससार मे रोटी की समस्या सबसे विकट है तथा दिन-दिन और भयकर होती जा रही है। बेकारो की संख्या बढ़ रही है। बीस-बीस पचीस-पचीस रुपये मे बी० ए० मिल जाते है। पढ़े-लिखो मे

रोटी का प्रश्न

ही बेकारी हो सो बात नहीं। मशीनों के प्रचार से शरीर-द्वारा परिश्रम करके कमाने वाले भी बेकार हो रहे हैं। लोगो को पेट पालने भर के लिए काम मिलना कठिन हो रहा है। शिक्षित और अच्छे विचार के युवक बड़े बड़े नगरों के आफिसो मे चक्कर काटते और दुरदुराये जाते दीख पड़ते हैं; यह हमारे जीवन मे एक मामूली बात हो गई है। मीलों चक्कर काटते और 'जगह खाली नहीं', 'कोई काम नही है' सुनाते-सुनाते अपमान और निराशा से पीड़ित भाइयो को घर आकर बेदम चारपाई पर पड़कर रोते मैंने देखा है—कोई भी, किसी समय, इसे देख सकता है। इन भाइयों के दिल मे अपनी पत्नियों को अच्छा से अच्छा खिलाने-पिलाने और सुख से रखने की इच्छा होती है, पर यह सुख रोटी की समस्या हल किये बिना, कमाये बिना, प्राप्त नहीं हो सकता। जिनको कहीं छोटा-मोटा काम मिल भी जाता है, उन्हें अपनी इज्जत-आबरू, अपना ईमान बचाकर काम करना बहुत कठिन हो जाता है। पग-पग पर उन्हें आत्म-सम्मान बेचना पड़ता है; जो करना न चाहिए वह भी करना पड़ता है—अपमान, झिड़की, गाली, सभी कुछ खानी और सहनी पड़ती है। कभी-कभी जब आत्मभिमान पर गहरी ठेस लगती है, तो इस्तीफा दे देने की भी इच्छा होती है, पर घर मे बैठकर रास्ता देखने वाली पत्नी और बच्चो के मुँह देखकर एक लम्बी साँस बाहर निकाल कर ही संतोष करना पड़ता है। पुरुष का स्त्री के लिए यह थोड़ा बलिदान नहीं है। इतने प्रलो-भनो, कठिनाइयो, आपदाओ के बीच यदि पुरुष घबड़ा जाय; स्त्री की भाँति अपने को एकाग्र न रख सके तो वह, एक सीमा तक, दया और क्षमा का पात्र है। मै यहाँ पुरुषो का पक्ष नहीं ले रहा हूँ। मैं इन कठिनाइयो का उल्लेख करके पुरुषो का बचाव भी नही करता हूँ, न

उनके दोषो को ढकने या उनपर परदा डालने की ही मेरी इच्छा है। उनके दोष, उनकी कमजोरियॉ, मैं पहले लिख चुका हूॅ। मैं यह नही कहता कि उनके दोषो पर समुचित विचार न किया जाय; मैं केवल यह चाहता हूॅ कि स्त्री-पुरुष दोनो एक-दूसरे के दोष निकालने की अपेक्षा एक दूसरे की कठिनाइयो, एक दूसरे के सुख-दुःख को समझने की चेष्टा करे; सहानुभूति के साथ, अपनापन का भाव रखते हुए, एक-दूसरे को ऊॅचा उठाने की कोशिश करे। इससे विवाह का और गृहस्थ-धर्म का जो उद्देश्य है, वह सफल होगा।

स्वास्थ्य और उत्साह

तीसरी बात, जिसकी ओर मै तुम्हारा ध्यान आकर्षित करना चाहता हूॅ, और जिस पर जीवन का सुख खास तौर से निर्भर करता है, स्त्री का स्वास्थ्य और उत्साह है। सदा अपने स्वास्थ्य का ध्यान रक्खो और सुस्त एव उदास न बैठकर घर के कामो को उत्साह से करो। किसी स्त्री का आलसी होना अपने जीवन को नष्ट करना है। इसमे शरीर और मन दोनो की अवनति होती है, तथा घर की व्यवस्था और शान्ति नष्ट हो जाती है। प्रायः बहुत-सी स्त्रियॉ घर के जरूरी कामो की ओर ध्यान न देकर, उन्हे छोड़कर, इकट्ठी होती और इधर-उधर की बाते किया करती हैं। इस प्रकार के आलसी जीवन में प्रायः दूसरो के चरित्र की छान-बीन और इनके-उनके घॅर कीबुराइयॉ ही सामने लाई जाती है। एक आदमी और एक स्त्री मे बड़ी घनिष्ठता है। एक कहती है कि पता नही क्यो इनमे इतना स्नेह है, मुझे तो भाई विश्वास नही होता। दुनिया मे तो भाई-भाई मे बनती ही नहीं और यहॉ यों निःस्वार्थ स्नेह होगा, यह कैसे मान लिया जाय? दूसरी इस विचार का समर्थन करने के लिए पहले से ही तैयार रहती है। तीसरी पुष्टि के लिए झट दो-चार प्रमाण और उदाहरण उपस्थित कर देती है—

"हाँ जी, दुनिया में ऐसा आजकल कौन है ? मैंने तो अमुक समय एकान्त में दोनो को बातचीत करते देखा था।" जब इस तरह की बाते निकलती हैं तो ऐसी-ऐसी बातें सामने रक्खी जाती हैं, जिनका सिर पैर कुछ नही होता और जो दूसरो को नीचा गिराने या अपने अन्दर की कलुषित वृत्तियों और अधूरे आदर्शों की भूख मिटाने के लिए कही जाती है। भोली और उदासीन स्त्रियाँ जो ऐसी जगह बैठती-उठती हैं, लोगो की झूठी निन्दा के इस जाल में धीरे-धीरे फँसती जाती हैं। स्त्री हृदय ऐसी बातों के विषय में बहुत उत्सुक और उत्तेजनाशील (Sensitive) होता है। उसे दूसरों की आलोचना बहुत प्रिय होती है। इसलिए सहज ही ऐसी संगति मे पडकर स्त्री का हृदय विषमय हो जाता है और एक बार मनुष्य के चरित्र से विश्वास उठ जाने पर, गलतफहमी बढ़ती जाती है तथा वह स्त्री अवगुणो, सदेहो और ईर्ष्या के जाल में फँस जाती तथा अत्यन्त दुःखदाई और निकम्मी हो जाती है। इसलिए इस तथा दूसरी बुराइयोसे बचने का सब से उत्तम उपाय हर समय काम मे लगे रहना और व्यर्थ बात-चीत से बचना ही है। जो स्त्री सदा प्रसन्न-मन काम-काज मे लगी रहती है, उसके मन मे एक तो ऐसी संदेह की बातें और बुरे विचार आते ही कम हैं और यदि कभी अपनी कमजोरी के कारण मन मे कुछ ऐसा खयाल आ भी जाता है, तो उसपर विचार करने का समय न मिलने से वह विचार आगे नहीं बढ़ता बल्कि उसी समय उसका अन्त हो जाता है। इतना ध्यान रखने पर भी दूसरी कोई सखी-सहेली यदि किसी समय, किसी स्त्री या पुरुष के विषय में, तुम्हारे सामने आलोचना आरंभ करे, तो तुम्हें उसी समय वह स्थान छोडकर चला जाना चाहिए, या उसे डॉट देना चाहिए। ऐसे मामलो मे चुप या उदासीन रहना भी अपने मन को कमज़ोर बनाना है।

जिस काम को करो उसमे तुम्हारा सच्चा उत्साह होना चाहिए। आरम्भ मे तो सभी को अपने काम में उत्साह हुआ करता है, किन्तु उत्साह को अन्त तक कायम रखना ही उसके गभीर और स्थिर होने का प्रमाण है।

फुटकर बातें

तीसरी बात यह है कि घर मे तुमसे—पद मे या अवस्था में—जो छोटे हों उन्हे स्नेह करो। बडों की सेवा करना तो तुम्हारा कर्तव्य है ही, लेकिन सच पूछो तो तुम्हारे स्नेह और सेवा की सच्ची आवश्यकता छोटो को है।

घर को हमेशा साफ-सुथरा रक्खो। हम जहॉ रहते है उसकी स्थिति और वातावरण का हमारे जीवन पर बहुत प्रभाव पडता है। स्वास्थ्य के लिए भी यह जरूरी हैं। साफ-सुथरी जगह बैठकर सीधा-सादा किन्तु स्वच्छ भोजन करने मे मन को भीतर से एक प्रकार की प्रसन्नता होती है। इसलिए घर को अपने जीवन के देवता का मन्दिर समझ कर शान्त, स्वच्छ और पवित्र रखना चाहिए।

ईर्ष्या-द्वेष दो ऐसी बुराइयॉ हैं जिन्होने अनेक घरो को चौपट कर दिया। घर मे बहुत-सी ऐसी बाते उठा करती हैं कि यदि समझ और सन्तोष से काम न लिया जाय तो सारे कुटुम्ब के नष्ट हो जाने का डर लगा रहता है। इसलिए अपने साथ अन्याय, अविचार और अत्याचार होने पर भी सन्तोष और धीरज से काम लेते रहना अच्छा है। इस बात का तुम सदा ध्यान रखना कि ईर्ष्या से बढ़कर मनुष्य के हृदय को अपवित्र करने और नीचे गिराने वाली दूसरी कोई चीज नही है। तुमको ईर्ष्या-द्वेष से मुक्त होना ही चाहिए, पर विवाह के बाद, ससुराल में यदि कोई तुमसे ईर्ष्या-द्वेष करे भी तो तुम्हे उसके साथ प्रेममय व्यवहार करना चाहिए।

ईर्ष्या द्वेष

मैं अपने एक भाई को जानता हूँ, जिनका एक कुटुम्ब से बड़ा घरौआ था। उसमे वह पुत्र के समान माने जाते थे और स्वय वह उस घर की मालकिन को माता समझकर अत्यन्त स्नेह करते थे। पीछे जब उनका विवाह हुआ और पत्नी घर आई तो उसे उनकी इस घनिष्ठता का ठीक तात्पर्य समझ में न आया; उसने किसी से कुछ पूछा भी नही, मन में ही बात रक्खे रही। उसका सन्देह बढ़ता गया, यहाँ तक कि उसका जीवन बहुत चिन्ताकुल और दुःखमय हो गया। पति महोदय भी उसके बदले हुए रग-ढङ्ग का अर्थ न समझ, दिन-दिन उसकी ओर से विरक्त और उदासीन होते गये। ऊब कर पत्नी खाने-पीने मे भी लापरवाही करने लगी। फल यह हुआ कि थोड़े ही दिनो मे दोनों बुरी तरह बीमार पड़ गये। इधर स्त्री रोती, उधर पति महोदय यह सोच कर दुखी होते और रोते कि मेरे साथ विवाह होने के बाद से ही यह दुखी और उदास रहती है, अतएव सम्भव है, इसकी इच्छा मुझसे शादी की न रही हो और इसकी किसी दूसरे से विवाह की इच्छा रही हो। पति महोदय इसी चोट से और इसी चिन्ता मे सूखने लगे। अन्त मे उन्हें क्षय हो गया और बचने की कोई उम्मीद न रही। तब एक दिन उन्होंने पत्नी को बुलाकर कहा कि 'देखो, तुम्हारा यदि पहले से ही किसी से स्नेह था तो उसमे मेरा क्या अपराध? विवाह के बाद मेरे प्रति तुम्हारी उदासीनता बढ़ती गई; अब मै अन्तिम समय में तुम्हे अपने बन्धन से मुक्त करता हूँ। मेरी मृत्यु के बाद तुम उस पुरुष से विवाह कर सकती हो, जिससे पहले ही होना चाहिए था।'

स्त्री यह सुनकर रो पड़ी और पति के चरणों में सिर रक्खे हुए उसने रोते-रोते अपने मन के सन्देह की सारी कहानी कह सुनाई। जब पति महोदय की जबानी उसे असली हालत मालूम हुई तो वह और दुखी हुई;

रात-दिन रोती और उस दूसरी स्त्री (जिसे उसके पति बहुत चाहते थे) से क्षमा माँगती, उनकी सेवा करती और पति के जल्द अच्छा हो जाने के लिए व्रत एवं उपवास करती। जब दोनों के दिल साफ़ हो गये तो पति महोदय के मन से चिन्ता का बोझ उतर गया और दो-तीन महीनों मे वह भले-चंगे हो गये। तब उन्होने एक दिन पत्नी को बुला कर पूछा—"क्यो, अब तुम समझ गई कि छोटी-सी भूल से घर चौपट हो सकता है? मैं तो मर ही चुका था। यदि तुमने जरा अक्ल से काम लिया होता और पहले ही मुझसे पूछ लेती तो इतना दुःख और कष्ट क्यो भोगना पड़ता, और अज्ञान में ही सही, तुम्हारे द्वारा एक पवित्र स्त्री के हृदय के साथ अन्याय क्यो होता?" पत्नी ने भरी हुई आँखों से जमीन की ओर देखते-देखते कहा—"बहुत कीमत देकर अब मैं समझ सकी हूँ। आगे ऐसी गलत-फ़हमी हम लोगो के बीच न होगी।"

इस घटना की ओर मैं तुम्हारा—तुम्हारा क्या प्रत्येक विवाह-योग्य और विवाहिता बहन का—ध्यान आकर्षित करता हूँ। यह कभी न ख़याल करो कि तुम्हारे पति का यदि किसी स्त्री मे स्नेह है, घनिष्ठता है, तो वह कलुषित ही है। स्त्री केवल पत्नी ही नही होती, वह कन्या भी होती है, बहन भी होती है और माता भी होती है। तुम्हीं किसी की कन्या हो, किसी की बहन हो, किसी की पत्नी होगी और आगे चलकर किसी की माता भी हो सकती हो। अब जिसकी तुम कन्या हो, वह भी तुम्हे स्नेह करता है और जिसकी माता होगी, उसका प्रेम और आदर भी तुम्हे प्राप्त होगा। इसी प्रकार जिस पुरुष से तुम्हारा विवाह होगा उसका स्नेह भी तुम प्राप्त कर सकती हो, पर स्नेह होते हुए, सबसे घनिष्ठता और अपनापन होते हुए भी, सब की दृष्टि मे, सब के भाव और व्यवहार में भेद होगा। इसलिए कोई स्त्री (जो तुम्हारे भाई को नही जानती)

तुमको भाई से एकान्त में बात-चीत करते या किसी स्नेह-सूचक शब्द से बुलाते देख-सुन ले और उसके मन में कलुषित भावनायें उदय हों, तो इसमे दोष उसके हृदय का ही है, जो झट यह सोच लेता है कि प्रत्येक स्त्री की घनिष्ठता हर हालत मे शारीरिक वासनाओं की ओर ही झुकी होती है। पहले तो किसी स्त्री के हृदय मे यह शङ्का, यो बात-बात में, उठनी हो नही चाहिए और कभी उठे भी तो उसे विचार करना चाहिए कि पति को छोड़ और किसी से शुद्ध और पवित्र भाव रखते हुए क्या उसकी घनिष्ठता नही है? उसे सोचना चाहिए कि जैसे मेरे मन मे यह भाव उदय होता है, वैसे ही कोई मुझे न जानने वाला यदि अपने भाई से ही इस तरह घुल-मिलकर बात करते देखे तो क्या ऐसी ही शंका न करेगा और उस हालत में वह मेरे साथ कितना अन्याय करेगा? इसलिए पहले तो अपने मन को इतना शुद्ध, पवित्र और विश्वासमूलक रखना चाहिए कि ऐसी शंका ही न उठे, क्योंकि इससे दूसरो की अपेक्षा अपना ही मन ज़्यादा ख़राब होता है, दूसरे यदि कभी कोई शङ्का उठे भी तो अपने मन को ऊपर लिखी बातों से समझा कर उस बात को चित्त से निकाल देना चाहिए। और यदि इतने पर भी शङ्का रह जाय तो नम्रतापूर्वक पति से कह देना चाहिए जिससे जो बात सच्ची हो वह ठीक-ठीक मालूम हो जाय।

: ७ :

विवाह के बाद—एक सप्ताह

अजमेर

चिं० भगवती, ७. ११. ३०.

आशा है, तुमने मेरे पिछले पत्रो मे लिखी बातों पर अच्छी तरह ध्यान दिया होगा। किन्तु एक बहुत जरूरी बात, जिसे पहले लिखना मै भूल गया, यह है कि सुखमय दाम्पत्य-जीवन मे विवाह के बाद के आठ-दस दिनो का महत्व बहुत अधिक है। उसे समझना और उसका उपयोग करना प्रत्येक वर-कन्या का कर्त्तव्य है।

विवाह और चाहे जो हो, जीवन मे एक विचित्र घटना है। कन्यादान के समय, जब वर-कन्या के हाथ एक मे जुड़ते हैं और ऊपर से जल की अविरल धारा गिरती है, तब जीवन मे एक नये भाव,

एक चिनगारी।

एक बहुत ही बड़ी जिम्मेदारी का अनुभव होता है। उतनी देर के लिए शरीर और हृदय में जो एक विचित्र कम्पन होता है, दो से एक और एक से दो हो जाने का एक नया भाव पैदा होता है, वह अपूर्व है। वह बात, वह भाव, जीवन मे सिर्फ एक बार, बहुत थोडी देर के लिए आता है। जीवन मे फिर कभी उस विचित्रता का, उस पुलक का अनुभव नहीं होता। यह आत्म-समर्पण की प्रेरणा है।

उस समय के बाद से, दो-तीन दिनो और ज़्यादा से ज़्यादा एक सप्ताह के अन्दर पति-पत्नी का एक-दूसरे के हृदय पर जो प्रभाव पड़ता है वह, बहुत करके, बहुत दिनो तक बना रहता है। यह स्वाभाविक है कि जिसे हम अपने जीवन का साथी चुनते हैं उसके बारे मे शुरू में जो भाव

उदय होते हैं, जो कल्पनायें उठती हैं, उन्हीं पर भविष्य में एक दूसरे के प्रति प्रेम, श्रद्धा और विश्वास की नींव पड़ती है। इसलिए विवाह के बाद पहली बार जब पति-पत्नी एक-दूसरे को देखते हैं तो उस प्रथम-दर्शन मे दोनों के हृदय में एक-दूसरे के प्रति जो भाव जाग्रत होते हैं, उसीसे जीवन के भावी सुख-दुःख का बहुत-कुछ फ़ैसला हो जाता है। आगे चलकर तो एक-दूसरे के प्रति स्नेहभाव मे घटती-बढ़ती-भर हो सकती है, पर उस प्रेम के आरम्भ का अवसर यही होता है, जिसका प्रभाव जन्म-भर बना रहता है।

वर-वधू को—विशेषतः बहनों को—अच्छी तरह जानना चाहिए कि विवाह के दिन, जब पहली बार दोनों एक-दूसरे को देखते हैं, तब उस

शुभ दृष्टि

दृष्टि मे, और बाद के कुछ दिनो मे (जो पति-गृह मे व्यतीत होते है) जो भाव-कुभाव एक-दूसरे के बारे मे उत्पन्न होता है, उसपर दोनों के भावी जीवन का सुख-दुःख बहुत दूर तक निर्भर करता है। इसलिए इस समय दोनों के प्रत्येक भाव, शब्द और कार्य में एक-दूसरे के प्रति ममता, श्रद्धा, और आकर्षण होना चाहिए। स्त्री में स्वाभाविक लज्जा और सकोच के साथ पति के प्रति अनुराग, उसकी बातों, भावों और विचारो को समझने की उत्कण्ठा और उसकी बातों का मधुर वाणी में जवाब देने की थोड़ी-बहुत तैयारी होनी चाहिए।

पति-गृह मे जाने पर आरम्भ के दिनो में बहू पर बहुत बडी जिम्मेदारी रहती है। पति की माँ-बहनें, भावजे इत्यादि तथा नाते-रिश्ते की कितनी ही स्त्रियों से उसे काम पड़ता है। सभी उसके बारे मे अपनी सम्मति स्थिर

अनेक रूपों में

करतीं और अपने मन के भाव प्रकट करती हैं। कोई उससे कुछ आशा करती है, कोई कुछ। कोई बहू के मुखड़े की सुन्दरता देखने के लिए उत्सुक रहती हैं, कोई उसे स्वस्थ और

परिश्रमी देखना चाहती हैं, कोई उसे चतुर एवं पढ़ी-लिखी चाहती हैं; तो कोई नम्र, सुशील और सेवापरायण। एक बहन उसे सीने-पिरोने मे चतुर और बेल-बूटे एवं कसीदा काढ़ने वाली अच्छी भाभी के रूप में पाने के लिए उत्सुक है, तो एक सहेली उसे अपने सुख-दुःख का सच्चा साथी बनाना चाहती है। सास चाहती है कि मेरी बहू परिश्रमी हो, प्रेम रखती हो, मुझे घर का काम-काज करती देख बैठी न रह सके और मेरे 'ना-ना' कहते रहने पर भी आग्रह और स्नेहपूर्वक वह काम कर डाले। पति और ससुर की भी यह इच्छा है कि बहू भोजन बनाने में चतुर हो; एक पाव घी मे वह चीज बनावे जिसमे एक सेर घी का स्वाद आवे।

कुछ व्यावहारिक बातें

इस प्रकार विवाह के बाद पति-गृह मे आने पर, अपनी-अपनी इच्छा और आदर्श के अनुसार, भिन्न-भिन्न व्यक्ति बहू से भिन्न-भिन्न प्रकार की आशाये रखते हैं। ये आशाये इतनी अधिक और इतने अधिक प्रकार की होती हैं कि दुनिया मे अच्छी से अच्छी और ऊँचे आदर्श वाली कोई एक ही स्त्री उनको पूरा नहीं कर सकती क्योंकि कई बार तो वे स्वयं ही एक दूसरे की विरोधी होती हैं। किन्तु इन बातों से नवागता बहू को जरा भी घबड़ाना न चाहिए। यह उसकी परीक्षा का समय होता है। इस समय ससुराल वाले अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार उसका मूल्य ऑकते हैं। इस समय लड़की ससुराल मे अकेली होती है; कोई उसको समझने वाला, कोई उसका सहायक नही होता। इस अपरिचित कुटुम्ब और समाज मे उसे स्वयं ही अपना परिचय देना पड़ता, अपना हृदय दूसरो को समझाना पड़ता है। इसलिए इस अकेलेपन से, इस बोझ से लड़की को घबड़ा कर बैठ न जाना चाहिए और न किसी प्रकार की निराशा, थकावट एवं उदासी प्रकट करनी चाहिए। उसे एक ओर ईश्वर और दूसरी ओर पति मे श्रद्धा और विश्वास

रखकर प्रसन्नता-पूर्वक अपनी ज़िम्मेदारी को निवाहने मे लग जाना चाहिए। उसे बराबर के पद और अवस्था वाली सहेलियों एव ननदों से मधुरतापूर्वक स्नेह के साथ बोलना चाहिए; बड़े पद या अवस्था-वाली जेठानियो तथा अन्य स्त्रियों के प्रति आदर रखते हुए उनकी सेवा करना और उनके काम मे हाथ बटाना चाहिए। बच्चों को गोद में लेकर उन्हे स्नेह करने, पास बुलाकर उनसे प्रेम-पूर्वक बात-चीत करने एवं उनसे मीठी और अच्छी शिक्षा देनेवाली बातें करने से वे बहुत जल्द वश मे हो जाते और प्रेम करने लगते हैं क्योंकि उनका निर्दोष, सरल और निष्कपट हृदय तर्क एवं बुद्धि के जाल मे नहीं फँसा होता, वे जहाँ प्रेम देखते हैं वहीं रीझ जाते हैं।

इसी प्रकार सास-ससुर की सेवा में नम्रता, मधुरता और आदर का भाव होना चाहिए। उनके सामने यथासम्भव कम बोलना—व्यर्थ की बातें नहीं करनी चाहिए। बहू के हृदय में सास-ससुर के प्रति वही भाव होना चाहिए जो माता-पिता के प्रति होता है। वे अगर दो कड़ी बात भी कहदें तो सुन लेना चाहिए और जवाब नहीं देना चाहिए, न उन बातो के कारण उनके प्रति भाव या व्यवहार मे अन्तर ही पड़ना चाहिए।

ससुराल का कार्यक्षेत्र एक ही समय में कई प्रकार का होता है। आरम्भ में उन सब पर ध्यान देने से अच्छा रहता है। कही जूठे बर्तन

सेवामय जीवन

इधर-उधर पड़े हों, तुमको दूसरे की राह न देखकर खुद उन्हें माँजकर एक जगह, नियत स्थान पर, सजाकर रख देना चाहिए। कही गन्दगी देखो तो झट उसे साफ कर देना चाहिए। बैठने-उठने, खाने-पीने के स्थान को खूब साफ-सुथरा रखना चाहिए। घर का साधारण काम-काज कर चुकने पर भी, आवश्यकता पड़े तो, सास एवं जेठानियो के पाँव दबाने एवं मीठी-मीठी बातों से उन्हे सन्तुष्ट रखने को अपना एक खास काम समझना चाहिए।

सबसे मधुरतापूर्वक बोलो और सबसे सरलता एव सच्चाई की बाते करो। ऐसा नहीं कि ससुराल मे एक स्त्री से तुम कुछ कहो और दूसरी से कुछ। प्रायः ऐसा होता है कि सबको खुश रखने के खयाल से कोई स्त्री जब एक से बात करती है तो दूसरी की बुराई करती है और दूसरी से बात करती है तो पहली की बुराई करती है। यह बड़ा खराब, नीचे गिराने वाला और खतरनाक ढग है। इससे सदा बचो। किसी की बुराई न तो दिल में सोचो और न दूसरे से करो। कोई करे भी तो उसपर ध्यान मत दो।

चाहे तुम काम-काज से कितनी ही थकी होओ किन्तु तुमसे कोई काम करने को कहा जाय तो बिना अपनी थकावट और आलस्य प्रकट किये, बिना उलाहना दिये या मन मे बुरा भाव लाये, प्रसन्नतापूर्वक उठकर वह काम करना चाहिए। सदा यह खयाल रक्खो कि तुम्हारे इस कष्ट-सहन और परिश्रम का फल तुम्हारे और तुम्हारे पति के लिए, तुम दोनों के भावी जीवन के लिए, मीठा होगा। इतनी सेवा और कष्ट-सहिष्णुता के बाद यदि दो-चार दिन के लिए भी तुम ससुराल से कही चली जाओगी तो लोग तुम्हारा अभाव अनुभव करेंगे।

दूसरी बात यह कि इतना करते हुए अपने मन मे किसी प्रकार का अहंकार नहीं आना चाहिए। अपनी विद्या, अपनी सेवा, अपने परिश्रम पर कभी गर्व मत करो, बल्कि कोई बात कहते या कोई काम करते समय नम्रता की मूर्ति बनी रहो; हॉ, उस नम्रता में बनावट न हो, सच्चाई हो।

बहुत-सी लडकियॉ अपने को एकाएक ससुराल के अपरिचित समाज के बीच देख घबड़ा जाती हैं। यह स्वाभाविक है, किन्तु यह खयाल करके कि अब हमको यहॉ, इन्हीं लोगो के साथ रहना है, इन्ही लोगो के सुख-दुःख पर मेरा सुख-दुःख निर्भर है, अपनी निराशा और

उदासी दूर कर देनी चाहिए और अपने काम मे लग जाना चाहिए। धीरज और शान्ति से सब काम ठीक हो जायँगे।

विवाह के बाद ससुराल जाने पर, आरम्भ मे—और यों तो सदा ही—इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि हमारे बोलने-चालने, बैठने-उठने में असभ्यता न टपकती हो। बडो, छोटो और बराबर वालों से कैसे बोलना कैसा व्यवहार करना, यह ऊपर मैं बता चुका हूँ। लड़की किस तरह उठती-बैठती है, इसका भी बहुत जगह बड़ा खयाल रक्खा जाता है। यह सब लड़की की अपनी बुद्धि पर निर्भर करता है कि वह अपनी मधुर वाणी, अपने सुविचार, अपनी नम्रता और अपनी सेवा एव व्यवहार से सब के मन पर अपना अधिकार जमाले। किसका स्वभाव कैसा है, किससे किस तरह का व्यवहार करने से कुटुम्ब की शान्ति बढ़ेगी और सबका जीवन सुखी होगा, इसे सोच-समझ-कर उससे उसी तरह का—पर हर अवस्था मे मीठा—व्यवहार करना चाहिए। थोड़े मे मैं इतना ही कह सकता हूँ कि तुम्हारे प्रत्येक शब्द, प्रत्येक व्यवहार से यह बात टपकनी चाहिए कि तुम एक भले घर की बेटी हो; अच्छी सगत मे रही हो और तुम्हारा हृदय उदार, स्वच्छ और निर्मल है।

भले घर की बेटी

लेकिन अपने को परिचित करने और दूसरो पर अपना प्रभाव डालने मे जल्दबाजी मत करो। तुमको यह आशा नही करनी चाहिए कि छः-सात दिन के अन्दर ससुराल वाले तुम्हें उतनी अच्छी तरह समझ जायँगे जितनी अच्छी तरह जन्म देने वाले माता-पिता और जन्म से तुम्हे जानने और देखने वाले भाई-बहन समझते है। यदि ऐसी आशा करोगी तो धोखा खाओगी। जो स्नेह एकाएक—बहुत जल्द बढ़ जाता है, उसकी नींव बहुत कमजोर होती है और जरा-सी गलती होते ही, एक

धक्के मे, टूट जाती है। भगवान् मे; पति मे, अपने हृदय की पवित्रता मे, विश्वास रखकर धीरे-धीरे सबको समझना और अपने को सबके हृदय तक पहुँचाना चाहिए। यह याद रक्खो कि मनुष्य-चरित्र बड़ा गूढ़ है। बहुत से आदमी ऊपर से अच्छे मालूम होते हैं, पर अन्दर से नीच होते हैं इसी प्रकार बहुत-से आदमी भीतर से अच्छे होते हैं, पर ऊपर से बडे रूखे लगते है। इसलिए किसी के बारे मे झट अपनी राय मत कायम करो। अच्छी तरह सोच-समझकर, भली भाँति परखकर ही किसी के सम्बन्ध मे निश्चित राय कायम करो, साथ ही अपनी भूल मालूम हो जाने पर, अपनी राय बदलने के लिए भी सदा तैयार रहो। दुनिया मे आदमी को ठीक-ठीक समझ लेना एक अत्यन्त कठिन काम है। कभी तो जहाँ हमे विश्वास करना चाहिए वहाँ हम अविश्वास करके दूसरो के साथ अन्याय करते हैं और कभी जहाँ सावधानी रखनी चाहिए वहाँ बहुत अधिक विश्वास करके परिस्थिति जटिल कर देते है। इसलिए इस विषय मे धीरज, उदारता और विवेक से काम लेना चाहिए।

इतनी बातो के साथ मुख्य बात तो यह है कि पति के हृदय को विवाह के बाद के दिनो मे तुम अच्छी तरह समझ लो। उन पर विश्वास करके, उनसे सलाह लेकर काम करने से दोनो में एक दूसरे के प्रति प्रीति बढ़ेगी।

: ८ :

प्रेम बनाम अधिकार

अजमेर

प्रिय भगवती, १२. ११ ३०

आजकल स्त्रियों की शिक्षा और स्वाधीनता की समस्या लेकर अधिकार का नया झगडा उठ खड़ा हुआ है। कहा जाता है कि स्त्रियाँ पुरुषो की गुलाम नहीं हैं; उन्हे भी संसार मे पुरुषों के समान अधिकार क्यो न दिये जायँ? जब मैं किसी भारतीय नारी के मुँह से यह बात सुनता हूँ तो मुझे उस पर तरस आती है। यूरोपीय सभ्यता की चमक-दमक नया रंग दिखा रही है। लेक्चर देने, सहभोज में पुरुषो की तरह, मेहमान के स्वास्थ्य के नाम पर, शराब के प्याले खाली करने, व्यापार करने और दुकान खोलने तथा जैसे पति रोज बाहर जाते समय साधारणतः स्त्री से नहीं पूछता वैसे ही दिन भर, पति से पूछे बिना, मित्रो के यहाँ घूमने को स्वतन्त्रता कहकर स्त्रियो को भड़काया जा रहा है। इसके साथ कौसिलो और म्युनिसिपैलिटियो में जाने, बैठने और अखबारों मे फोटो छपाने का शौक भी स्वतंत्रता मे दाखिल है। पुरुषों को इन बातो का अधिकार है; वे इस विषय मे स्वतंत्र है, फिर स्त्रियो ने क्या अपराध किया है, थोड़े मे यही तर्क का साराश है।

मै नहीं कहता कि इनमे से मद्यपान की लत के अलावा एक बात भी बुरी है, मै इनको बुरा नही कहता, इनकी बुराई नही करता पर मैं अपने हृदय के अन्दर की सारी शक्ति एकत्र करके, जोरो के साथ, यह कहना चाहता हूँ कि जिस ढग पर, जिस प्रकार, यह सब हो रहा है,

वह अवश्य बुरा है। हमारे लिए इसका फल कभी अच्छा न होगा। स्त्रियो को पुरुषो के बराबर ही अधिकार मिले, इसका मै विरोधी नहीं। विरोधी क्यो, यदि पुरुषो के सारे अधिकार भी स्त्रियो को दे दिये जाँय तो मुझे कुछ बुरा न मालूम होगा। मैं अधिकार देने का विरोधी नहीं पर अधिकार के इस झगड़े के पीछे जो प्रवृत्ति, जो इच्छा काम कर रही है, उसका मैं विरोधी हूँ।

वे और ये।

मैं उच्चशिक्षा-प्राप्त और ऊँचे कुलो की अनेक लड़कियों को जानता हूँ, मैंने स्त्रियों को बहुत अधिक स्वतन्त्र रूप मे भी देखा है और सन्देहशील सास तथा बडी-बूढियो के पहरे के अन्दर भी देखा है। सभाओ मे खड़ी होकर देश और समाज की व्यवस्था पर लेक्चर देने और हमारी 'गँवार एवं अज्ञान' बहनो की दुर्दशा पर आँसू बहाने वाली स्त्रियो से भी मेरा परिचय है और अपने देवरो से परदा करने वाली ऐसी स्त्रियो को भी जानता हूँ जिनके लिए 'काले अक्षर भैंस बराबर' हैं पर अच्छी तरह नाप-तौल कर और कसौटी पर कसकर मैं यही जान पाया हूँ कि इन उपदेश देने और 'उद्धार' करने वाली स्त्रियो से गाँव की सीधी-सादी, भोली और अज्ञान स्त्रियाँ स्त्रीत्व के आदर्श के कहीं अधिक निकट है। इन दोनो मे कौन अच्छी है, कौन बुरी इसकी बहस मे पड़ना व्यर्थ है। इसका निर्णय नही हो सकता। पर हाँ जो लोग चरित्र को, सदाचार को, हृदय की निर्मलता को, शरीर, बुद्धि और तर्क से अधिक कीमती समझते हैं उनमे से बहुतो को स्त्रियों के वर्तमान आन्दोलन की दिशा देख कर मैंने आशंका और असन्तोष प्रकट करते देखा है।

जो बहनें यूरोप के स्वतन्त्र और उच्छृङ्खल गृहजीवन को देखकर, उसकी चमक-दमक और आकर्षण मे, बिना विचारे, बही जा रही हैं

हिन्दू संस्कृति में विवाह का आदर्श

और इसीमे स्त्रियो की स्वतन्त्रता देखती है वे निश्चय ही प्रेम और विवाहित जीवन के हमारे ऊँचे आदर्शों को भूल गई है। यूरोप मे विवाहित जीवन विषय-भोग तथा घरेलू जीवन की सुविधाओ के लिए समाज-द्वारा स्वीकृत एक ठेके, एक समझौते के समान है और हमारे यहॉ धर्म के बन्धन मे दो प्राणियों के मिल कर एक हो जाने की अवस्था का नाम है। यूरोप मे विवाह के बाद भी स्त्री-पुरुष ज्यो के त्यो अलग बने रहते है; समाज केवल उनके सहवास—एक स्थान मे रहने, सोने और शारीरिक सम्बन्ध—का औचित्य स्वीकार कर लेता है। मै मानता हूँ कि इस समय बहुत अशो मे हमारे यहॉ भी अवस्था यही है। फिर भी आदर्श की भिन्नता के कारण सतीत्व का जितना ऊँचा भाव हमारे यहॉ है उतना और कही नही है। 'पतिव्रत' के लिए अंग्रेजी या यूरोपीय भाषाओं मे कोई शब्द ही नही है। हमारे यहॉ किसी लड़की की शारीरिक पवित्रता का नष्ट हो जाना इसलिए पाप नहीं है कि वह एक बार गिर जाने पर फिर ऊँचा उठ नहीं सकती या उसमे कोई खास खराबी आ जाती है; यह तो इस-लिए है कि विवाहित जीवन का—एक ही पति के अस्तित्व मे अपने को भुला देने, दोनो के मिलकर बिल्कुल एक हो जाने का—हमारा जो आदर्श है उससे हम इस मे बहुत दूर हट जाते हैं। यूरोप मे एक दूसरे की सहायता से अपने व्यक्तित्व का विकास करना विवाह का आदर्श है; हमारे यहाँ एक-दूसरे के जीवन में मिलकर अपने अस्तित्व को खो देना—एक हो जाना विवाह का आदर्श है। प्रेम की दृष्टि से, सुख के लिए दोनों में कौन आदर्श बड़ा है, इसे प्रत्येक आदमी सहज ही समझ सकता है।

आजकल 'अधिकार-अधिकार' की जो आवाज उठाई जा रही है

उसकी जड़ में एक तरह की बदले की भावना है। पुरुष ऐसा करते है तो स्त्रियाँ क्यों न करे ? पुरुष दूसरा तीसरा, मनमाने विवाह कर सकता है तो पति के मर जाने पर भी स्त्री क्यों व्याह न करे; वह क्यो आजन्म विधवा बनी बैठी रहे। पुरुष कौंसिलो मे जाते है तो स्त्रियाँ क्यो नही जा सकती। पुरुष मित्रो के साथ घूमते, अकेले नाटक और सिनेमा देखने जाते, अन्य शिक्षित स्त्रियो से मिलते-जुलते और हँस-हँसकर बात-चीत करते है तो स्त्रियो को ही क्यो पति-व्रत का उपदेश किया जाय ? आजकल स्त्रियो का जो आन्दोलन चल रहा है, उसमे यही तर्क, यही बात बार-बार लाई जाती है। मै यह मानता हूँ कि ये तर्क भद्दे और निस्सार हैं; इनसे पुरुषो का मुँह बन्द किया जा सकता है पर स्त्रियो को सच्चा सुख कभी प्राप्त नही हो सकता। मै मानता हूँ कि पुरुषो को कुछ कहने का अधिकार नही रह गया है, उनसे स्त्रियाँ ज्यादा वफादार, सहन-शील और त्यागी है पर मैं यह पूछता हूँ कि क्या इस तर्क से और इस तर्क के अनुसार चलने से स्त्रियाँ ज़्यादा सुखी होगी ? मैं भारतीय स्त्री-आन्दोलन के प्रत्येक नेता से यह कहता हूँ कि इस प्रश्न का उत्तर देने के पहले आँख मूँदकर दो मिनट सोचो और जवाब दो कि क्या इससे, इस तर्क के अनुसार, पुरुषो के समान स्वतंत्रता पाकर, उनके समान ही दूसरा-तीसरा व्याह करने, कौंसिलो मे जाने और घूमने-फिरने की सुविधाये मिल जाने के बाद वे सन्तुष्ट और सुखी हो जायँगी ? यह एक गम्भीर प्रश्न है जो पुरुष होते हुए भी मैं धारा मे बहे जाते हुए प्रत्येक बहन-भाई से पूछता हूँ।

बदले की यह भावना !

तुम यह मत समझना—एक मिनट के लिए भी ऐसा सोचना मेरे जीवन की गति के साथ बहुत बड़ा अन्याय होगा—कि मैं स्त्रियो के

सदुपयोग और दुरुपयोग

अधिकार दिये जाने का विरोधी हूँ। नही, उलटे मै सदा से इसका व्यक्तिगत और सार्वजनिक दोनों प्रकार से समर्थन करता रहा हूँ पर आन्दोलन की तह में पैठ कर, इसकी कई प्रधान स्त्रियो से मिलकर, उनका अट्टहास, उनका तर्क, उनकी अस्थिर-चित्तता देखकर मुझे आश्चर्य होता है। तलवार बुरी चीज़ नही; उससे किसी दुखिया की रक्षा भी की जा सकती है और एक निर्दोष निर्बल आदमी की हत्या भी की जा सकती है। उसकी बुराई-भलाई उपयोग करने वाले की चित्तवृत्ति और मानसिक अवस्था पर निर्भर है। अधिकार कोई बुरी चीज नही, पर अधिकार की मॉग के पीछे जो बदले की, होड़ की, ईर्ष्या की भावना बोल रही है उसने इस आन्दोलन की सात्विकता, पवित्रता नष्ट करदी है और इसे मोल-तोल एवं दूकानदारी की चीज बनादी है। जहॉ अधिकार के पीछे यह तर्क हो, यह भाव हो कि हम उसे लेकर सेवा के, कर्तव्य-पालन के लिए अधिक योग्य बने; अपने मार्ग पर अधिक दृढता और सच्चाई से आगे बढ सकें वहॉ अधिकार मिल जाने पर मनुष्यता की वृद्धि होती है; वहॉ तलवार का सदुपयोग होता है, उससे सेवा मे, आत्म-बलिदान मे, परोपकार मे काम लेते हैं। जहॉ अधिकार के पीछे यह तर्क, यह भाव हो कि हमारे समाज का एक दल उसे भोग रहा है तो हम भी क्यो न भोगे, वहॉ हृदय में सात्विक प्रेरणा की जगह प्रतिद्वन्द्विता की, प्रतिक्रिया और होड की, ईर्ष्या-द्वेष की दौड़ चलती है। ऐसी जगह अधिकार मिल जाने पर हम उसका दुरुपयोग करते है; दूसरे दल को गिराकर, दबाकर उससे आगे बढ़ जाने की कोशिश करते है। यह तलवार द्वारा हत्या करने के समान है। ऐसी जगह विवेक—भले-बुरे का भाव—नष्ट हो जाता है; केवल यह भाव रह जाता है कि दूसरे दल से आगे कैसे बढ़ा

जाय ? ऐसे समय यह बात भूल जाती है कि हम अच्छी बात के लिए होड़ कर रहे है या बुरी के लिए। मुझे दुःख है कि वर्तमान स्त्री-आन्दोलन में सुधार और आत्म-संयम, विश्वास और आदर्श की अपेक्षा बदले और होड़, अविश्वास और दुनियादारी की भावना अधिक है।

पुरुष के नाते नहीं।

मै ये बाते न कहता; मै जानता हूँ कि जो कुछ मैने कहा है उसे कहना बड़े साहस का काम है और आजकल के फैशन एवं समाज-सेवक की 'पालिसी' (नीति) के विरुद्ध है। मै जानता हूँ कि ये बाते विरोध का तूफान उठाने वाली हैं पर मै निन्दा और अपयश के लिए सिर झुकाकर भी ये बाते अधिक-से-अधिक जोर के साथ इसलिए कहना चाहता हूँ कि मै स्त्रियों की, बहनों की सदाशयता का, उनके भोलेपन और उनकी वफादारी का भक्त हूँ; मै इसलिए भी कहता हूँ कि मेरा हृदय मेरे दिमाग से अधिक शक्तिमान है और जिसका हृदय उसके दिमाग पर विजय पाने की शक्ति रखता है वह सदा स्त्री को पुरुष से अधिक समझ सकता और अधिक स्नेह कर सकता है। मैं आज यह बात इसलिए नहीं कह रहा हूँ कि मैं पुरुष हूँ; यदि पुरुष की शुष्कता और झंझट टालने की प्रवृत्ति मुझमे होती; यदि मै तार्किक होता तो ये पक्तियॉ लिखने का साहस कभी नहीं कर सकता। मैं ये बाते इसलिए कहता हूँ कि मुझे स्त्रियो का हितैषी होने का अभिमान है; मैं पुरुष को नीचे गिरते तो देख भी सकता हूँ पर स्त्री को स्त्रीत्व छोड़कर गिरते देख ऐसा मालूम होता है कि हमारी धरोहर का बचा-खुचा हिस्सा भी जलकर राख हुआ जाता है—जैसे नींव खिसक रही है !

मैं बिना किसी हिचकिचाहट के मान लेता हूँ कि समाज की नींव में घुन लग रहा है। उसका संग्रथन, उसका शीराजा बिखर गया है।

स्त्री श्रेष्ठतर जीव है ।

मै मानता हूँ और पहले भी लिख चुका हूँ कि पुरुष अत्यन्त दंभी, लोलुप और वढ़-वढ़कर डींग मारनेवाला हो गया है; वह निजी जीवन के सदाचार से गिर गया है; झूठी बड़ाई, झूठी शक्ति, समाज के अन्दर झूठी इज्जत के लिए वह नीचे से नीचा काम करने को तैयार हो जाता है; स्त्रियो के प्रति वफादारी और सचाई का व्यवहार करना वह भूल गया है। स्त्री उसके लिए मन-बहलाव की, वासना-तृप्ति की चीज हो गई है। पर इसका यह मतलब नही कि स्त्री त्याग और वफ़ादारी के ऊँचे आदर्श से ऊबकर गिर जाय और पुरुषों की तरह अपने को पतन की खाई मे गिरा दे। विवेक यह है कि लोगो को ऊँचा उठते देखकर हम ऊपर उठे और किसी को नीचे गिरा देख हम उस रास्ते से बचे जिस पर चलने के कारण उसका पतन हुआ, न कि उसकी तरह हम भी नीचे गिर जायँ। स्त्री पुरुष की माता है; उसके गर्भ से जन्म लेकर, उसका दूध पीकर पुरुष वढ़ता है। इसलिए हर हालत मे स्त्री का दर्जा पुरुष से श्रेष्ठ है। वह ज़्यादा ऊँची चीज है इसलिए उसे जीवन मे सदा ही ज़्यादा त्याग करना पड़ेगा। एक पैसे के खो जाने से उतना ही दुःख नही होता जितना एक रुपया खो जाने से होता है। व्यवहार की दृष्टि से भी देखे तो एक पुरुष के नष्ट हो जाने से समाज की उतनी हानि नहीं होती जितनी एक स्त्री के नीचे गिर जाने से होती है।

फिर जो बहनें यह समझ रही हैं कि यूरोप की स्त्रियाँ आज भारतीय स्त्रियो से अधिक सुखी और स्वतंत्र हैं वे भूलती हैं। भारतीय नारी

वहाँ के हाल-चाल !

अपनी पश्चिमी बहन से कम सुखी नही है। यूरोप में, विशेषतः नगरो में, गृह-जीवन तो नाम-मात्र को रह गया है। होटल मे कमरे किराये पर ले लिये जाते हैं; खाना आ

जाता है। पुरुष अपनी मनोविनोद की सभाओ (क्लबो) में जाते हैं; स्त्रियॉ अपनी में। कुछ क्लब ऐसे भी हैं जिनमें स्त्री-पुरुष दोनों जाते हैं। पति यदि एक ऐसे क्लब में जाता है तो स्त्री दूसरे मे। शारीरिक पवित्रता और सतीत्व के आदर्श को छोड़कर देखें तो भी ऐसा जीवन पति-पत्नी के परस्पर प्रेम और सन्तान के उचित विकास मे दूर तक सहायक नहीं हो सकता। हमारे यहॉ पत्नी माता है, पत्नी सखा है; पत्नी गृहणी है पर यूरोप मे, सभ्य घरानों में, पत्नी केवल प्रेमिका है। यह अवस्था ऊँचे, सभ्य, धनी और शिक्षित घरानो की ही अधिक है। गॉवों के सीधे-सादे किसान अब भी, यूरोप में भी, अधिक प्रेमपूर्ण कौटुम्बिक जीवन बिताते है। प्रेमिका के रूप में पत्नी को देखने का अर्थ यह होता है कि पुरुष और स्त्री दोनों को माता, मित्र और गृहणी के रूप में अन्य स्त्री-पुरुषो की आवश्यकता बनी रहती है और फिर स्त्री सदा ही प्रेमिका-रूप में भी प्राप्त नही होती; फल यह होता है कि शारीरिक आकर्षण नष्ट होते ही या उसमे कमी आते ही पत्नी की ओर से पति और पति की ओर से पत्नी की उदासीनता बढती जाती है और वे एक-दूसरे से पहले हृदय की, और फिर व्यवहार की दुनिया मे दूर हटते जाते है। वहॉ स्त्रियो को सब प्रकार के अधिकार तो मिले हुए है; वे मित्रो के साथ अलग घूम सकती हैं; वे घर पर जिसे चाहे बुला सकती है; वे पति को परिचय दिये बिना अपने स्त्री-पुरुष मित्रों से पत्र-व्यवहार कर सकती हैं; वे तलाक देकर दूसरा, तीसरा विवाह भी कर सकती हैं पर इन बातों का नतीजा यह हुआ कि पुरुष और स्त्री, पति और पत्नी दोनो असन्तुष्ट, अतृप्त-से, छटपटाते हुए, अपना-अपना विकल हृदय लिये, इधर-उधर घूम रहे हैं। उन्हे शान्ति नहीं मिलती है। पुरुष-स्त्री का विरोध इतना बढ गया है कि स्त्रियॉ पुरुषों को दोष देती हैं, गालियाँ देती हैं और

पुरुष स्त्रियों की हँसी उड़ाते है। स्त्रियाँ पुरुषो के विरोध मे सभाये कायम कर रही है और पुरुष स्त्री-बहिष्कार-मण्डली की स्थापना कर रहे हैं। इस कटुता मे सब अधिकार लेकर भी दोनो असन्तुष्ट हैं, दोनो अपनी-अपनी किस्मत को रो रहे है। हफ्तो बीत जाते हैं पति को पत्नी का और पत्नी को पति का पता नही चलता। अधिकार का प्रश्न इतना बढ़ गया कि दोनो के हृदय के बीच प्रेम का स्थान भी उसी ने ले लिया। जहाँ पति-पत्नी मे प्रेम नहीं है, जहाँ अपने सुख की जगह दूसरे के सुख का भाव अधिक नहीं है वहाँ सुख क्या मिल सकता है? पति बीमार पड़ता है तो पत्नी दाइयो और डाक्टरो को बुला देती है और रोज दो-चार बार बीमारी का हाल पूछकर अपने कर्तव्य की समाप्ति समझ लेती है। जो भारतीय स्त्रियाँ पश्चिम के इस अन्धा करने वाले चकाचौंध के प्रवाह में बह नही गई है वे ऐसी अवस्था मे रात-दिन पति का साथ नहीं छोड़तीं; हजार नौकर रहने पर भी प्रत्येक काम अपने हाथ से किये बिना चैन नही पड़ता। बीमारी बढ़ जाने पर उनके मन मे यही आता है कि इनके बदले यह बीमारी मुझे हो जाय। इन दोनों प्रकार के मनोभावों में कितना अन्तर है! और इसका गृह-जीवन की सुख-वृद्धि मे कितना प्रभाव पड सकता है।

अधिकार एक जड़ वस्तु है। अधिकार के द्वारा धन मिल सकता है· अधिकार के द्वारा यश मिल सकता है; अधिकार से अच्छा मकान,

क्या अधिकार से प्यास बुझेगी?

अच्छी मोटर मिल सकती है पर अधिकार के द्वारा हृदय वश मे नही किया जा सकता; मनुष्य का हृदय जड़ वस्तुओ से तृप्त नहीं हो सकता; वह मशीन नहीं है। सुख के लिए हृदय मे प्रेम और शान्ति चाहिए। प्रेम और शान्ति होने पर जड वस्तुओ की सुविधा से सुख की मात्रा बढ सकती

है पर केवल इन्हीं वस्तुओ को लेकर सुख की खोज करना मूर्खता है। सुख हृदय की शान्ति और सन्तोष की एक अवस्था है। यह अवस्था धन और यश से प्राप्त नहीं होती; उलटे बहुधा नष्ट हो जाती है। इसलिए जो बहने सुख मे विवाहित जीवन बिताना चाहती है उनके ही हित और स्वार्थ के खयाल से यह जरूरी है कि वे इन बातों को अच्छी तरह समझ ले। यदि वे रोटी-पानी की, दुनिया की सुविधाये चाहती हैं और इसीमे सुख समझती हैं तब तो अधिकार के झगड़े मे वे खुशी से पड़े किन्तु वे हृदय का सुख, शान्ति और प्रेम चाहती हैं तो इस मृगतृष्णा के चक्कर मे न पड़े; यहाँ—इस अधिकार से—उनकी प्यास नहीं बुझ सकती।

इटली की प्रसिद्ध महिला श्रीमती जिना लोम्ब्रोसो फरेरा ने इस सम्बन्ध मे एक बार ऊबकर यही बात लिखी थी। वे, नीचे गिराने वाली मनोवृत्तियो (अपराध-विज्ञान) की यूरोप मे एक प्रसिद्ध जानकार मानी जाती है। उन्होने अधिकार-प्राप्त स्त्रियों के सम्बन्ध मे लिखा था—

"·········परन्तु इन विजयों से क्या स्त्रियों के सुख में कुछ वृद्धि हुई? जब मुझसे यह सवाल किया जाता है तो मैं यही जवाब देती हूँ कि मुझे तो इसमें सन्देह है। मेरे विचार से प्रेम ही स्त्रियों की निश्चित और कभी न बदलने वाली आकाक्षा है। प्रेम उनके स्वर्ग का चमकता हुआ सूर्य है पर शारीरिक आकर्षण के रूप में वाहियात और वासनापूर्ण प्रेम नहीं, बल्कि वह प्रेम जिसमे माता और बालक की नाई एक दूसरे का खयाल और श्रद्धा रहे। स्त्रियाँ ऐसे प्रेम को अपना उद्देश्य बनाये तो स्वतत्रता, स्वाधीनता, मताधिकार, सम्पत्ति, शक्ति अथवा वैभव की अपेक्षा इससे उनका अस्तित्व अधिक स्थिर—अमर होगा।"

अधिकार के झगडे मे पडने के पहले प्रत्येक बहन अच्छी तरह

सोचले कि वह प्रेममय जीवन चाहती है या अधिकारमय। मेरे निकट तो प्रेममय हृदय से हीन स्त्री, स्त्री ही नहीं है। स्त्री हृदय की देवी है; पुरुष दिमाग का—शरीर का राजा है। इसलिए प्रेमहीन पुरुष उतना भद्दा नहीं लगता पर प्रेमहीन स्त्री तो कुटुम्ब, समाज और स्वतः अपने जीवन के लिए भार-रूप है। स्त्री यदि सचमुच स्त्री है तो प्रेम ही उसका सर्वस्व होगा। वह प्रेम से ही विजय प्राप्त करती है और प्रेम ही चाहती है। अधिकार का झगड़ा ही प्रेम के सामने नहीं उठ सकता। यह झगडा वहीं उठता है जहाँ प्रेम का अभाव होता है। जहाँ प्रेम है वहाँ स्वार्थ की, अपने सुख की भावना ही नहीं उठती। वहाँ लेने की जगह ज्यादा-से-ज्यादा देने का—आत्म समर्पण का भाव रहता है। इसलिए कभी असन्तोष का प्रश्न ही नहीं उठता और यदि अधिकार की दृष्टि से भी देखें तो मै कह सकता हूँ कि कानून-कायदे से मिले अधिकारों के द्वारा गृहस्थ-जीवन का सुख नहीं बढाया जा सकता। मेरी समझ मे तो प्रेम का अधिकार ही सच्चा अधिकार है। जहाँ देने मे देनेवाले की इच्छा नही; जहाँ देने मे देनेवाले को प्रसन्नता नहीं होती, उलटे दुःख होता है वहाँ न तो देने का कुछ अर्थ है, न लेने मे कुछ आनन्द है। ऐसी जगह मिलती हुई चीज लेने मे भी लेने वाले को सकोच और दुःख, निराशा और अपमान का अनुभव होता है।

तुम क्या चाहती हो?

इसलिए मै तुम्हारे ही सुख के खयाल से यह कहना चाहता हूँ कि त्यागमय, सेवामय, और प्रेममय जीवन सदा अधिकारमय जीवन से अच्छा है। एक या अधिक गिरे हुए पुरुषो का उदाहरण लेकर स्वयं भी वैसे ही अधिकार के लिए लड़ना कोई अच्छा आदर्श नहीं है। स्त्रियो का आदर्श स्त्रियाँ है, पुरुष नही। स्त्रियो को अपना आदर्श, अपना रास्ता सती, सावित्री, सीता, दमयन्ती इत्यादि के प्रकाश में चुनना

चाहिए; विषय-भोग में पड़े हुए तथा कुरीतियों के शिकार पुरुषों को आगे रखकर नहीं।

दूसरे, हृदय पर अधिकार करने के लिए सेवा और प्रेम से अधिक शक्तिमान दूसरा उपाय नहीं है। ये दोनों अधिकार के माता-पिता हैं।

अधिकार के माता-पिता

इनसे स्वभावतः ही अधिकार प्राप्त हो जाता है। और यदि प्रेम करके बदले में प्रेम प्राप्त न हो तो भी तुम फ़ायदे में रहोगी क्योंकि इससे तुम्हारा मन अधिक निर्मल और शान्त रहेगा; तुम अपने अन्दर एक अनोखी शक्ति का अनुभव करोगी; दूसरों के सुख को देखकर जलने वाली स्त्रियों के समान तुममें अशान्ति और चिड़चिड़ापन नहीं आयेगा। तुम जहाँ जाओगी अपने मन की पवित्रता और अपने सेवा-भाव से दूसरों के भार को हलका करोगी।

अधिकार के झगड़े में सबसे बड़ी बात, जिसे स्त्रियाँ भूल गई हैं, यह है कि पुरुष-स्त्री दोनों को एक साथ रहना है और एक में मिलकर जीवन की, समाज की रचना और सेवा करनी है।

क्या दोनों स्वतंत्र हो सकते हैं?

दोनों सदा के लिए एक-दूसरे से अलग नहीं किये जा सकते। किसी भी अवस्था में हो, सामूहिक रूप से स्त्रियों को पुरुषों पर और पुरुषों को स्त्रियों पर निर्भर करना ही पड़ेगा। इसलिए इसकी जगह कि पुरुष स्त्रियों की बुराई करें, उन्हें भोग-विलास की पुतलियाँ समझकर हर समय उनके लिए सशंक रहें और स्त्रियाँ पुरुषों को स्वार्थी मानकर उनके विरुद्ध विरोध और शंका का एक तूफ़ान खड़ा करें, यह ज्यादा अच्छा है कि दोनों हर हालत में एक-दूसरे के दुःख-सुख, एक दूसरे की कठिनाइयों का सहानुभूति के साथ विचार कर और प्रेम-पूर्वक उन्हें मिल-जुलकर हल करलें।

बहुत-सी स्त्रियाँ प्रेम को, हृदय को, बाज़ार में बिकनेवाली चीज़

के समान समझती हैं। ऐसी स्त्रियाँ जीवन मे दुखी और निराश रहती है क्योकि वे सहज ही जिस प्रेम को प्राप्त करना चाहती है वह उन्हे नहीं मिलता। इसमें दोष उन्हीं का है। ऐसी बहनें यह समझ ले तो अपना बडा उपकार करेंगी कि प्रेम तभी सार्थक होता है जब उसमे सब कुछ चढ़ा देने का भाव रहता है। बिना इस भक्ति और त्याग के भाव के प्रेम का कुछ मूल्य नहीं है। जहाँ ऐसा प्रेम होता है वहाँ कभी असन्तोष और अतृप्ति का अनुभव नही होता—वहाँ निश्चय ही प्रेमपात्र पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। इसलिए तुम यह अच्छी तरह समझ लो कि प्रेम का मूल्य प्रेम है। यदि तुममे सच्ची प्रीति होगी तो तुम्हारे अन्दर सदा त्याग करने, अपना तन-मन-धन सब कुछ पति के लिए चढ़ा देने की भावना उठेगी। ऐसे प्रेम का फल कभी बुरा नहीं हो सकता। उसमे तुम्हे जीवन की सच्ची शान्ति और हृदय का सच्चा सुख मिलेगा।

प्रेम का मूल्य प्रेम है।

इसलिए जिस स्त्री के हृदय मे सच्चा प्रेम होता है वह ससुराल के धन-धाम को, हाथी-घोड़े को, नौकर-चाकर को, रुपये पैसे को नही देखती; वह केवल पति को पाकर सन्तुष्ट रहती है। वे स्त्रियाँ बड़ी क्षुद्र हैं और सदा दुखी रहती है जो अपनी सुविधाओ के लिए, कभी गहने के लिए, कभी कपड़े के लिए पति से झगड़े मोल लेकर अपने और उसके हृदय के बीच एक दीवार खड़ी कर देती हैं। विवाहित जीवन मे पति-पत्नी को एक दूसरे की बुराई-भलाई, कमी-ज्यादती को अपनी ही बुराई-भलाई समझकर सदा एक-दूसरे की सहायता करनी चाहिए, धीरज बँधाना चाहिए और सान्त्वना देनी चाहिए। छोटी-छोटी बातों को लेकर कलह खड़ाकर देने से सदा दोनो एक दूसरे से दूर होते जाते है और अन्त मे पछताना ही हाथ रहता है।

इसलिए तुम अपने हृदय को बहने वाली नदी—गंगा—के समान सदा प्रेम के जल से छलकता रक्खो। प्रेम की इस पवित्र धारा में घर की, आस-पास की सारी मलीनता, सारी बुराई बह जायगी और तुम सदा पवित्र एवं सुखी रहोगी।

बिना किसी इच्छा के, बिना किसी स्वार्थ के प्रेम करने मे जो सुख है उसका स्थान संसार का बड़े-से-बडा अधिकार नही ले सकता। यह दुनिया का सबसे बड़ा सुख है। वे भूलती है जो ऐसे अमृतमय सुख का बदला करने को—हीरे को कौड़ियों से बदलने को—तैयार हो जाती हैं। योरप की इस चमक-दमक पर न जाना। वहाँ की स्त्रियो से साहस, धीरता इत्यादि गुण अपने अन्दर लेना चाहिए पर पुरुषों एवं स्त्रियो की दल-बन्दी के फेर मे कभी न पड़ना। यह वह विष है जो जीवन-भर की कमाई नष्ट कर देगा।

ससार का सबसे बड़ा सुख क्या है?

आज भी हमारे घरो मे स्त्री का जो ऊँचा स्थान है वह संसार में अन्यत्र नही है। आज भी बड़े-से-बड़े और पवित्र-से-पवित्र धार्मिक संस्कारों का पालन पत्नी के साथ ही हो सकता है। बहुत प्राचीन काल से हिन्दू-समाज में स्त्री घर की रानी है। वह सच्चे अर्थ मे घर की मालकिन है और मातृत्व के मङ्गलमय भाव से उसका जीवन पवित्र एवं ऊँचा है।

: ६ :

स्त्री-हृदय का हीरा

अजमेर

चिरं० भगवती, २७. ११. ३०

पिछले पत्र में मैंने तुम्हें यह बताया था कि आजकल कुछ शिक्षित और असन्तुष्ट स्त्रियो ने स्त्रियो के आन्दोलन मे अधिकार का जो झगड़ा खड़ा कर दिया है उसके पीछे कौन-सी भावना काम कर रही है और तुम्हारा, एवं अन्य बहनो का, उससे दूर रहना ही अच्छा है। उसी पत्र मे मैंने यह भी बताया था कि स्त्री के लिए प्रेम बहुत ही आवश्यक चीज है। प्रेम, स्नेह, दया, क्षमा स्त्रियों के प्रधान गुण हैं और इन सबका स्रोत प्रेम ही है।

इस पत्र मे मै यह बताना चाहता हूँ कि जो प्रेम स्त्री-हृदय के लिए इतना आवश्यक है और जिसके बिना उसे जीवन मे सच्चा सुख और रस नही मिलता उसका विवाहित स्त्री के मन में क्या आदर्श होता है और स्त्रीत्व के ऊँचे भावो के अनुसार क्या आदर्श होना चाहिये।

सती और पतिव्रता का अर्थ है शरीर से, मन से और वाणी से पति की मङ्गल-कामना करना और पति के अतिरिक्त शारीरिक सुख-भोग के लिए किसी भी पुरुष का खयाल न करना।

सती कौन है?

जो स्त्रियाँ केवल लज्जा अथवा भय से या अन्य किसी कारण से अपनी शारीरिक पवित्रता की रक्षा करती हैं वे सच्चे अर्थ में सती या पतिव्रता नही कहला सकती। क्योकि उनके मन मे तो अस्थिर और अपवित्र भावनाये रहती ही है और ऊपर से जो वे बच जाती है

उसका कारण उनका संयम, उनका सदाचार और आत्म-बल नही बल्कि समाज के बन्धन, बेइज्जती का डर और परिस्थिति की जटिलता है। यदि इन बातो की रुकावट दूर हो जाय तो उन्हे नीचे गिरते देर न लगेगी। इसलिए इसमे उनका कोई विशेष महत्व नहीं है। सच्ची सती स्त्री वह है जिसके मन मे शारीरिक भोग-विलास के लिए पति के सिवा कभी किसी का खयाल न आवे और सब सुविधाये मिलने पर भी जो नीचे न गिरे। यदि उसके पाप कर्म को देखने वाला कोई न हो, उस पर सन्देह करने वाला कोई न हो, उसके लिए बदनाम होने या किसी प्रकार की सामाजिक एवं कौटुम्बिक हानि की सम्भावना न हो फिर भी उसका मन निर्मल रहे, उसके मन मे कोई बुरी भावना न आवे और प्रत्येक अवस्था मे पति मे उसका स्नेह बना रहे तब समझना चाहिए कि वह सच्ची सती और पतिव्रता है।

हिन्दू नारी इस प्रकार के ऊँचे आदर्श को सैकड़ो वर्षों से निबाहती आई है। उसने इसका सच्चा मूल्य समझा है; इसके लिए पेट मे कटार मारकर उसने आत्म-हत्या की है, इसके लिए हँसते-हँसते वह आग मे जली है। उसने अपनी तपस्या, अपने त्याग और अपने कष्ट-सहन के द्वारा जगत् के सामने स्त्री का एक अपूर्व तेजस्वी रूप प्रकट किया है। इस अधम वासनामय शरीर को उसने अपने पति-प्रेम की अग्नि से पवित्र एवं निर्मल कर दिया है। हिन्दू भारत और हिन्दू-सस्कृति का इतिहास अनेक महादेवियो के चरित्र से ऐसा उज्ज्वल हो गया है कि इससे अधिक महत्वपूर्ण इतिहास का दूसरा अग ही नही दिखाई देता। गॉव-गॉव मे सतियो के देवले और स्मारक बने हुए है और विवाह के समय आज भी उनकी पूजा होती है।

वह अपूर्व भाव।

सतीत्व के इस आदर्श भाव ने नारी को कितना पवित्र रूप दे दिया

है ! पुरुष उसके सामने अशक्त और एक बच्चे-जैसा मालूम होता है। सीता के आगे राम का, सती के आगे शिव का, दमयन्ती के आगे नल का चरित्र नगण्य है। आज सत्यवान का नाम कितने लोग जानते हैं पर सावित्री सबकी जबान पर है। इस नाशमान शरीर को इन महादेवियो ने अमृत से सीचकर अमर कर दिया है।

भाव की श्रेष्ठ पूजा

धर्मग्रन्थों मे कहीं-कहीं आदेश है कि पति कैसा ही कुरूप और लॅगडा-लूला या गुणहीन हो उसकी सच्चे हृदय से पूजा करनी चाहिए। सासारिक और स्थूल दृष्टि से यह एक बड़ा अन्याय मालूम पड़ता है पर यदि विवाह को केवल शरीर-सम्बन्ध के लिए न समझकर एक आध्यात्मिक बन्धन माने तो इस बात से एक बहुत बड़ा भाव संग्रह किया जा सकता है। मुझे खुद अभी तक इसका कुछ ठीक अर्थ मालूम न था, पर एक दिन भारत के ससार-प्रसिद्ध विचारक और कवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की एक पुस्तक पढ़ते समय मुझे इसका बिल्कुल ही नया अर्थ मालूम हुआ। जब हम किसी महापुरुष के किसी चित्र को प्रणाम करते हैं तो यह नही देखते कि किस काग़ज़ पर, किस रङ्ग से छपा है। काग़ज़ मामूली या भद्दा होगा तब भी हम प्रणाम करेंगे; काग़ज़ अच्छा होगा तब भी हम प्रणाम करेंगे क्योंकि प्रणाम हम काग़ज़ को नहीं करते काग़ज़ के पीछे जो भाव छिपा होता है उसे करते हैं। इसी प्रकार मूर्ति की बात है। जब हम मूर्ति के आगे सिर झुकाते है तो इसका यह अर्थ नही कि पत्थर के आगे झुकाते हैं। पत्थर तो किसी देव-भाव का आवरण है। हम तो देवत्व के उस ऊँचे भाव के आगे झुकते हैं। जब हम अपने माता-पिता को आदर से प्रणाम करते है तो उस समय यह नहीं सोचते कि वे सुन्दर हैं या कुरूप है या असमर्थ और अशक्त हैं। वे जैसे भी हो, पूज्य है। इसी तरह पति के लिए भी, चाहे वह शरीर

से कैसा ही हो, ऊँचा भाव हृदय मे धारण किया जा सकता है। क्योंकि हमारी उपासना और हमारा स्नेह शरीर से नही था। स्त्रियाँ पति-भाव की पूजा करती थी। वह पति है इसलिए पूज्य है, स्नेह-योग्य है; न कि वह खूबसूरत है या गुणवान है इसलिए पूज्य है। जब हम किसी छोटे या अयोग्य आदमी को भी सभापति की कुरसी पर बिठा देते है तो उसके उस पद पर रहते हुए हमे उसका आदर करना पड़ता है, उसके आगे झुकना पडता है क्योकि आदर हम उस मनुष्य के स्थूल रूप या शरीर का नही करते बल्कि उस स्थान का, उस पद का करते हैं। पति-पद पर आसीन होने के कारण ही पुरुष, हमारे आदर्शों के अनुसार, स्त्री का आदर-पात्र हो जाता है। यह भाव की श्रेष्ठ पूजा है; शरीर या साधन की आसक्ति नही है।

पर आज समय बडा कठिन आ गया है। प्रलोभन बढ़ गये हैं, कठिनाइयाँ दिन पर दिन ज़्यादा होती जाती है, हमारे अन्दर इतना ऊँचा भाव नहीं रह गया है। पुरुष खुद शारीरिक सुन्दरता के पीछे पागल दिखाई पड़ते है; किसी लड़की मे सब गुण हों पर वह सुन्दरी न हो तो आजकल के पुरुषो की निगाह मे वह विवाह-योग्य कन्या नही समझी जाती। पुरुष यदि उससे विवाह कर लेता है तो जैसे बडा उपकार करता है। यह हमारा मानसिक पतन है। हमने शरीर को गुणो—दया, क्षमा, प्रेम, शील, त्याग सेवा इत्यादि—से अधिक महत्व दे दिया है। इसलिए जब वह रूप थोड़े दिनो के बाद नष्ट हो जाता है तो पति का पत्नी और कुछ अश मे पत्नी का पति के प्रति विराग हो जाता है। आवश्यकता इस बात की है कि सब बहन-भाई रूप की, शारीरिक आकर्षण की निस्सारता अच्छी तरह समझ लें और शरीर की जगह हृदय का सम्बन्ध जोड़ने और बढ़ाने की कोशिश करें। यह तभी हो सकता है जब पति-पत्नी, पुरुष-स्त्री सब मे से रूप का मोह दूर हो जाय।

रूप का जादू

एक और बात के सम्बन्ध मे यहाँ तुम्हे सचेत कर देना चाहता हूँ जो सदा तुम्हारे काम आयेगी। आज समाज की हालत बहुत खराब है।

साहस की जरूरत है !

पुरुष सदाचार से बहुत नीचे गिर गया है। कालेजों और स्कूलो मे चरित्र बनने की जगह बिगड़ता ही अधिक है। बहुत-से पुरुष इतने अधम हो गये हैं कि वे दिन-रात बस विषय-वासना की ही बातें करते हैं। उनके यार दोस्त, उनकी हँसी-दिल्लगी, उनका खान-पान, उनके विचार सब स्त्रियो के प्रति कलुषित भाव तक ही बँधे होते है। उनके मन में सदा यही भावना रहती है कि अमुक आदमी की स्त्री ऐसी है; अमुक दोस्त को कैसी खूबसूरत स्त्री मिली है और किस प्रकार उससे परिचय बढ़ाया और उसे जाल मे फँसाया जा सकता है। समाज में ऐसी कुलटा या पतित स्त्रियाँ भी हैं जो ऐसे पुरुषो की खोज मे रहती हैं, पर संस्कारवश स्त्रियाँ पुरुषों से (पति के प्रति) अधिक वफादार होती हैं। आजकल कही भी किसी रूपवती स्त्री का पुरुषो की दूषित निगाह से बच कर निकल जाना बडा कठिन है। सड़क पर से निकले तो सैकड़ों आँखे उसे पी जाने को तैयार रहती है; रेल मे स्टेशन-वालो से लेकर यात्री तक सभी दर्शन, बातचीत और मौका मिले तो स्पर्श, के लिए व्याकुल रहते हैं। बार-बार खिड़कियो के सामने आकर खड़े होते और इधर-उधर टहलते है। इसलिए ऐसे कठिन समय में स्त्री के लिए ज्यादा साहसी और निर्भय होने की जरूरत दिन पर दिन बढती ही जाती है। हिन्दू स्त्रियाँ जरूरत से ज्यादा भोली और संकोची होती हैं। यह भोलापन, सकोच और लज्जा कोई बुरी चीज़ नही पर ऐसी जगह जब स्त्री का धर्म, उसका सर्वस्व सकट मे हो किसी प्रकार की लज्जा या हिचकिचाहट अपनी सारी जिन्दगी की सबसे मूल्यवान चीज नष्ट कर देने के समान है। पुरुषोंको अभद्र एवं अश्लील बातचीत,

इशारे करते या अनुचित भाव एवं झुकाव प्रकट करते देखकर, अनुचित समझते हुए भी, बहुत-सी बहनें संकोच से, शर्म से, अभ्यास न होने के कारण एवं कुसंस्कार के प्रभाव से चुपचाप अपमान सहती जाती हैं; उधर ऐसे दुष्ट पुरुष का साहस, मौन देखकर, बढ़ता जाता है। और पीछे कई बहनें बड़ी आपत्ति और संकट में पड़ जाती हैं। इसलिये ऐसे समय हृदय में साहस एकत्र करके, जरा भी न डरकर उन्हें डॉट देना चाहिए। पापी आदमी बड़ा कायर होता है। इसलिए डरना नहीं चाहिए। फिर यदि धर्म की रक्षा के लिए प्राण भी देने पड़ें तो उसके लिए सदा तैयार रहना चाहिए। यदि कोई बहन प्राण देकर अपने धर्म की रक्षा करना चाहे तो किसी पुरुष में यह साहस नहीं है कि उसे पतित कर सके। जब किसी तरह काम न चले तो वह स्वयं मर सकती है।

अभी एक बहन उस दिन एक भोली विवाहित लड़की की बात कह रही थीं। अभी वह बच्ची है। एक दिन मुहल्ले का एक युवक घर सुन-सान देखकर अन्दर आ गया और लड़की का हाथ पकड़ लिया। लड़की परदा करती थी; उस युवक से कभी बोलती न थी फिर भी अपने भोलेपन में वह समझ न सकी कि बात क्या है। पीछे जब लड़के ने उससे अलग कमरे में चलने को कहा तो उसे संदेह हुआ और वह बड़ी तेजी से रोने व चिल्लाने लगी जिससे वह युवक भाग गया।

यह भी कैसा भोलापन !

मुझे इस कथा में और उस लड़की के भोलेपन एवं निर्दोष भाव में पूरा विश्वास है, पर उसके माता-पिता एवं संरक्षकों ने उसे यह नहीं सिखाया कि समाज की ऐसी अवस्था है और ऐसी हालत पैदा होने पर स्त्री को अपनी रक्षा के लिए क्या उपाय करना चाहिए। विवाह के पहले लड़की को यह बात अच्छी तरह समझा देनी चाहिए कि स्त्री के लिए सतीत्व

ज़िन्दगी से भी अधिक क़ीमती चीज़ है और प्राण देकर तथा सब प्रकार के आचार-विचार की परवाह न करके भी उसकी रक्षा करनी चाहिए। ऐसे मौक़े पर संकोच छोड़कर दृढ़ता और साहस लाना चाहिए। मैं जानता हूँ कि इस संकोच का एक बड़ा कारण समाज की वर्तमान अवस्था है। स्त्रियाँ भी और उनके पति, माता-पिता, ससुर सभी यह सोचते हैं कि यदि यह बात प्रकट हो गई तो समाज में लोग क्या कहेंगे? निन्दा के इस भय से स्त्रियाँ इस मामले में दिन पर दिन कमज़ोर होती जा रही हैं। पाप बढ़ रहा है। इस 'चुप-चुप' की सत्यानाशी नीति ने समाज को नीचे गिरा दिया है। मैं ऐसे लोगों से पूछना चाहता हूँ कि तुम स्त्री के धर्म और सतीत्व को ज़्यादा मूल्यवान चीज़ समझते हो या लोक-प्रियता को? समाज की निन्दा कठोर होती है; उसे सहना कठिन काम है पर जहाँ हम ईश्वर के सामने निर्दोष हों वहाँ समाज की निन्दा सहकर भी अपने धर्म की रक्षा करनी चाहिए। स्त्री के लिए सतीत्व से बढ़कर और कोई चीज़ नहीं है। माता-पिता, सास-ससुर, यहाँ तक कि पति की भी सतीत्व के सामने कोई क़ीमत, कोई मोल नहीं है। जब राम ने सीता के ऊपर शंका की थी तो सीता ने सतीत्व के अपूर्व तेज से कहा था—"हे राम! तुम यह कहते हो? तुम्हारे मुँह से ये शब्द कैसे निकले?" इसका अर्थ यह है कि सतीत्व पति से भी ऊँची चीज़ है और पति की आज्ञा भी उसके सामने कोई चीज़ नहीं है। लोक-निन्दा बुरी चीज़ है पर समाज को ख़ुश करने के लिए भगवान को, जो सब देख रहा है, धोखा देना, उसकी परवाह न करना और भी बुरी बात है। निन्दा से अप्रतिष्ठा होती है, दुःख होता है; वह बुरी चीज़ है पर सतीत्व पर किसी तरह की चोट होते देखकर निन्दा के भय से चुप रह जाना और भी बुरी बात है। इसलिए निन्दा या यश की परवा न करके जो धर्म है, जो कर्तव्य है

जिससे परम पिता भगवान को सन्तोष हो, वह काम करना चाहिए। कभी न भूलो कि ईश्वर सबसे बड़ा है और सब कुछ देखता है। सदा ऐसा मौका आने पर साहस से काम लो और यदि ऐसी ही जरूरत हो तो मरने के लिए तैयार रहो।

इससे शिक्षा लो

कई वर्ष पहले की बात है कि एक बहन अपने पति के साथ एक दिन ताँगे से कहीं जा रही थीं। उसी ताँगे पर एक और आदमी पीछे आ गया। आते ही उसने दो-चार नोट निकालकर उस बहन को दिखाये। पति महोदय देख नही रहे थे पर उस बहन ने उस आदमी को एक थप्पड़ खींचकर लगाया और छीन-कर सब नोट सड़क पर हवा मे उडा दिये। पीछे तो तांगे वाले ने भी उसकी खूब खबर ली।

इसी प्रकार हाल मे दिल्ली मे पुलिस अफसर के हाथ पकड लेने पर एक बहन ने उसे एक थप्पड़ लगाया और कहा—"हट जा; तू मुझे गिरफ्तार कर सकता है, गोली चला सकता है पर हाथ नहीं लगा सकता, न धक्के दे सकता है।"

इस तरह का साहस हिन्दू स्त्री के लिए आज बहुत आवश्यक हो गया है क्योकि प्रलोभनो के बढ़ जाने, भोग-विलास के साधनो के सस्ते हो जाने और पुरुषो का सदाचार नष्ट हो जाने के कारण और स्वय स्त्री-समाज मे भी अनेक पतिता एवं कुलटा स्त्रियो के उत्पन्न हो जाने से खतरे बहुत बढ़ गये हैं और सकोच एवं लज्जा के कारण चुप रह जाने की नीति बहुत हानिकर हो गई है।

भक्षक रक्षक रूप में

दूसरी बात यह है कि समाज मे स्त्रियो के सतीत्व पर आक्रमण करने वाले सीधे-सादे एवं मूर्ख मनुष्य अब कम होते जाते हैं और उनकी जगह धोखेबाज, षड्यन्त्रकारी और कार्य-

चतुर चोरो की संख्या बढ़ती जाती है। पहले जमाने में, किसी सुन्दरी स्त्री को देखकर आक्रमण करके उसके घर से उठा ले जाने की चेष्टा की जाती थी। इसलिए ऐसे समय स्त्रियो की रक्षा के लिए लड़कर मर मिटने को बहुत-से भाई तैयार हो जाते थे और स्वयं स्त्रियाँ भी यह जानकर कि हमारा सतीत्व—हमारा धर्म खतरे मे है, मरकर भी अपनी रक्षा करने को सदा तैयार रहती थी। पर आज हम जिस युग मे रह रहे हैं उसमे साफ-साफ ठीक परिस्थिति को समझ लेने के साधन कम हो गये है। समाज में स्त्रियो को लूटने वाले बहुत ही चतुर ठग पैदा हो गये हैं। कोई मित्र बनकर, कोई भाई बनकर, कोई हितैषी बनकर स्त्रियो को जाल मे फँसाने की कोशिश करते हैं। मैं ऐसे कई धूर्तों को जानता हूँ, जो एक स्त्री को बहन कहते हैं पर उनके मन मे वासना की साँपिन नाच रही है। स्त्री के लिए अपने शत्रुओ को, अपने धर्म पर आक्रमण करने वालो को पहचान लेना सरल है पर इन भाइयो और हितैषियो के असली रूप को पहचानना बडा कठिन होता है। पहले ये दुखी बहनों की सहायता एवं सेवा करके, सहानुभूति प्रकट करके एवं अन्य शिष्ट उपायो से उनसे घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करते और फिर मौका मिलते ही उनके मनमें कमजोरी पैदा करके उन्हें धोखा देने और नीचे गिराने की कोशिश करते हैं।

भगवान ऐसे मित्रों से बचाये।

अभी हाल मे इस तरह का एक बड़ा विचित्र नाटक मेरी आँखो के सामने खेला गया। एक महाशय ने, जिन्हे हम सब लोग विश्वास करते थे, एक बहन के बारे मे कुछ झूठी बातें हम लोगो से कहीं। एक ओर यह हो रहा था और दूसरी ओर बेचारी उस बहन को धोखे में रखकर वह उससे घनिष्ठता भी बढ़ाते जा रहे थे। उन्होंने शुरू से अन्त तक उस बहन को अँधेरे मे रखा, उसे धोखा देने की चेष्टा की और उसकी बुराई फैलाकर

भी उसके हितैषी बने रहे। यही नही हममे से प्रत्येक के विषय मे एक-दूसरे को उसका विश्वास-पात्र बनकर, गलत एव ऊट-पटाग बाते इस ढग से और ऐसे रूप में कहीं कि हरेक का मन दूसरे से फट जाय। इस तरह उन्होने एक ओर उस बहन को बहन कहकर पुकारा; दूसरी ओर उसके अज्ञान मे हममें से प्रत्येक से उसकी बुराई की; तीसरी ओर उसे यह बताया कि और लोग तुम्हारी बुराई करते एव तुम पर सन्देह करते है, चौथी ओर हममे से प्रत्येक के चरित्र-दोष की मनगढ़न्त सूचनाये एक दूसरे को दी गई और साथ ही हिदायत भी करदी गई कि "मैने यह बात किसी से नही कही। आपको भाई समझकर कहता हूँ। और किसीसे इसकी चर्चा न करेगे।" यह बात प्रत्येक से कही गई। इस तरह महीनो पहले से षड्यंत्र रचकर एव अपनी बुराइयो के बचाव के लिए चक्रव्यूह तैयार करके सबको एक-दूसरे की निगाह मे गिराने की चेष्टा करके वह महाशय लोगो की ऑखो मे धूल झोक रहे थे। पर जैसा सदा होता है, इतना भ्रम और अविश्वास का अंधकार उत्पन्न करके भी वे सत्य के सूर्य का प्रकाश दबा न सके। वह प्रकट हो गया। पाप स्वयं अपना जासूस होता है। उसके लिए किसी गुप्तचर की, किसी पीछा करने वाले की जरूरत नहीं हुआ करती। वह अपने विषय में दूसरों से भी अधिक सशंक रहता है और खुद अपने आपको ढूँढ़ लेता है। यही हालत उन हजरत की भी थी। सबके मन को अविश्वास एवं एक-दूसरे की बुराई से धुँधला करने मे असफलता अनुभव कर वह खुद हरेक से पूछते फिरते थे कि 'आपको मुझपर कोई संदेह तो नहीं है!' बार-बार सफ़ाई पेश करते, अपने ब्रह्मचर्य की डींगे लगाते और अशान्त अस्थिर की भॉति दिन-रात घूमते फिरते थे। ऑख रखनेवालों के लिए किसी मनुष्य का चेहरा उसकी मनोवृत्तियो का सच्चा दर्पण है। उनका सूखा मुंख, उनकी अशान्ति, उनका हरेक से

अपने ऊपर सन्देह करने के लिए पूछना, ये ऐसी बाते थीं जिन्होने बिना किसी के विशेष चेष्टा किये ही उनका पर्दा खोल दिया। पीछे जब सब लोग एकत्र हुए और वे सब बातें सबके सामने आई जिन्हे हजरत ने हर एक से अलग-अलग कह रक्खा था तो सारा जाल स्वय खुल गया। किन्तु इतने पर भी उन्होने उस बहन को अन्त तक धोखे मे रखा। यहाँ तक कि वह उन्हे अभीतक अपना सच्चा हितैषी समझती है और जो उनके लिए चिन्तित थे, उनकी हितकामना ही जिनका काम था, वे आज इस भूली बहन के लिए बुरे बने हुए हैं।

पाप-रहित हृदय से बड़ा कोई रक्षक नहीं

मेरे कहने का मतलब यह है कि समाज मे ऐसे-ऐसे महानुभाव आज कल अवतार ले रहे है जो स्त्रियो को धोखा देने की कला मे बहुत चतुर हैं और जो महीनो पहले से, अनेक रूपो मे, अपना जाल बिछाना शुरू कर देते हैं। ये हमारे समाज के भयकर प्राणी है क्योंकि ये मित्र बनकर धोखा देते है और जिन्हे धोखा दिया जाता है, उन्हे अन्त तक इसका पता नहीं चलने पाता कि हमे धोखा दिया जा रहा है। ऐसे 'महापुरुषो' से बचना बहनो के लिए आज ज़्यादा कठिन हो गया है। ऐसे-ऐसे उदाहरण और दृश्य देखकर मनुष्य स्वभाव की अच्छाई से ही बहुतो का विश्वास उठ जाता है और इसकी वजह से जो सच्चे और जिम्मेदारी समझनेवाले भाई-बहन हैं उनके साथ भी बहुधा अन्याय हो जाता है। बहुत से सच्चे आदमी सन्देह के शिकार हो जाते हैं और बहुतों के कलुषित भाव को सच्चा बधुत्व समझ लिया जाता है। बुरे-भले की पहचान कठिन होती जाती है और संस्कार, पक्षपात, सन्देहशील प्रकृति एव अकारण के निन्दा-सुख के कारण कई बार अनायास हम, इन उदाहरणो के प्रकाश में, सभी प्रकार के बन्धुत्व भाव को, घनिष्ठता एवं स्नेह को, कलुषित समझ लेते है। मुझे खुद इस तरह

के अन्याय का शिकार होना पडा है; पर ईश्वर में अटल विश्वास रखकर, उसकी दृष्टि मे पवित्र रहने के सिवा इसका कोई उपाय नही है। मनुष्य अपूर्ण और परिस्थिति एव सस्कार का गुलाम है। उससे यह आशा करना कि वह प्रत्येक को ठीक-ठीक समझ लेगा, एक प्रकार की मूर्खता है।

तो फिर समाज मे ऐसे वैज्ञानिक चोरो से बहने किस तरह अपनी रक्षा करें, यह प्रश्न रह ही जाता है। इसका कुछ ठीक और निश्चित उपाय नही बताया जा सकता। यह बहुत करके प्रत्येक बहन की बुरे-भले को पहचानने की शक्ति और आत्मसयम की मात्रा पर निर्भर है। पाप-रहित हृदय से बढ़कर मनुष्य का कोई रक्षक नहीं है। जो सच्ची सती स्त्री है; जिसने सच्चे हृदय से पति को अपना लिया है और जिसके हृदय मे, भगवान के बल पर, यह साहस है कि मुझे कोई नीचे नहीं गिरा सकता, उसे सचमुच दुनिया की कोई शक्ति पतित नही कर सकती—मनुष्य बेचारा तो क्या चीज है ! जहाँ समाज मे पतित पुरुष और पतित स्त्रियाँ है वहाँ ऐसे भी बहन-भाई हैं जिन्हे संसार की कोई निन्दा पवित्र स्नेह की शुद्ध एव स्वास्थ्यकर वायु से अलग नहीं कर सकती। ऐसी बहनो को जानता हूँ जो पति मे इस तरह मिल गई है कि वर्षों एक साथ, एक स्थान पर रहने पर भी किसी पर-पुरुष के चेहरे का ठीक-ठीक वर्णन नही कर सकती। उनका ध्यान ही उधर नही जाता। ऐसी देवियाँ धन्य है और उन्हे कोई, कितना ही चतुर आदमी क्यो न हो, नीचे नहीं गिरा सकता।

इसलिए नारी-धर्म का, सतीत्व का सबसे बड़ा रक्षक तो भगवान् के अन्दर अगाध विश्वास और अपने हृदय का तेज एव साहस है। दूसरा उपाय पति के प्रति सच्ची श्रद्धा एव प्रेम है। तीसरी बात अपना पाप-रहित हृदय और आत्म-सयम का भाव एव अभ्यास है। साहस अपनी रक्षा के लिए एक जरूरी

भगवान् में दृढ विश्वास

गुण है। चौथी बात यह है कि वर्तमान समय मे प्रत्येक मनुष्य को बहुत समझ-बूझकर और अपनी जिम्मेदारियो का खयाल करके अपने मित्रो का चुनाव करना चाहिए। ज्यादा आदमियो से घनिष्टता बढ़ाना कभी ठीक और हितकर नहीं होता। हमे जीवन मे दो-एक ही सच्चे मित्र, सच्चे बन्धु या सच्ची बहन चुनने का प्रयत्न करना चाहिए। एक भी भाई या बहन ऐसी मिल जाय जो ठीक-ठीक समझकर आजीवन अपनी जिम्मेदारियो का निर्वाह कर सके तो समझना चाहिए कि हमे स्वर्ग मिल गया क्योंकि सच्चे मित्र से बढ़कर दुनिया में दूसरी दुर्लभ वस्तु नहीं है।

सतीत्व के सम्बन्ध में एक बात लिखने से रह गई है। मैं यह मानता हूँ कि यदि कोई स्त्री दृढ और सच्ची सती हो तो उसे कोई पतित नही कर सकता पर मान लो कि एक बहन अकेली कहीं चली जा रही है, वह सच्ची पतिव्रता और सती है; पति को छोड़ कभी किसी का ध्यान नहीं करती। उसे एकान्त मे अकेली देख ८–१० आदमी एक-साथ उस पर टूट पड़े और कोई ज़बर्दस्ती उसका धर्म नष्ट कर दे तो क्या वह सती या पतिव्रता नही रही? मेरी समझ से, और मुझे विश्वास है कि प्रत्येक बुद्धिमान आदमी की सम्मति मे, वह पहले-जैसी ही पतिव्रता है क्योंकि स्वतः उसके मन मे तो किसी प्रकार की कुवासना उत्पन्न हुई ही नहीं। जब तक कोई स्त्री अपने मन को पर-पुरुष के प्रति विकारो से बचाये हुए है, जब तक सच्चे हृदय से वह पति की मंगलाकांक्षिणी है तबतक ज़बर्दस्ती, उसकी अनिच्छा होते हुए, उसका शरीर अपवित्र हो जाने पर भी, उसके पतिव्रता या सतीत्व मे कोई कालिमा नहीं आ सकती। ऐसी अवस्था मे पति का यह स्पष्ट कर्त्तव्य है कि अपनी पत्नी को पहले की भाँति ही अपने हृदय मे स्थान दे।

शरीर बनाम मन की पवित्रता

मुझे सतीत्व एव पतिव्रता के बारे मे इतना लिखने की ज़रूरत न थी

पर समय बड़ा खराब आ गया है। मध्य युग मे भी बहनो का जीवन इतने खतरे में न था जितना आज है। उस समय यदि कोई बहन किसी परम शत्रु को राखी भेजकर भाई मान लेती थी तो वह प्राण देकर, सारी शत्रुता भूलकर, उसकी, उसके धर्म की रक्षा करता था। उस समय 'भाई' कहकर एक बार पुकारने की जिम्मेदारी बहन समझती थी और 'बहन' कहकर एक बार पुकारने की जिम्मेदारी भाई समझता था। इन शब्दो की कीमत क्या है, इसे लोग जानते थे और उसे चुकाने के लिए तैयार रहते थे। अभी मेरे लड़कपन तक मे गॉव के आदमी की बेटी को सारे गॉव वाले अपनी बेटी समझते थे। पर आज समय बदल गया है। हमारी जिह्वा से जिस समय अमृत निकलता है उस समय हृदय मे वासनाओ की विषैली सॉपिन नाचती रहती है। इसलिए इतना लिख देना पडा जिससे सारी परिस्थिति ठीक-ठीक समझ मे आ जाय।

: १० :

कुछ साधारण बातें

चिरं० भगवती, जवलपुर

२. १२. ३०

विवाह-सम्बन्धी प्राय: सभी बाते पिछले पत्रों मे मै तुम्हे लिख चुका हूॅ। अब लिखने की कोई खास बात नहीं रह गई है। अन्त में मैं तुमको थोड़े मे सभी बातो का तत्त्व बता देना चाहता हूॅ।

हृदय की उदारता

सबसे पहली बात जो तुममे होनी चाहिए, हृदय की उदारता और विशालता है। जीवन मे ऐसे अवसर बहुत आते है जब झूठी कल्पनाये हमे उत्तेजित कर देती हैं। अक्ल पर परदा पड़ जाता है और लोग अनुमान से ऐसी बातों की कल्पना किया करते है जिनके न सिर होता है न पैर। इस प्रकार कभी-कभी झूठे वहम के कारण जो गलतफहमी पैदा होती है वह अन्त मे निराशा एव दु:ख के कारण सच्ची हो जाती है। दिन-रात झूठी-सच्ची बातें सुनते-सुनते मन खट्टा था वहमी हो जाता है। जरा-जरा सी बात पर सन्देह होने लगता है। एक दूसरे के चरित्र पर शक करना तथा भेद लेते फिरना इत्यादि ऐसी बाते हैं जिन से पति-पत्नी के हृदय की खाई गहरी होती जाती है। यह सदा याद रखो कि किसी निर्दोष प्राणी पर वहम करना, उसकी निन्दा क़रना इत्यादि ऐसा पाप है जिसका कोई प्रायश्चित्त नही। पति-पत्नी दोनों का कर्तव्य है कि एक-दूसरे को अच्छी तरह समझ ले और फिर सदा एक-दूसरे मे विश्वास रखे। जहॉ सच्चा विश्वास

होता है वहाँ एक तरह का मानसिक सुख होता है। यह याद रखो कि विश्वास सन्देह से कल्याणकारी चीज है।

दूसरी बात आलस्य एवं बेकारी है। इन दोनो बातो से सदा बचना चाहिए। समाज मे बहुत-सी स्त्रियाँ ऐसी हैं जो अपना ज्यादा समय दूसरों के घरो की जाँच और बुराइयो की छान-बीन करने मे बिताती हैं। अमुक की स्त्री ऐसी है; अमुक पुरुष अमुक स्त्री के पास बहुत आता है; वह ऐसा है; वह वैसा है; अमुक लडकी उस युवक से रोज न जाने क्या-क्या बाते किया करती है, इस प्रकार की दुनिया भर की वाहियात बाते जब दो-चार निठल्ली स्त्रियाँ एकत्र होती हैं तभी छिड़ जाती है। इस भयानक कृत्य के लिए उन्हे न जाने कहाँ से समय मिल जाता है। मैने ऐसे बहुत से पुरुष देखे हैं जिनके कानो तक कभी घरेलू जीवन की झूठी सच्ची चरित्र-सम्बन्धी बाते नही पहुँची पर आज तक ऊँचे-से-ऊँचे विचार की भी कोई स्त्री मुझे नहीं मिली जिसके कानो तक किसी पुरुष या स्त्री की बुराई के सार्टि-फिकेट न पहुँचे हों। पुरुष स्वभाव से ही व्यावहारिक और कुछ गम्भीर होता है। इसलिए उसके पास तक पहले तो ऐसी बातो का पहुँचना ही कठिन होता है और पहुँचती भी हैं तो उसे इस ओर ज्यादा ध्यान देने का समय एव प्रवृत्ति नही होती पर स्त्रियाँ जरा भी परिचय होते ही, एक ही दिन मे, आपस में मन का सारा कच्चा चिट्ठा प्रकाशित कर देती है। अधिकाश स्त्रियो को ऐसी गुप्त पर बहुत करके झूठी बातो मे एक प्रकार का गुप्त और अस्पष्ट मजा आता है। ऐसी स्त्रियाँ अपना समय और अपना जीवन भी नष्ट करती है; जिन्हे अपना मित्र बनाकर ऐसी बाते कहती-सुनती है उन्हे भी चौपट करती हैं और जिनकी झूठी-सच्ची निन्दा फैलाती हैं उनका भी जीवन नष्ट करती हैं। अच्छी स्त्रियाँ वे हैं जो सदा

पतन की सीढी

अपने हृदय को स्वच्छ और पवित्र रखने, अपने घर को सुख-शान्तिमय बनाने तथा अन्य आवश्यक कार्यों मे लगी रहती हैं और ऐसी बातो पर ध्यान ही नहीं देतीं। सुख ऐसी ही स्त्रियों को मिलता है जो सदा अपने काम में लगी रहती हैं; जिनके पास न व्यर्थ बात करनेवाली जिह्वा है; न झूठी निन्दा फैलाने का साहस करनेवाला हृदय है। ऐसी स्त्रियाँ जब किसी भाई बहन को ऊँचे उठते देखती हैं तो हृदय से प्रसन्न होती है और जब किसी को नीचे गिरते देखती हैं तो हृदय से दुखी होती है पर उससे घृण की जगह उसपर दया करती है और स्वयं उसे ऊँचा उठाने, उसे बचाने की चेष्टा करते हुए उसे बदनामी से बचाती हैं, न कि दो-चार और झूठी बातें अपने मन से गढ़कर उसमे लगा देती हैं। ऐसी स्त्रियाँ धन्य हैं; वे स्वयं सुखी रहती हैं; अपने पति को भी चिन्ताओं से मुक्त रखती हैं और दूसरो को भी सुखी करती है। इसलिए तुम सदा बेकारी से बचो; ऐसी बेकार और निन्दा-प्रिय स्त्रियो और ऐसी बातो से दूर रहो। विवाह के बाद सदा हृदय में पति के प्रति विश्वास धारण करो। कभी कोई बुराई दीखे तो अच्छे ढंग से पति को ही कह देना और स्वयं उसे दूर कर लेना स्वस्थ एव कल्याणकारी मनोवृत्ति पैदा करता है।

तीसरी बात यह है कि विवाहित जीवन में सदा एक-दूसरे के लिए आत्म-त्याग करना पडता है। पति के लिए पत्नी को और पत्नी के लिए पति को कष्ट सहने के लिए तैयार रहना चाहिए। एक की गलती दूसरा जब अपनी ग़लती समझेगा तभी सच्चा आनन्द प्राप्त हो सकता है। जो स्त्री-पुरुष एक-दूसरे को प्यार करते हैं उन्हे एक दूसरे के हित का, एक दूसरे के सुख का बड़ा ध्यान रहता है।

चौथी बात यह कि स्त्रियाँ शृङ्गार और गहने-कपड़े मे अपना ज़्यादा समय और धन नष्ट करती हैं। यह याद रक्खो कि ईश्वर ने जो शरीर

सौन्दर्य की बेड़ी

दिया है उसे बदलना कठिन है, यह भी याद रखो कि सुन्दरता काला-गोरा होने मे नही है। सच्ची सुन्दरता हृदय की सुन्दरता है जो जन्म भर कायम रह सकती है। और जिन्हे विधाता ने सुन्दर शरीर दिया है वे व्यर्थ के झूठे और सोने-चॉदी के अलङ्कारो से उसे भद्दा और बनावटी बना देती है। सादगी से बढ़कर कोई सुन्दरता नही है, और याद रखो विवाहित स्त्री के लिए पति से बढ़कर कोई गहना नहीं है। बहुत-सी स्त्रियॉ गहने-कपड़े के लिए पति को बहुत तङ्ग करती है। यहॉ तक कि इन छोटी-छोटी बातो को लेकर घर मे कलह उठ खडा होता है। सबसे पहली बात इस सम्बन्ध मे यह याद रखनी चाहिए कि गहने जीवन को बनावटी बनाते हैं। इसमे दिखावे का, भगवान् ने जैसा बनाया है, उससे अधिक सुन्दर दिखाने का या अपने घर की गरीबी को छिपाकर समाज की झूठी इज्जत के लिए, अपने को अधिक समृद्ध या सम्पत्तिवान् दिखाने का भाव रहता है। इसमे स्त्री को मनबहलाव एव भोग की चीज़ के रूप मे देखने का भी भाव है और चोर-डाकू इत्यादि का भी डर लगा रहता है। ये भाव नैतिक दृष्टि से बुरे है। सामाजिक दृष्टि से देखे तो एक स्त्री को अच्छे गहने-कपड़े पहनते देख दूसरी स्त्रियो के मन मे भी वैसा ही पाने का लोभ होता है, इससे नकल एवं अन्ध अनुकरण की आदत बढ़ती है। राजनैतिक एवं मानवी दृष्टि से यह इस-लिए बुरी है कि जब समाज मे कितनी ही अभागी बहनो को पेट भर रोटी नहीं मिलती, जब वे अपने बच्चो को दो पैसे का दूध नही पिला सकती, न भूख के कारण उनके स्तनो मे ही दूध आता है, जब हम देखते है कि आज समाज में न जाने कितने भाइयो को रोटी के लिए अपमान सहना पड़ता है, देश के न जाने कितने भाई-बहन भूखे रह जाते है और न जाने कितनी दुखिया बहनें पेट के लिए अपना धर्म बेचने को बाध्य हो रही है,

देश विदेशी जाति के पैरो द्वारा कुचला एवं षड्यंत्र द्वारा लूटा जा रहा है; जब हजारो बच्चे, स्त्रियॉ, जवान, बूढ़े जेल के कष्टो, लाठी की चोटों एवं बन्दूक की गोलियो से खेल रहे है तब गहने पहनना गरीबों की, दुखियो एव अधभूखो की हॅसी उड़ाना है। आर्थिक दृष्टि से गहने पहनने की बुराई यह है कि जितना रुपया गहनों में लगता है उतना यदि किसी अच्छे बैंक में जमा कर दे तो बीस वर्ष में वह लगभग दूना हो जाता है पर गहने का तो बीस वर्ष में मूल का आधा भी नहीं मिल सकता। इस तरह जहॉ दो रुपये के चार होते हैं वहॉ गहनो मे दो का एक रह जाता है—कितना—चौगुना—अन्तर है। कौटुम्बिक दृष्टि से इसकी बुराई यह है कि पति या घर में कमानेवाला इन चीज़ों के लिए पिस जाता है और उसे अपने गौरव एव स्वाभिमान को तिलाञ्जलि देनी पड़ती है। कमाई का जो भाग बच्चों के पालन-पोषण, बड़े-बूढ़ो की सेवा एवं दुखियों की सहायता में व्यय होना चाहिए वह इस व्यर्थ दिखावे की चीज़ों मे खर्च हो जाता है। इस तरह गहना नैतिक, राजनैतिक, मानवी, आर्थिक और कौटुम्बिक सभी दृष्टियो से बुरा है। इसके मोह से भगवान् तुम्हें सदा दूर रक्खे।

पॉचवी बात यह है कि अपने सदाचार और स्वास्थ्य का सदा ध्यान रक्खो। इन दोनो बातो के लिए मन की पवित्रता और सदा काम मे लगा रहना बहुत ज़रूरी है। निकम्मी, सुस्त और बेकार स्त्रियॉ जल्द कुवासनाओ और बुरी बातो के जाल मे फॅस जाती है, क्योंकि बेकारी एव आलस्य पाप कर्म की ओर ढकेलनेवाला सबसे बड़ा राक्षस है। पुरुष हो या स्त्री निकम्मा रहना सबके लिए बुरा है। इसमें पतन की संभावना सदा बनी रहती है। दूसरी बात यह है कि जो काम मे लगे रहते हैं उनके पास अधिक चिन्ता के लिए समय ही नहीं रहता। कामवाली स्त्रियॉ इसीलिए नीरोग, स्वस्थ और सुखी रहती है कि उन्हे न चिन्ता करने का समय है, न बीमार होने का शौक है।

छठी बात यह है कि तुम्हे सदा प्रसन्न रहने का अभ्यास करना चाहिए। प्रसन्न स्वभाव की स्त्री बड़ी योग्य सहधर्मिणी होती है। खुश-मिजाजी स्त्री का सबसे बड़ा गुण है। स्त्रियो के जीवन मे छोटी-मोटी ऐसी अनेक बाते आती रहती है जिनके कारण उन्हे रोना पड़ता है। परन्तु सच्ची गुणवती स्त्री रोने की बात को हँसी मे टाल देती है; आँसू को मुस्कराहट मे छिपा लेती है। इससे वह अपने स्वास्थ्य की भी रक्षा करती है और दूसरो का बोझ न बनकर उनकी चिन्ता का कारण न होकर उलटे उनके सुख का कारण बनती है। चिड़-चिडी और मातमी स्वभाव की, सदा मुँह लटकाये रहने वाली स्त्रियो को कोई प्यार नही करता; सब लोग उनसे तंग और दुखी रहते है। स्त्री वह भली कि दुःख की अप्रिय बातो को हँसकर टाल दे और दिल से चुभने वाली बातो को सुनकर भी जितनी जल्दी हो सके, दिल से निकाल बाहर करे। ऐसी स्त्रियो को बच्चे प्यार करते है; युवक उन्हे अपना सच्चा साथी समझते और बूढे, गुरुजन, स्नेह रखते है। पर इसका यह मतलब नहीं कि दिन-रात क़हक़हे लगते रहे और ज़रूरत से ज्यादा चंचलता प्रकट की जाय। इन बातों के साथ गंभीरता और संयम की मात्रा भी होनी ही चाहिए।

हँसता हुआ मुख

सातवी बात स्त्री की सहनशीलता है। यह स्त्री-जीवन का एक बहुत ही आवश्यक गुण है। इसके होने न होने से जीवन के रूप मे बड़ा परि-वर्तन हो जाता है। एक अमेरिकन स्त्री ने ठीक ही लिखा है—"एक स्त्री तो साधारण तरकारी को लेकर बड़ा स्वादिष्ट साग बनायेगी और वही तर-कारी फूहड एवं जल्दबाज स्त्री के हाथो मे पड़कर महानिकम्मी और बेस्वाद हो जायगी जिसमें तरकारी अलग और पानी अलग होगा। चीज एक ही है; केवल पकानेवालियो में भेद है।"

"इसी प्रकार मनुष्य-जीवन की सब बातो का हाल है। ऐसे मनुष्य

बहुत थोड़े है जिन पर भाग्य सदा प्रसन्न रहता हो और ऐसे भी मनुष्य थोड़े ही हैं जिन पर सदा दुर्भाग्य का कुचक्र चलता हो। अधिक आदमी ऐसे हैं जिन पर सुख-दुःख का जोड़ा राज्य करता है। हम सब प्रायः माँ बाप की रक्षा मे जीवन आरम्भ करते हैं; एक ही प्रकार शिक्षा पाते और प्रायः एक ही तरह से घर-गृहस्थी का काम-काज सीखते हैं परन्तु परिणाम मे, अपने-अपने कर्मों के अनुसार हम दुःखी-सुखी···हो जाते हैं।

"प्रति वर्ष हममे से सैकड़ों शादी करते हैं·········· परन्तु तीन चौथाई घर नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। कारण यह है कि स्त्री-पुरुष आपस में बड़े स्वार्थ से रहते हैं और परस्पर की सहानुभूति के अभाव मे उनकी शादी सफल नहीं होती।

"एक ही मिट्टी से स्त्री-पुरुष दोनों बने होते हैं। न सब पुरुष देवता होते है, न सब स्त्रियॉ स्वर्ग की देवियॉ होती हैं। ऐसा कोई घर नहीं है जहॉ झगड़ा न होता हो। स्त्री-पुरुष दोनों को अपनी अनेक इच्छाओं को रोकना पड़ता है। सन्तोष, क्षमा और सहनशीलता इत्यादि के प्रताप से घर को स्वर्ग के समान बनाया जा सकता है।"

इससे तुम जान सकती हो कि जीवन के सुख और कुटुम्ब की शाति के लिए सहनशीलता एक बहुत बड़ा गुण है। गृहस्थ-धर्म संयम का धर्म है और विवाहित या गृहस्थ-जीवन परस्पर सहायता और सेवा का जीवन है। उसमे न पति को, न पत्नी को, न देवर को, न जेठ-जिठानी और सास-श्वसुर को यह सोचना चाहिए कि उन्हीं की बात हो, उन्हीकी बात चले। सबको मिल-जुलकर रहना और अपने मन की इच्छाओ को दबाकर एक दूसरे की सेवा एव सहायता में ही सन्तोष पाने की कोशिश करनी चाहिए। यह ठीक है कि जब तुम निर्दोष हो और कोई गाली दे तो इसे सह लेना

सहनशीलता सफलता की कुंजी है

बड़ा कठिन है; पर दुनिया मे जितनी अच्छी चीजे है, जितने ऊँचे गुण हैं सभी की यही हालत है। सब बडी कठिनाई से प्राप्त होते है। यदि तुम आरम्भ मे कठिनाई सहकर और अपने मन पर काबू रखकर सहनशीलता का अमूल्य रत्न प्राप्त कर लोगी तो अपने अन्दर उसके अपूर्व प्रभाव का अनुभव करोगी। दूसरों की निन्दा और गालियो को सह लेना अपने हृदय मे स्वर्ग की सृष्टि करने के समान है। दूसरे क्या कहते हैं, यह देखने और दुःखी एव चिन्तित रहने की जगह सदा यह देखो, यह ध्यान रक्खो कि तुम ईश्वर के सामने निर्दोष और पवित्र हो तो किसी के उलाहने, किसी की निन्दा और किसी की बुराई से तुम्हे दुःख एव चिन्ता नही करना चाहिए। हॉ, निन्दा करनेवाले आदमी का बुरा नहीं सोचना चाहिए।

इन गुणो को अपने अन्दर पैदा कर लेने से प्रत्येक स्त्री अपने जीवन को बहुत ऊँचा उठा सकती और अपने कुटुम्ब की सुख-शान्ति बढा सकती है। यह ठीक है कि सुख परिवार के अन्य स्त्री पुरुषो के स्वभाव पर भी निर्भर है, पर इन गुणो का उपयोग करने से, एक सीमा तक, स्वभाव भी बदला जा सकता है और यदि दूसरो के स्वभाव मे कुछ परिवर्तन न हो तो भी अपने हृदय की शान्ति और अपने मन का सच्चा सुख तो बढ़ेगा ही। तुम देख सकती हो कि एक घर मे तो सुख-शान्ति का राज्य है, उसमे पति संतुष्ट और प्रसन्न है; पत्नी हँसमुख, नीरोग और स्वस्थ है; बच्चे हँसते खेलते रहते है; अपनी निर्दोष एव भोली बातो से सबका मनोरञ्जन किया करते हैं। माता-पिता एव सास-श्वसुर का शान्त और गम्भीर मुख सबको उत्साह देता और धीरज बँधाता रहता है। उनका छोटा-सा घर है; आमदनी भी थोडी है पर घर मे सब एक दूसरे को अपना समझते, एक दूसरे

आकाश और पाताल

की सुख-सुविधा का खयाल रखते और हँसते-हँसते अपने काम-काज करते रहते है। इससे वह छोटा-सा घर स्वर्ग हो रहा है। पर पास ही दूसरे मकान मे चिन्ता, कलह, मार-पीट, गाली-गलौज और अशान्ति का राज्य है। घर भी बडा है, पति कमानेवाला भी है, व्यापार से उसे आमदनी भी खूब है पर स्त्री फूहड़ है; उसका किसी काम मे मन नही लगता; कही दाल मे नमक ज्यादा है, कही रोटी जल गई है। पति भी तुनुक-मिजाज—जल्द क्रोधित हो जाने वाला—है। वह नाराज होता है, पत्नी भी गरम होकर बात बढ़ा देती है। रोज़ लड़ाई-झगड़े चला करते है। पिता दुर्वासा के अवतार हैं। उनको दोष निकालने से छुट्टी ही नही मिलती। कभी उनको दाल मे रेत और ककड मिले मालूम होते है, कभी दूध मे पानी मिला दिखाई देता है। पतोहू किसीसे बात करती है तो उन्हे उसीमे उसका पतिव्रत भङ्ग होता दिखाई देता है। घर बिल्कुल गन्दा हो रहा है, कोई चीज़ कायदे से नही रखी जाती; सब अस्त-व्यस्त है। रसोई के घर मे धोने के मैले कपड़े पड़े हुए है और सोने के कमरे मे तेल का पीपा मौजूद है। पढने की मेज पर जूता पडा है और किताबो की आलमारी मे दाल-चावल से भरी थालियाँ पडी है जिनके अन्दर से घुन निकलकर सुरक्षित स्थान की तलाश में घूम रहे हैं; चूहे उछल-कूद मचा रहे है जैसे उनके घर कोई उत्सव हो। कही जूठन बिखरी है, कहीं फलो के छिल्के पड़े हैं जिन पर मक्खियाँ इष्ट-मित्रो एवं सज्जनों के साथ निमंत्रण जीमने आ विराजी है। कहीं बच्चे मैले-कुचैले घूम रहे है जिनकी आँखो से कीचड निकल रहा है और नाक के द्वार पर स्वयंभू बुलबुले बनते-टूटते रहते हैं। धमा-चौकड़ी, मार-पीट मची है; शान्ति नहीं है।

पास-पास बसे हुए इन दोनो घरो मे कितना अन्तर है दोनो घरो की स्त्रियाँ एक ही प्रकार से पैदा हुई थी। बहुत करके दोनों का लालन-

पालन भी एक ही प्रकार से हुआ होगा और फिर सयानी होने पर माता-पिता या घरवालो ने एक ही प्रकार से धूम-धाम के साथ, शादी कर दी होगी। किन्तु एक मे सहनशीलता थी; सेवा का भाव था। वह जब बात करती तो मुँह से रस टपकता था; जब बोलती तो मुँह से फूल झडते थे। वह कभी दिल खट्टा करने वाली बात न कहती थी। कोई दूसरा कड़ी बात कहता तो मीठी बात से जवाब देती। अपनी भक्ति और प्रेम से पति का हृदय उसने जीत लिया; उनकी विश्वासपात्र बन गई और दोनो के दिल एक-दूसरे से मिलते गये। अपनी सेवा और अपने परिश्रम एवं मीठे स्वभाव से उसने सास-श्वसुर को सदा खुश रक्खा; उन्हे कभी बिगड़ने का अवसर न दिया। देवरो से हँसकर बोलती और सदा उन्हे प्रसन्न रखने की कोशिश करती है। देवरानियाँ उसके पास जाते हुए ऐसा अनुभव करती है मानो स्नेहमयी माँ के पास जा रही हो और जेठानियो को ऐसा मालूम होता है मानो उनकी छोटी बहन हो। उसके इस स्वभाव का फल यह हुआ है कि उससे कभी कोई भूल भी हो जाती है तो सब चिढ़ने की जगह उसपर अपना स्नेह प्रकट करते हैं। सारे कुटुम्ब मे सभी एक-दूसरे की भूलो को सँभालने की कोशिश करते हैं पर इसका मुख्य श्रेय बहू के स्वभाव को है। उसने अपनी सेवा, अपने प्रेम, अपनी मधुरता और अपने अथक परिश्रम से घर को स्वर्ग की भाँति शात और सुखमय बना रक्खा है। वह छोटी-छोटी बातो का ध्यान रखती है, जिसका मनुष्य के दिल पर बहुत प्रभाव पड़ता है।

तुम्हारे हाथ भी बहुत कुछ है

इसलिए तुम सदा यह ध्यान रक्खो कि किसी घर को अच्छा-बुरा, सुखदायक या दुःखदाई बनाना बहुत-कुछ अपने स्वभाव पर निर्भर है। यदि तुम्हारा स्वभाव मधुर हो; तुम अपनी अपेक्षा दूसरो के दुःख-सुख का ज़्यादा ख़याल

रक्खो; कोई कड़ी बात कहे तो भी हँसकर टाल दो और मीठे शब्दो से जवाब देकर उसके क्रोध को जीत लो तो तुम कही भी रहो, सदा सुखी रहोगी। मैं जानता हूँ कि दुनिया में ऐसे भी लोग और ऐसे भी कुटुम्ब है जहॉ बहू मे ये सब गुण मौजूद होते हुए भी उसे दुःख ही उठाना पड़ता है। सास-ससुर दूसरे खयाल के, बहुत संकुचित विचारों से लदे होते है; उनके स्वभाव मे ही चिड़चिड़ापन और दोष निकालने की मनोबृत्ति होती है। ऐसी जगह पति का कर्तव्य है कि पत्नी को सान्त्वना देता रहे पर साथ ही उसका यह भी कर्तव्य है कि जहॉ वह अपने ऐसे चिड़चिड़े माता-पिता का ध्यान रक्खे वहॉ पत्नी पर भी ऐसे भयंकर अन्याय न होने दे कि उसका हृदय दुखी हो जाय और उसका दिल टूट जाय। इसका परिणाम यह होता है कि निराशा के कारण वह सोचने लगती है कि मैने न जाने क्या पाप किया था जो ऐसे कुटुम्ब मे आ पड़ी, जहॉ लाख चेष्टा करने पर भी किसी को मुझसे सुख नहीं है। कई स्त्रियॉ तो यहॉ तक सोचने लगती हैं कि हे भगवान्, मुझे कभी स्त्री का जन्म मत देना। यह ठीक है कि इस तरह के विचार मनमे लाना एक प्रकार की कमजोरी है पर मनुष्य का चरित्र केवल आदर्शों पर ही गठित नहीं होता। संसार और परिस्थिति का भी उसपर बहुत असर पड़ता है। केवल आदर्शों की दुहाई देते रहने और स्वाभाविक मानवी कमजोरियों की परवा न करने से कभी-कभी बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। जिस प्रकार की निराशा और मनस्ताप का वर्णन मैंने किया है उसका स्त्री के मन, विचार-प्रवाह और स्वास्थ्य पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। और चूॅकि घर का सारा बोझ उसी पर रहता है और वही कुटुम्ब के सुख-दुःख का केन्द्र है, इसलिए उसके मानसिक दुःख उसी तक नही रह जाते; उसके लाख छिपाने और मुँह से न कहने पर भी उसका असर घर के प्रत्येक काम और प्रत्येक

आदमी पर पडता है। इस दृष्टि से जहाँ सदा हँसमुख और प्रसन्न रहकर कष्टो को सहते हुए अपने मीठे स्वभाव और अपनी सहनशीलता से सबकी सेवा करना पत्नी का कर्तव्य है वहाँ उसे हृदय मे चुभनेवाले अन्यायो से बचाना और उसे सब प्रकार सात्वना एवं सहायता देना पति का भी कर्तव्य है। इसी प्रकार अपनी गभीरता, अपने वात्सल्य स्नेह और अपने शुभाशीषो से पतोहू का कल्याण करना एवं अपने पद के गौरव की लाज रखन भी सास-ससुर का काम है।

कर्तव्य-चिन्ता

परन्तु पति का कर्तव्य पति समझे या न समझे, सास-ससुर को अपना काम मालूम हो या न हो, बहनो को विवाहित अवस्था मे अपने कर्तव्य का ध्यान सब से पहले रखना चाहिए। सहनशीलता और अपने मीठे स्वभाव और व्यवहार से यदि तुम दूसरो का स्वभाव न बदल सकी तो भी तुम्हे एक प्रकार का संतोष होगा कि मैने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया है और इस भाव के कारण ही तुमको अपने अन्दर एक प्रकार की अपूर्व शान्ति का अनुभव होगा। यह ठीक है कि अपना दुःख-सुख अपने साथ रहनेवालो के दुःख-सुख पर भी निर्भर करता है पर तुम्हारे हृदय का सच्चा आनन्द तो केवल तुम्हारे ही मन की शान्ति और कर्तव्य-पालन पर निर्भर है। एक विदेशी बहन ने ठीक ही लिखा है कि हम सबको रोग, शोक और मृत्यु का दुःख देखना पड़ता है। एक गरीब स्त्री को बचा जनने मे इतना ही कष्ट होता है जितना कि एक लखपति की घरवाली को और दोनो को बच्चे की मृत्यु पर भी एक-सा ही कष्ट होता है ' पर बहुत-सी ग़रीब स्त्रियाँ कष्टमय जीवन मे भी संतुष्ट और सुखी है जब कि अनेक धनिक रमणियों का हाहाकार आकाश को कम्पित कर रहा है। बात यह है कि धन-धाम की बाहरी सुविधाओ पर हृदय की शान्ति और सुख बहुत कम निर्भर करता है।- इस प्रकार की कठिनाइयो

के होते हुए भी तुम बहुत दूर तक अपने कर्तव्य का पालन कर सकती हो और अपने हृदय को शुद्ध और सतुष्ट रख सकती हो। भाग्य के दोष का रोना निराशा और कमजोरी का चिह्न है। यदि तुम ऊपर लिखी बातो पर ध्यान देकर अपनी ज़िन्दगी की दीवार खड़ी करने की कोशिश करोगी तो निश्चय ही तुम्हे अपने अन्दर एक अपूर्व शान्ति और एक विचित्र ज्योति का अनुभव होगा। इससे तुम्हे अपनी कठिनाइयो को सहने की शक्ति प्राप्त होगी और तुम दुःख को भी हॅसकर टाल सकोगी। सदा याद रक्खो कि अच्छा या बुरा बनना खुद तुम्हारे हाथ की बात है।

घर को सॅभालनेवाली इन बातो के साथ पति का ध्यान कभी न भूलना चाहिए। साधारणतः पुरुष बाहरी दुनिया के कामो मे लगे रहते हैं। कोई नौकरी करता है, कोई व्यापारी है, कोई प्रोफेसर या वकील है; कोई पत्र-सम्पादक या उपदेशक है। इन कामो मे अनेक प्रकार की कठिनाइयॉ आती है; कितनी ही तरह की चिन्ताये सदा सिर पर सवार रहती है; प्रलोभन भी कम नही आते। अतः पुरुष जब दिन भर का थका-मॉदा, चिन्ताओ के बोझ से लदा घर आता है तो स्वभावतः शान्ति चाहता है। यदि उसकी सहन-शक्ति थोड़ी हुई तो ज़रा-ज़रा सी बात पर वह चिढ़ता है। चतुर गृहणी का काम है कि उससे मीठी-मीठी बाते करके उसके चित्त को शान्त करे। गरमी के दिन हों तो पंखा झले और थोड़ी देर बाद जलपान कराये। उसे सदा हॅसते हुए पति और घर के अन्य काम-काजी आदमियो का स्वागत करना चाहिए। स्त्री को पति के काम-काज के बारे मे इतना ज्ञान होना चाहिए कि वह उसकी बातो को समझ सके और उसमे अपनी दिलचस्पी रक्खे। पति की चिड़-चिड़ी बातो का जवाब भी नम्रता और शान्ति से देना चाहिए। बहुत-सी स्त्रियॉ कड़वी बातो का जवाब भी कड़वा ही देकर बात बिगाड़ देती हैं

ककर का उत्तर फूल

और पति के हृदय को तो दुखी करती ही है, साथ ही अपनी सुख-शान्ति की जड़ मे भी कुल्हाड़ी मारती है। समझदार स्त्री वह है जो अपनी हँसी खुशी और मधुरता मे सबका दुःख बहा दे। जब बच्चा मचलता और माँ को कड़ी बाते कह देता है तब वह उस पर क्रोध नही करती, मीठी-मीठी बाते करके उसे मना लेती है, वैसे ही पति के रूठने या खीझने पर भी पत्नी को अपनी स्वाभाविक मधुरता से उसका क्रोध दूर कर देने की चेष्टा करनी चाहिए, न कि अटपट जवाब देकर बात का बतगड़ बना देना चाहिए। स्त्री मे यदि समझ हो और उसके दिल मे पति के प्रति प्रेम हो तो वह स्वभावतः हर समय प्रेममय और रसभरी बाते बोलेगी। यह याद रक्खो कि पुरुष भी प्रेम और सेवा का भूखा है। यदि उसे यह विश्वास हो जाता है कि उसकी घरवाली उसे जी-जान से प्यार करती है; उसमे श्रद्धा रखती है तो वह स्त्री की सुविधाओं की ओर बहुत ध्यान देने लगता है। इसलिए प्रत्येक विवाहित बहन को इस तरह का ढङ्ग रखना चाहिए कि पति को उसके प्रेम का विश्वास बना रहे और प्रत्येक काम में उसे अपने इस प्रेम का परिचय देते रहना चाहिए।

पति-संबंधी तीन बातें

पति के सम्बन्ध मे दो-तीन और भी ऐसी बाते हैं जिनका ध्यान रखना चाहिए। पहली बात यह कि स्त्री को सदा सोचना चाहिए कि उसका पति भी मनुष्य है; उसमे भी दोष-गुण दोनो ही हैं। यह समझकर सदा उसकी कमजोरियो को क्षमा करना और यदि सम्भव हो तो प्रेमपूर्वक उन्हें दूर करने का यत्न करना चाहिए। सदा उसकी गलतियो के लिए उसके साथ सहानुभूति रक्खो।

दूसरी बात यह कि पति के प्रति प्रेम के साथ ही श्रद्धा और भक्ति का भी भाव होना चाहिए। पति को अपना रक्षक और रास्ता दिखानेवाला

समझ कर सदा उसका आदर करना और अपने प्रत्येक काम मे आदर के उस भाव को व्यक्त करना चाहिए।

तीसरी बात यह कि विवाह होने के बाद प्रत्येक बहन को चाहिए कि वह जीवन मे दुःख-सुख जो आये उसे खेल समझकर ग्रहण करे। जब हम बचपन मे या बड़े होकर कोई खेल खेलते हैं तो चोट लगने पर रोते नही। तुमने देखा होगा कि जब खेल मे कोई बच्चा चोट खाकर रोने लगता है तो अन्य बच्चे उसकी हँसी उड़ाते और तालियॉ पीट-पीटकर और कई तरह की हँसाने वाली बाते कहकर उसे हँसा देते हैं। जब खेल मे शामिल हुए तो फिर कोई कष्ट होने पर रोना नहीं चाहिए—प्रसन्नता-पूर्वक सब सहते जाना चाहिए। इसी स्वभाव को खिलाड़ी का ढङ्ग कहते है। स्त्रियो को अपना स्वभाव इसी सॉचे मे ढालना चाहिए और हाय-हाय करने तथा अपनी किस्मत को कोसने की जगह सुख-दुःख जब जो आवे उसे धीरज के साथ हँसते-हँसते सहना चाहिए।

इनका भी ख्याल रक्खो।

इसके साथ ही गृहस्थी में दो और बातो का ख़याल स्त्रियो को रखना चाहिए। बहुत-से पुरुष ऐसे होते हैं जिनमें काम करने की योग्यता होती है; वे अपने काम में चतुर भी होते हैं पर उनके स्वभाव मे निराशा भरी रहती है। वे सोचते है कि इतने झगड़े-बखेड़े करके हमें क्या करना है? और यह इतना सब किसके लिए करे? ऐसे लोगो को सदा सहायक और साथी की जरूरत रहती है जो उनके कामों मे उन्हे उत्साहित करता और उनसे काम लेता रहे। योग्य पत्नी इस काम को अच्छी तरह कर सकती है। पत्नी का दूसरा नाम ही हमारे यहॉ सहधर्मिणी है और जो स्त्री पति की सच्ची सहधर्मिणी होती है वही सच्ची और योग्य पत्नी भी होती है।

दूसरी बात यह है कि चाहे रुपये-पैसे की हम जितनी उपेक्षा करे पर

वर्तमान समय मे दुनिया के प्रत्येक क्षेत्र मे रुपये का महत्व बहुत बढ़ गया है। पति जो-कुछ कमाकर लाता है वह घर-ख़र्च के लिए पत्नी को देता है। पत्नी की योग्यता इस बात मे है कि वह उतने ही रुपयो मे समझदारी के साथ घर का ख़र्च चलावे और पति को अधिक के लिए तङ्ग न करे। यही नहीं जो योग्य स्त्रियाँ होती है वे तो उसमेसे भी, कुछ-न-कुछ बचाती जाती हैं और कोई कठिन अवसर आने या विपत्ति पड़ने पर, जब इज़्ज़त का सवाल आ जाता है, निकालकर दे देती हैं। ऐसी पत्नी पर पुरुष सदा विश्वास और ममता रखता है और उसे पाकर सन्तुष्ट एव सुखी रहता है।

× × × ×

अब, ज्यो-ज्यो तुम्हारे विवाह के दिन निकट आते जाते हैं, तुममे गम्भीरता आनी चाहिए और इन बातो पर ध्यान देना चाहिए। रोने-धोने और सदा यह विचार करके दुखी रहने से कि मुझे माता-पिता की गोद से दूर होकर दूसरे के घर जाना पड़ेगा, यह अच्छा है कि जो कुछ होना है उसके लिए तुम अपने को जल्द से जल्द तैयार कर लो। यदि तुमने रोने-धोने में यह मौका खो दिया और इन बातो पर ध्यान न दिया तो तुम्हें जन्म भर रोना पड़ेगा और दुनिया की कोई शक्ति तुम्हारे दुःख को दूर नहीं कर सकेगी।

: ११ :

गृहस्थ जीवन के रहस्य

अजमेर

चि० भगवती, २१. १. ३१

मेरा पिछला पत्र मिल गया होगा और आशा है तुमने उस पर ध्यान भी दिया होगा। हम सब लोग यहाँ अच्छी तरह हैं; यो तो शरीर है, एक न एक झगड़े लगा ही रहता है। यह जानकर सन्तोष हुआ कि तुम्हारे इलाज का प्रबन्ध प्रयाग में हो गया है। तुम इस व्यवस्था से पूरा-पूरा लाभ उठाना। ऐसा न हो कि रोग जड़ से अच्छा न हो और अपनी लापरवाही से फिर तुम थोड़े दिनो बाद बीमारी के लक्षण पैदा कर-करके लोगों की चिन्ता बढ़ा दो। सदा अपने स्वास्थ्य का ध्यान रक्खो क्योकि तन्दुरुस्ती से बढ़कर स्त्री का सच्चा मित्र दूसरा नहीं।

अभीतक मैं तुम्हे विवाह तथा उससे सम्बन्ध रखने वाली अनेक बातो के सम्बन्ध मे दस पत्र लिख चुका हूँ। यो तो जीवन का कोई एक निश्चित रास्ता नही है जिस पर चलने से सब-कुछ सहज ही मिल जाय पर इन पत्रों मे मैंने जितनी बातें लिखी हैं उनका पालन करने से निश्चय ही प्रत्येक बहन योग्य गृहणी बन सकती है।

असली सुख कहाँ है ?

इस बात में बहस की गुंजायश नही कि दुनिया में प्रत्येक स्त्री-पुरुष सुख चाहता है। किन्तु इस प्रबल इच्छा के होते हुए भी सुख बहुत ही कम लोगों को मिलता है। इसके दो कारण हैं। एक तो यह कि ज़्यादा-तर आदमी ठीक-ठीक यह नही समझते कि असल मे वे चाहते क्या हैं; न उन्हे यही ज्ञान रहता है कि सुख कैसे मिलेगा और कहाँ तथा किन

वस्तुओं में उसकी खोज करनी चाहिए। दूसरे यह कि जो लोग इन बातो को थोड़ा-बहुत समझते हैं वे भी सुख की कीमत चुकाना नहीं चाहते। वे चाहते हैं कि उन्हें हलवा ही हलवा मिल जाय पर कोयलो से हाथ न काले करने पड़े, न उसके लिए हाथ-पैर हिलाना पड़े। बहुत-से लोग दुनिया की बाहरी वस्तुओं, घर-द्वार, कपड़े-लत्ते, शान-शौकत, खान-पान और शारीरिक सुविधा की जो बहुत-सी चीजे संसार में दिखाई पड़ती हैं उन्हीं में सुख समझकर उनके लिए व्याकुल और पागल बने फिर रहे हैं। इनकी हालत उस हिरन के समान है जिसकी नाभि के नीचे—पेट मे कस्तूरी भरी है पर वह इसे न जानकर सुगन्ध की खोज में यहाँ-वहाँ विक्षिप्त-सा घूमता फिरता है। तुम इस बात को अच्छी तरह गाँठ बाँध लो कि सुख कहीं बाहर नहीं है; वह सन्तोष की एक अवस्था का नाम है जो अपने ही अन्दर प्राप्त हो सकती है। यदि मनुष्य इसे समझ ले तो उसके बहुत-से दुःख एवं कष्ट, जो उसी के पैदा किये हुए हैं, अपने आप मिट जायँगे।

इसलिए पहले तो तुम यह याद रक्खो कि तुम्हें दुनिया में सिवाय तुम्हारे दूसरा कोई शान्ति नहीं दे सकता। दूसरे लोग उस शान्ति को, उसके स्वाद को, उसके सुख को बढ़ा-घटा भर सकते हैं लेकिन उसका बीज बोना और अपने जीवन की मिट्टी में, उसे अपने हृदय के अमृत से सींचकर लहलहाते पौधे के रूप मे ला खड़ा करना तुम्हारा काम है। इसे दूसरा कोई, चाहे पति हो, चाहे भाई-बहन हो, चाहे माता-पिता हों, नहीं कर सकता।

तुम सवाल कर सकती हो कि इस प्रकार का मन का सुख किस तरह प्राप्त किया जा सकता है? इसके लिए पिछले पत्रो मे, और विशेषतः नवें-दसवे में, मैं बहुत-सी बातें लिख चुका हूँ। पर सबसे मुख्य बात

यह है कि जो आदमी सुख-संतोष का जीवन बिताना चाहे उसे सदा अपनी दिन पर दिन एक के बाद एक निकल कर सामने आने और कभी समाप्त न होने वाली इच्छाओ और वासनाओ को दबाकर रखना चाहिए। मनुष्य की अभिलाषाओ का अन्त नही है। यदि वे सदा पूरी होती जायॅ तो भी सैकड़ों ज़िन्दगियॉ खत्म हो जायॅगी और उनकी गिनती मे कमी न आवेगी। इसलिए जो लोग अपनी इच्छाओ पर काबू न रखकर उनकी पूर्ति करने के लिए मारे-मारे फिरते हैं वे कभी एक चीज़ लेकर आराम से नही बैठते; सन्तोष और शान्ति क्या चीज है, इसे वे कभी अनुभव नहीं करते। उनकी ज़िन्दगी सदा हाय-हाय करते बीतती है; एक न एक कमी का रोना लगा रहता है। कभी यह नही है, कभी वह नहीं! एक चीज मिली कि झट दूसरी की जरूरत पड़ती है। ऐसे स्त्री-पुरुषो को, चाहे उन्हे कुबेर का खज़ाना भी मिल जाय, कभी सुख प्राप्त नहीं होता। सुख सिर्फ उन लोगो को मिलता है जो दुःख मे, कष्ट में, अभाव में भी हॅसते-हॅसते अपने दिन बिता देने की दृढ़ इच्छा करके जीवन के रास्ते पर चल सकते है। जो लोग अपनी इच्छाओं को, अपनी अभिलाषाओ और दुनिया के बहुत तरह के रंग-बिरंगे प्रलोभनो को अपने अन्दर बढ़ने नही देते और जब जिस स्थिति मे पड़ जायॅ उसी मे शांति का अनुभव करते हैं उन्हीं को सुख मिल सकता है। बहुत-से पुरुष ऐसे है जो अपनी मूर्खता से अपने को दुनिया की अनेक अनावश्यक और दो घड़ी झूठा सुख देकर नष्ट हो जाने और जीवन को पहले से भी दुखी एवं पतित बना देनेवाली एक न एक चीज के पीछे सदा पागल रहते है। आज चाहे जैसे हो हज़ारो रुपया प्राप्त करने के सपने हैं तो कल पार्टियॉ दे देकर बड़े लोगो से जान-पहचान करने की धुन समाई है; आज पुत्र की प्राप्ति के लिए बड़ी बड़ी औषधियॉ खोजी जा रही हैं तो कल उस पुत्र को पढ़ा-लिखाकर बैरिस्टर

बना देने का भूत सिर पर सवार है ! बँगले बन रहे हैं; दिवाले निकले जा रहे हैं; नाच-मुजरे हो रहे है; कभी-कभी क्लबो और प्लेटफार्मों (सभा-मंचों) से स्त्रियों के उद्धारके उपदेश दे दिये जाते है और साथ-साथ चाय-अडा, ब्राण्डी तथा सिगरेट के धुएँ के बीच देश की दयनीय एवं गिरी हुई सामाजिक अवस्था का भी 'वे आसूं का रोना' रो दिया जाता है; इस रोने गाने को अखबारो मे छपाने का शौक भी चर्राता है और टको के बल से बड़े-बड़े अखबारो में वह तीन-चौथाई पानी मिले दूध का-सा स्वाद देने वाली स्पीच छप जाया करती है। दलबंदियाँ होती हैं, कहीं कौंसिल का चुनाव है; कहीं म्युनिसिपैलिटियो के सुधार के लिए पागल हो रहे हैं ! विवाद हो रहे हैं; एक-दूसरे पर कीचड़ उछाला जा रहा है ! ऐसी-ऐसी बाते छापी जा रही हैं जो निराकार ब्रह्म की तरह अभी तक अदृश्य थीं पर पृथ्वी का भार हलका करने के लिए मानो पुर-परिजन सहित अवतार लेने लगी है ! इस तरह अपने जीवन को छोटी-छोटी अभिलाषाओ की पूर्ति मे अधिकांश पुरुष पागल-से हो रहे हैं। उन्हे जीवन मे शान्ति और सुख क्या मिलेगा ! जैसे एक क्षण खडे होकर शान्ति के साथ विचार करने और जीवन का रास्ता निश्चित करने की उन्हें फ़ुर्सत नहीं है। जैसे शराबी या अफीमची या किसी और नशे के गुलाम को उसके बिना चैन नहीं वैसे ही जीवनके इन अशान्त और तूफ़ानी झकोरो के बीच अस्थिर-से ये पुरुष घूम रहे हैं ! इनमें से बहुत-से जो समझदार हैं, योग्य हैं; विद्वान् और विवेकी हैं वे समझकर भी कहते हैं, क्या करे भाई अब तो इसमे पड़ गये। वे वैसा इसलिए नहीं करते कि शान्तिपूर्ण ऊँचा जीवन बिताने के लिए उसकी कोई खास जरूरत है बल्कि इसलिए करते हैं कि दुनिया मे बड़े-बड़े प्रतिष्ठित लोग इसीको अच्छा समझते हैं। ऐसे आदमी सच्चा सुख कभी नहीं पा सकते क्योंकि वे प्रवाह मे बहने वाले जीवों के

समान सदा इधर-उधर टकराते रहते हैं। ये घर का भी सुख नहीं भोग सकते; कुटुम्ब उनके लिए एक होटल के समान है जहाँ भोजन किया और रास्ता लिया तथा समाज के ईर्ष्या-द्वेष एवं दंभमय जीवन को अपनी मानवी भावनाओं एवं परहित—कातरता के कारण वे छोड़ नहीं सकते। अभिलाषाओं के झकोरों मे उनका संघर्षमय जीवन बीत रहा है। यह हालत आजकल के युवकों की खास तौर से हो रही है और इसका वर्णन नीचे की कुछ पंक्तियो मे श्री रामनरेश त्रिपाठी ने अपनी 'स्वप्न' नामक कविता-पुस्तक में बहुत ठीक किया है—

भोग नही सकता हूँ गृह-सुख,
भूल नहीं सकता हूँ पर-दुख।
अकर्मण्यता से डरता हूँ,
जाता हूँ जब हरि के सम्मुख॥
जीवन का उपयोग न निश्चित,
कर पाया दुविधा-वश अबतक।
यौवन विफल जा रहा है यह,
जैसे शून्य सदन में दीपक॥

जहाँ अधिकाश पुरुषो की यह हालत है; वे कभी एक चीज पर सन्तोष करके, भगवान् के चरणों मे विश्वास रखकर सीधा-सादा घरेलू जीवन बिताने और उसी मे जीवन की सच्ची शान्ति और सुख पाने से विरक्त है; वहाँ बहुत-सी बहनों में भी तरह-तरह की इच्छाये एक पर एक, नई-नई कोपलो की तरह, फूटती और बढ़ती जाती हैं! उनका चित्त स्थिर नहीं; कभी उनको इसकी शिकायत है कि मै घर-गृहस्थी का काम करते-करते मरी जा रही हूँ। मजदूरनी या सहायता करनेवाली किसी स्त्री के आ जाने पर यह शिकायत खड़ी हो जाती है कि वह मेरे काम को

और भी बिगाड़ देती है। कभी वह सन्तान न होने से दुःखी है तो कभी बच्चो के होने पर उन्हे रात दिन सरापा करती है कि 'ऐसे बच्चे न होते तो अच्छा था!' कभी लड़के का व्याह करने और पतोहू का मुख देखने की, अभिलाषा होती है, तो कभी उसके घर में आ जाने पर रात-दिन शिकायतो और दोषो का रजिस्टर खुला रहता है कि 'वह तो रानी बन-कर आई है; मेरा भी व्याह हुआ था पर मै तो ऐसी निर्लज्ज न थी' या फिर 'मूरत-सी बनी बैठी रहती है मानो मैं इसकी लौडी हूँ।' पतोहू के ज्यादा काम-काज सँभालने पर यह बात निकलती है कि 'अब मेरा इस घर मे क्या रह गया? मेरी बात कौन पूछता है; जमाना ही ऐसा है; कलियुग है न?' मानो स्वयं खास राम-राज से, हजारो वर्ष का अन्तर लॉघकर, बेचारी पतोहू को उपदेश देने के लिए ही पधारी हैं! कभी किसी खास तरह के गहने की लालसा है; कभी फीरोजी साड़ी की धुन है; कभी किसी स्त्री का 'एयरिंग' अच्छा लगता है, कभी किसी के चन्द्रहार को अपनाने की इच्छा होती है! इसतरह की अनेक इच्छाओ को बढ़ाते बढ़ाते उनका जीवन असन्तोषमय, चिड़चिड़ा और सदा के लिए दुखी हो जाता है और जब अपनी सब इच्छाये पूरी भी हो जाती है; अपने घर को सुधार लेती है, अपने कुटुम्ब का 'उद्धार' कर लेती हैं तो दूसरो की चाल-ढाल देख देखकर उनका दिल सुलगता है! दूसरो के घरो को सुधारने और उनका बोझ हलका करने के लिए आलोचना एवं छान-बीन शुरू हो जाती है। ऐसी स्त्रियो को जीवन मे क्या सुख मिलेगा? क्या शान्ति प्राप्त होगी?

इसलिए यदि तुम सच्चा सुखी जीवन बिताना चाहती हो तो पहले अपने मन मे बहुत ही थोड़ी और अच्छी इच्छाओ को स्थान दो। उन इच्छाओ के अन्दर भी अपनी अपेक्षा दूसरो की भलाई की भावना अधिक

हो। इतने पर भी सदा इस बात के लिए तैयार रहो कि यदि वे इच्छायें पूरी न हुई तो भी तुम्हे उसकी चोट न लगेगी, न तुम्हारे उत्साह, काम और रंग-ढंग में अन्तर पड़ेगा। अपने मन पर संयम—काबू—रखकर थोडे मे सन्तुष्ट हो जाने और जो कुछ मिले उसके लिए भगवान् को हृदय से धन्यवाद देने की आदत डालो। दुःख में भी यह सोचकर सन्तोष करो कि दुनिया मे तुमसे भी दुःखी लोग मौजूद हैं।

इसके लिए सबसे अच्छा उपाय यह है, और उसे मै पहले भी किसी पत्र मे लिख चुका हूँ कि सदा अपने को काम में लगाये रक्खो। अपने को काम मे इतना लिप्त रखना चाहिए कि दुःख-सुख और विशेषतः दुःख का अनुभव करने, उसपर विचार और छान-बीन करने या अपने अभावो पर रोने और दुखी होने का समय ही न मिले। संसार में तन-मन को भूलकर, एक दिल होकर काम करने से बढकर कोई सुख नहीं है। इससे मन सदा दुःख और अनेक तरह की व्यर्थ की चिन्ताओ तथा झूठी और द्रौपदी के चीर की तरह बढती जानेवाली अभिलाषाओं से बचा रहता है। निकम्मे रहकर चिन्ता का बोझ बढा लेने से हृदय दुर्बल होता जाता है और ऐसे बहन-भाई निराशा के सागर मे इस तरह डूब जाते है कि उनसे दुनिया मे कोई बडा काम होने की आशा नहीं की जा सकती। वे फिर न केवल दूसरो के लिए, घर और कुटुम्बवालों के लिए बल्कि धीरे-धीरे अपने लिए भी भार-रूप हो जाते हैं!

सुखी होने के लिए दूसरा रामबाण उपाय प्रत्येक अवस्था में सन्तोष करना है जिसकी चर्चा मैं ऊपर भी कर चुका हूँ। यदि तुम सुख चाहती हो तो जिस अवस्था मे तुम हो उसी में तुम्हें सुख का अनुभव करना चाहिए। दूसरों की ओर देखकर अपने दुःख से उनके सुख की तुलना करने और असन्तोष का भाव हृदय मे उत्पन्न करने से सम्भव है तुम वह

अवस्था प्राप्त कर लो पर इससे तुम्हे सुख-सन्तोष तथा शान्ति नही मिलेगी। दूसरे के मालपुए और रेशमी साड़ी की ओर न देखो; अपनी रूखी-सूखी रोटी और खादी या गजी की साड़ी पर प्रसन्न और सन्तुष्ट रहो। दूसरे क्या पहनते-ओढ़ते हैं; क्या खाते-पीते हैं इसकी ओर ध्यान न दो। अपने सुख के लिए दूसरो की ओर न देखो और न दूसरो की-सी सुविधायें प्राप्त करने की चिन्ता मे इतनी डूब जाओ कि वे चीजे भी न मिले और वर्तमान जीवन का तुम्हारा सुख भी नष्ट हो जाय। सुख से भविष्य का कोई सम्बन्ध मत रक्खो, यह न सोचो कि आगे मुझे ऐसा सुख मिलेगा, वैसा सुख मिलेगा। जिस अवस्था मे हो, उसी अवस्था मे सुख ढूँढ़ो और अनुभव करो। दुनिया मे अपने या दूसरों के मन मे झूठी महत्वाकांक्षा जगाकर जीवन की शान्ति नष्ट कर देने के समान कोई पाप नही है। असली सुख अपने को छिपाकर रखने, चुपचाप अपना बलिदान करने और आत्म-विसर्जन करने में है। यह कभी मत सोचो कि तुम्हारा बडा नाम हो या तुम समाज या देश की बड़ी सेविका बन जाओ। ये भी बुरी बाते नहीं है, पर भगवान् के चरणो मे अपने को चढ़ाकर, उसकी इच्छाओ पर छोड़कर, निर्मल, शान्तिपूर्ण और पवित्र जीवन बिताने की इच्छा इससे कहीं ऊँची है, क्योंकि मनुष्य के जीवन का यही उद्देश्य है।

आजकल ज़्यादातर लोग, स्त्रियॉ भी और पुरुष भी, समाज मे, यह समझते है कि विवाह का मतलब भोग-विलासमय जीवन बिताना है। हजारो वर्षों के संस्कार के कारण विवाह मे शारीरिक वासनाओं की पूर्ति के भाव को हम लोग प्रधान मानने लगे है। जरा लड़की बड़ी हुई कि चारो तरफ से आवाज आने लगती है—'राम-राम! लड़की इतनी सयानी हो गई और इसकी कोई रोक-थाम और खोज-फिक्र करनेवाला नही है।' कोई-कोई तो निर्लज्जतापूर्वक यहॉ तक भी कह देती हैं कि 'इस उम्र मे तो

मैं दो लड़कों की माँ हो गई थी।' इन बातो के अन्दर विवाह को वासना-पूर्ति का साधन समझने की भावना प्रधान है। लोगों के हृदय में यह भावना बहुत दूर तक घर कर गई है।

प्रत्येक बहन और प्रत्येक भाई सदा याद रक्खे कि विवाहित जीवन बहुत ही जिम्मेदारी का जीवन है। इसमे प्रत्येक विषय मे संयम रखना पडता है; यह उच्छृङ्खलता और निस्सार दलीलो तथा दिल्लगियो का जीवन नही है। निश्चय ही इस तरह की भावना का कारण समाज मे दिन-दिन बढने वाली भोग की प्रवृत्ति है। लोग चञ्चल और अतृप्त से, नाना प्रकार के प्रलोभनों और आडम्बरो मे फँसकर विवाहित जीवन को दिन पर दिन विषयी एवं कामुकतापूर्ण बनाते जा रहे हैं। स्त्रियाँ अपने पति-पूजा के संस्कारों के कारण बिना विरोध किये अपने पतियों की तृप्ति के लिए अपने स्वास्थ्य और सौन्दर्य की बलि चढ़ाती जा रही है।

जहाँ एक ओर समाज मे विवाहित जीवन को भोग-विलास का साधन बना लिया गया है वहाँ दूसरी ओर देश में एक ऐसा भी छोटा-सा दल उठ खड़ा हुआ है जो विवाहित जीवन से शारीरिक भावनाओ को एक-दम निकाल देने पर तुला हुआ है। महात्मा गाधी और टालस्टॉय को शिक्षाओं ने इस प्रकार के विचार को उत्तेजना दी है और बहुत से लोग तो विवाह के उच्च अध्यात्मिक रहस्य को भूलकर उसे जीवन की कमजोरी समझने लगे हैं। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो पति-पत्नी के सम्बन्ध को एक-दम भाई-बहन जैसा बना देने के लिए चिन्तित है। मै मानता हूँ कि यह पहले प्रकार के भोग-विलासमय जीवन के प्रति एक प्रकार की बगा-वत, एक प्रकार का विद्रोह है! यह दूसरी अति है! मैं मानता हूँ कि इस तरह की शिक्षा का प्रचार करना साधारण मनुष्य का काम नही है। ये बाते दिमाग की असाधारण अवस्था की उपज है इसलिए गृहस्थ-धर्म

मे इनका एकमात्र अर्थ यही हो सकता है कि हमारा जीवन हर हालत मे संयमपूर्ण होना चाहिए और भोग-विलास तथा शरीर के सुखो मे इस प्रकार लिप्त न हो जाना चाहिए कि शरीर और मन दोनों की अवस्था खराब होती जाय और ऊँचा उठने की जगह हम जीवन की लड़ाई मे बिलकुल निकम्मे और कमजोर साबित हों।

संयम का अर्थ अभाव नहीं है इसलिए सयम का अर्थ वैराग्य भी नहीं है। संयम का अर्थ इतना ही है कि हमारी अभिलाषायें इतनी न बढ़ जायँ कि वे सुख देने के बदले हमारे लिए बोझ बन जायँ; संयम का यह मतलब है कि हम शरीर के विषय-भोग मे इतने न पड़ जायँ कि उसीके गुलाम बन जायँ; मन पर उसी का अधिकार हो जाय। इस अर्थ के साथ सारे संसार के जीवो मे समबुद्धि से एक ही चीज को देखना यह तत्त्वज्ञान की अन्तिम अवस्था में ही हो सकता है; उस समय देश-काल और व्यक्ति सबके भेदभाव मिट जाते हैं। उस समय निश्चय ही पति-पत्नी, भाई-बहन, माता-पुत्री मे कुछ अन्तर नहीं रह जाता। उस समय चाण्डाल और पण्डित में अन्तर का अनुभव समाप्त हो जाता है। पर यह बात तभी हो सकती है जब हम दुनिया के प्रत्येक कर्म से अलग होजायँ क्योंकि इच्छाओं से ही कर्म का जन्म होता है और कर्म से ही आशा, उत्कण्ठा और अभिलाषाओ का जन्म होता है। यह संसार मे रहने वाले साधारण जनो के लिए नहीं है। जो बात एक ऊँची अवस्था के लिए ठीक हो वह एक नीची अवस्था के आदमी के लिए भी हितकर साबित होगी, यह बिलकुल गलत धारणा है।

इसलिए मेरी समझ से महात्माजी या टाल्स्टाय या हमारे पूज्य ऋषि-मुनियो की संयम की शिक्षा का मतलब यह नहीं है कि विवाहित जीवन मे पति-पत्नी एक-दूसरे को भाई-बहन मान ले। ऐसा कहना भी उस विशेष भाव के साथ अन्याय करना है जिसको लेकर हमारी अनेक माताओं ने

हँसते-हँसते चितारोहण किया है। ऐसा कहने मे पत्नीत्व का भी अपमान है और बहन शब्द के अन्दर जीवन की जो स्मृतियाँ, जो रक्त-मांस की अभिन्नता और पवित्रता छिपी रहती है उसका भी अपमान करना है। कोई भी पति-पत्नी चाहे उनका जीवन कितना ही निवृत्तिमय हो, चाहे उनके मनमे शरीर-भोग की भावना न उठे पर पत्नीत्व और पतित्व के विशेष भाव से अलग होकर भगिनीत्व और बन्धुत्व के भाव मे अपने को नहीं ला सकते जो विवाह के संस्कार के साथ उनके मन मे जीवन-भर के लिए उदय हो जाता है। किसी स्त्री के मन मे, चाहे वह अस्सी वर्ष की हो जाय और उसमे शरीर-सुख की शक्ति और भावना बिलकुल न रह गई हो, पति को भाई समझने का भाव उदय ही नही हो सकता; न किसी पति के मन मे यह बात उदय हो सकती है। कुवासनाओ से हीन हो जाने की अवस्था मे भी, जीवन-भर, पति के लिए पत्नी पत्नी ही रहेगी और पत्नी के लिए पति पति ही रहेगा।

कोई भी सिद्धान्त या धर्म जो मनुष्य की आकाक्षाओ और मन की स्वाभाविक गति को देखकर नहीं बनाया जाता अधिक दिन तक टिक नहीं सकता। जो लोग अवसर देखकर उसे स्वीकार भी कर लेते हैं वे या उनके बाद आने वाले उसके मनमाने अर्थ लगाकर और उसमे मनोनुकूल छूट की बाते खोजकर उसे न केवल अव्यावहारिक सिद्ध कर देते हैं बल्कि उसका दुरुपयोग भी करने लगते हैं। इसलिए सबका खयाल करके, सबके आचरण-योग्य सिद्धान्तो का बनाना बड़ी ऊँची बुद्धि और अनुभव का काम है। आज जो बाते कही जा रही हैं, हमारे प्राचीन ग्रन्थो में उन सबका वर्णन आया है और ऐसा मालूम होता है कि ये सब प्रयोग हमारे यहाँ किये जा चुके हैं किन्तु निष्फल होने पर छोड़ दिये गये! उसके बाद आश्रम-धर्म की व्यवस्था की गई। नियमित समय तक ब्रह्मचर्य और विद्याध्ययन,

उसके बाद नियमित समय तक गृहस्थजीवन और विद्या का व्यावहारिक उपयोग, फिर निश्चित समय तक वानप्रस्थ और निवृत्ति का अभ्यास और फिर कार्यों एवं आकाक्षाओ का त्याग करके संन्यास और आत्म-चिन्तन। इस प्रकार जीवन बिताने की प्रणाली से शरीर, मन और आत्मा तीनो का विकास होता था। इस व्यवस्था की रचना करने वाले ऋषिगण यह जानते थे कि सदा चलनेवाला धर्म कभी अति-धर्म नहीं हो सकता; वह संयमपूर्ण साधारण जीवन ही हो सकता है। इसलिए अवस्था के अनुसार अपने-अपने समय में प्रत्येक आश्रम को महान् बताया गया है। ब्रह्मचर्य-आश्रम जड के समान, गृहस्थ तने के समान, वानप्रस्थ छायादार और थकावट दूर करने वाली डालियो के समान और संन्यास फूल-फल के समान है जिसपर सब मनुष्यों का अधिकार हो जाता है, जन्म देनेवाले वृक्षका नही। इनका विकास क्रम से ही हो सकता है; एक के पहले दूसरे का नहीं। इस तरह हमारे धर्म मे सयम के साथ भोग और त्याग दोनो की व्यवस्था है और वही ठीक भी है। इसलिए भगवान् ने गीता मे—'युक्ताहार विहारस्य…' अर्थात् "सयमित, योग्य आहार और विहार…से ही योग सिद्ध होता है।" कहकर इस प्रकार के बीच के रास्ते को ठीक बताया है। दुनिया के अधिकाश विद्वान् समाज-शास्त्रियो का कहना है कि हिन्दू-धर्म के आश्रम-विभाग से अच्छी और वैज्ञानिक समाज-व्यवस्था दूसरी नहीं है।

इसलिए हमारे-जैसे साधारण शक्ति के आदमियों के लिए सबसे अच्छा सिद्धान्त यही है जिसे गीता मे भगवान् ने कहा है अर्थात् संयमपूर्ण आहार-विहार। यानें आहार—भोजन हलका, सात्विक, थोड़ा और ठीक समय पर हो; इसी प्रकार भोगविलास में बह जाना, उसी को प्रधान बना लेना अनुचित है। उसमे भी संयम की बहुत जरूरत है, उसकी मात्रा भी बहुत थोड़ी होनी चाहिए।

स्वास्थ्य की दृष्टि से भी स्त्रियो को विवाहित जीवन मे संयम को स्थान देना चाहिए। आज प्रसूति-रोग, क्षय तथा अन्य नाशकारी व्याधियों से बहुत-सी स्त्रियॉ पीड़ित देख पड़ती हैं। अनियमित आहार और उच्छृङ्खल विषय-भोग ही इसका प्रधान कारण है। फिर सन्तान उत्पन्न होने मे स्त्री के शरीर का सेरो खून कम होजाता है क्योकि उसी के शरीर के खून-मास से बच्चे का शरीर बनता है। इस दृष्टि से भी स्त्रियों को इस ओर ज्यादा ध्यान देना चाहिए।

विवाहित जीवन मे केवल शरीर की वासना-तृप्ति मे ही नही, अन्य बातो मे भी स्त्री को संयम रखना चाहिए। बहुत बक-बक करना वाणी का असंयम है; आलस्य मे समय खोना समय का असंयम है; फजूलखर्ची धन का असंयम है। इन सब बातो से बचना और अपना समय सदा अच्छी बातों मे लगाना चाहिए। याद रक्खो, दुनिया में यदि सबसे कम और मूल्यवान कोई चीज़ हमें मिली है तो वह समय है। फिर भी यह एक आश्चर्य की बात है कि हम उसका सबसे ज्यादा दुरुपयोग करते हैं। यह न भूलो कि जो दिन आज बीत जायगा वह लाख सिर पीटने पर भी कल लौटकर न आयेगा। इसलिए एक-एक मिनट का ध्यान रक्खो और केवल इन्ही बातों मे उसे खर्च करो जिनसे तुम्हारा जीवन दिन-दिन शान्त, सन्तुष्ट, सुखी, ऊँचा और संयमपूर्ण बने। यह जीवन भोग-विलास के लिए नहीं मिला है; न यह व्यर्थ की बातों मे खोने के लिए मिला है।

आजकल जमाना कुछ अजीब-सा है। कौटुम्बिक जीवन को ऊँचा और मधुर बनाने की ओर तो किसी का ध्यान नही है पर समाज और देश को ऊँचा उठाने के लिए सभी चिल्ला रहे है। यह बात ऐसी ही है जैसे जड़ में पानी न डालकर पत्तियो को सींचना और यह आशा करना कि वे हरी-भरी हो

गृह-जीवन सब सुखोंका मूल है

जायँगी। समाज और देश-सेवा-व्रती भाइयो के मुँह से अकसर यह बात सुनी जाती है कि युवको ने देश को ऊँचा उठाने की लड़ाई में कोई खास त्याग नहीं किया पर ये लोग यह कहकर मानो अपने ही रास्ते की भूल स्वीकार करते हैं। अरे, आपने अपने युवकों को इस योग्य ही कब बनाया? आपने अपने घरो को, अपने कुटुम्बो को सुधारने और ऊँचा उठाने, अपने घर के प्रत्येक भाई-बहन को गौरवमय बनाने का प्रयत्न कब किया? इस-लिए जहाँ-जहाँ सफलता मिल भी जाती है वहाँ भी नाम के लिए, पद के लिए, अधिकार के लिए—या अन्य छोटे-छोटे स्वार्थों के लिए दलबन्दियाँ होने लगती हैं, ईर्ष्या-द्वेष, दम्भ और कलह का प्रचार होता है। एक ओर अपनी सफलता पर हम गर्व से फूले नहीं समाते पर दूसरी ओर क्षण भर के लिए यह नही सोचते कि इस प्रकार की झूठी सफलता की कितनी जबर्दस्त कीमत चुकानी पड़ती है। इसके कारण समाज मे न जाने कितनी विषैली भावनायें फैल रही है। इसका नाम सफलता नहीं है; इसका नाम उन्नति नही है। और इसका कारण यह है कि जिस नींव पर हम अपनी दीवार खड़ी करना चाहते हैं वह ख़राब है और दुनिया के सामने अपनी भी एक इमारत खडी कर देने की जल्दी मे हम उस नींव को सुधारने का धीरज धारण करना उचित नही समझते। जो कुटुम्ब या घर समाज की जीवन-शक्ति का सोता है; जिससे सारे समाज के भविष्य को बनाने या बिगाड़ने वाले भाई-बहन निकलकर दुनिया मे जाते है उसमे सुधार करने, उसे प्रेमपूर्ण और मधुर बनाने, उसे स्वस्थ जल वायु पहुँचाने का प्रयत्न आज कितने लोग कर रहे हैं? मै देश की हित-चिन्ता में पडे हुए या समाज-सुधार मे रात-दिन बितानेवाले अपने अनेक ऐसे मित्रो को जानता हूँ जिनका घरेलू जीवन बहुत ही दुःखपूर्ण और अयोग्य है। पर अपनी धुन मे वे इधर ध्यान ही कब देते हैं? विहार के मेरे एक मित्र हैं जो इस

समय एक प्रतिष्ठित नेता माने जाते है पर उनका गृह-जीवन बहुत दुःख-पूर्ण है। वे घर से सदा भागते फिरते है। उन्हे शान्ति नही मिलती है। उनकी पत्नी अलग दुखी है; उनके माता-पिता अलग अपनी खिचड़ी पकाते रहते हैं। लडके उच्छृङ्खल जीवन बिता रहे हैं। वे बेचारे हृदय मे बड़े दुखी है। कभी-कभी उनकी इच्छा होती है कि सब कुछ छोड़कर घर को आदर्श शान्ति-गृह बनाने की कोशिश करे और लड़को का भविष्य हाथ मे ले लें। पर जो बोझ उन्होंने उठा रक्खा है उससे कुछ ऐसी आसक्ति हो गई है कि छूटता नहीं। आज देश मे इस तरह के कुटुम्ब तीन-चौथाई होंगे जिनका समय और जीवन इस तरह बीत रहा है कि उनके, समाज के, देश के और मनुष्यता के विकास के लिए वे बिलकुल निकम्मे और अनुपयोगी होते जा रहे हैं। परस्पर जैसा सम्बन्ध होना चाहिए वैसा नहीं है। स्त्री का सहधर्मिणी नाम बिलकुल व्यर्थ-सा हो रहा है। पुरुष बाहरी दुनिया के कामों मे इस तरह डूबते जाते है कि घर की उन्हे सुध नहीं। स्त्रियॉ मन-मारे दुःखी और उदास-सी घरों मे पड़ी किसी तरह जीवन के दिन काट रही हैं। जो योग्य है, समझदार बहनें हैं, जिनके हृदय मे पति-भक्ति की यथेष्ट मात्रा है वे पति को चिन्ता से मुक्त रखने के लिए अपने दिल के रोने को दिल मे ही छिपाकर रखती हैं। वे रोते हुए दिल पर हॅसी का परदा भी डालना चाहती है। पति के पूछने पर भी अपने दिल में अनुभव होनेवाले अभाव की बात बहुत कम कहती हैं—इसलिए कि उनकी—पति की चिन्ता, उनका बोझ न बढ़ जाय। यह स्त्री का त्याग है; यह उसकी महत्ता है। पढी-लिखी न होकर भी विवाह के तत्व को उसने पूरी तरह जीवन में मिला लिया है और विवाह के समय की जाने वाली प्रतिज्ञाओ का अर्थ न समझकर भी उसने उसका उससे कही अधिक पालन किया है जितना उन प्रतिज्ञाओं का मतलब है। दूसरी

ओर सब-कुछ समझने-बूझने की बुद्धि और करने की ताकत रख कर भी, इन प्रतिज्ञाओं के महत्व की व्याख्या करके भी, पुरुष—पति—अपनी पत्नी मे अपने को मिला नही सकता है। वह पत्नी का उपयोग अन्य बातो के लिए करना चाहता है; उसकी दुनिया मे पत्नी है पर और भी बहुत-सी बाते हैं; पर पत्नी के लिए तो पति ही परम-धर्म है, वही उसकी दुनिया रूपी परिधि या गोलक का केन्द्र है। उसके लिए वह सब कुछ छोड़ सकती है—छोड़ती ही है पर पति जब वह अपनी पत्नी को बहुत प्यार करता हो तब भी उसके लिए—उसके सुख के लिए, उसकी तृप्ति के लिए बाहरी दुनिया का छोड़ना नहीं जानता। दुनिया के प्रलोभनो, संसार के सामने अच्छे रूप मे प्रकट होने की इच्छा के आकर्षण के सामने वह बहुत कमजोर साबित होता है। अभी एक दिन पतिव्रत के माहात्म्य के सम्बन्ध मे एक बहन से मेरी बातचीत हो रही थी। पुराणो मे आई हुई सती नारियो की कथाओ मे कितना दूध है और कितना पानी है यह मैं नहीं जानता पर उसे मैं इस समय की स्त्रियो मे एक आदर्श नारी समझता हूँ। वह बोली—"यदि मैं उन्हे किसी स्त्री के साथ दुष्कर्म करते अपनी ऑखो से भी देखलूँ तो उनके प्रति मेरी भक्ति कम नहीं हो सकती; मैं उन्हे छोड़ने की कल्पना भी नहीं कर सकती। उनको वे देखे; मेरे लिए हर हालत मे वे एक हैं!" इससे बढ़कर त्याग की, इससे ऊँचे भक्ति-भाव की कल्पना और क्या की जा सकती है? पर जहॉ उसने पति के लिए अपने सब सुखो का बलिदान कर दिया; उन्हींको सुखी करने को उसने अपना परम धर्म माना वहॉ पति महोदय ने उसके सुखो के लिए अपने कार्यक्रम में परिवर्तन करना, अपने जीवन की धारा से ज़रा भी हटकर उसके लिए अपने सुखो को छोड़ने का उदाहरण नहीं उपस्थित किया। यह पुरुष और स्त्री का अन्तर है।

इसलिए यद्यपि समाज की उन्नति का मूल आधार सुखमय, शान्त और सन्तुष्ट गृह-जीवन है और यह तभी हो सकता है जब पुरुष-स्त्री, पति पत्नी दोनो एक दूसरे के अस्तित्व में, अपने को मिला देने, एक-दूसरे के अन्दर खो जाने की कोशिश करे। व्यक्ति और कुटुम्ब के अच्छा होने से समाज की उन्नति अपने आप हो जायगी क्योंकि व्यक्तियों एवं कुटुम्बों के मिलने से ही समाज बनता है पर यदि व्यक्ति और कुटुम्ब को ऊँचा उठाये बिना समाज-सेवा की यूरोपीय प्रणाली का प्रचार किया जायगा तो समाज की भौतिक समृद्धि तो बढ़ जायगी पर व्यक्ति अर्थात् समाज का निर्माण करने वाले लोग दिन पर दिन गिरते और कमजोर होते जायँगे और स्वभावतः व्यक्तिगत और सार्वजनिक दो प्रकार के, और बहुत करके परस्पर-विरोधी जीवन बनते जायँगे जैसा कि आज भी हो रहा है। जहाँ व्यक्ति एवं कुटुम्ब की पवित्रता और उन्नति का भाव प्रधान रहता है वहाँ व्यक्तिगत और सामाजिक दोनो प्रकार का जीवन ऊँचा होता जाता है क्योंकि सामाजिक जीवन का अच्छा होना व्यक्तिगत जीवन पर उससे अधिक निर्भर है जितना व्यक्तिगत जीवन का अच्छा होना सामाजिक जीवन पर निर्भर है। प्राचीन समय में भारत की उन्नति इसीलिए हुई थी कि हमारा उद्देश्य समाज-सेवा उतना नहीं, जितना आत्म-शुद्धि करके शान्त एव संयत जीवन बिताना था। उसीसे अपने आप समाज की सेवा हो जाती थी। जब समाज-सेवा का भाव प्रबल हो जाता है तो व्यक्तिगत जीवन के संस्कार की ओर से ध्यान हट जाता है और दूसरों की उन्नति के उपदेश में ही अपनी उन्नति का ख़याल आ जाता है; इससे समाज का भी पतन होता है। वह ऊपर से उन्नत और समृद्ध दिखाई देकर भी भीतर से निस्सार, खोखला और अशान्त रहता है। कहते हैं कि एकबार बीरबल की सलाह से अकबर ने एक बावड़ी खुदवाई; उसमें पानी नहीं

था। उसने आज्ञा दी कि रात को सब लोग इसमे एक एक घड़ा दूध छोड जायँ। रात को अँधेरे मे प्रत्येक ने सोचा कि सब तो दूध छोड़ेंगे ही यदि मैं चुपके से एक घड़ा पानी डाल जाऊँ तो उतने दूध मे क्या मालूम होगा? सुबह देखा गया तो बावड़ी पानी से भरी थी और दूध का नाम भी न था।

समाज की भावना जहाँ प्रधान होती है वहाँ यही होता है। पर यदि लोगो ने केवल अपने कर्तव्य का ध्यान रक्खा होता तो बावड़ी दूध से भरी होती। इसलिए तुम इस बात को अच्छी तरह समझ लो कि गृह या कुटुम्ब समाज की सब प्रकार की शक्ति का सोता है; वह समाज, देश और मनुष्यता का मूल पोषण-गृह ('नर्सरी') है। जो आदमी एक आदर्श कुटुम्ब के सुखमय शान्त गृहजीवन के विकास मे अपना समय और अपनी शक्ति लगाता है वह निश्चय ही समाज की जड़ मजबूत करता और उसकी सच्ची सेवा करता है। इसलिए तुम सदा याद रक्खो सुन्दर शान्त और सन्तुष्ट गृह-जीवन सब सुखो का मूल है। उसको मधुर बनाना प्रत्येक भाई-बहन और विशेषतः प्रत्येक विवाहित स्त्री-पुरुष, पति-पत्नी का काम है। जबतक यह न होगा, न देश की सच्ची उन्नति होगी; न समाज को सच्चा रास्ता दिखाई देगा!

जैसा मैं ऊपर लिख चुका हूँ आज समाज मे अनेक ऐसी स्त्रियाँ है जिन्होने पति की चिन्ता न बढ़ाने के ख़याल से अपने मन के दुःखो को छिपा रक्खा है। पति जो पत्नी की सबसे बड़ी पूँजी है यदि दुनिया के बाहरी कामो मे ही लग जाय तो पत्नी के लिए सब-कुछ समझते हुए भी अनमनी रहना

क्या यह शरीर का मोह है?

स्वाभाविक है। मनुष्य मे बुद्धि ही सब-कुछ नहीं है; हृदय भी कोई चीज़ है बल्कि बुद्धि से हृदय की शक्ति सदा ज़बर्दस्त होती है। और विशेषतः

स्त्री के अन्दर—जो पुरुष की भाँति बुद्धि का देवता नहीं, हृदय की देवी है। ऐसी स्त्रियाँ यद्यपि पति के कार्यों, समाज एवं देश की उनकी सेवाओं से अपने अन्दर गौरव का अनुभव करती है फिर भी उनका ध्यान सदा पति की ओर ही लगा रहता है। अपने एक घनिष्ट और आदरणीय बन्धु से एक दिन मैं स्त्रियों के हृदय की इस भावना के सम्बन्ध में बात-चीत कर रहा था तब उन्होंने कहा कि स्त्री की यह चिन्ता शरीर के मोह के कारण है। यदि हृदय मिल जाय और प्रेम ऊँचे दर्जे पर पहुँच गया हो तो ऐसा अनुभव करने की जरूरत नही। मुझे उनकी यह बात कोरी दलील-सी मालूम पडी। मैंने उनसे आदरपूर्वक कहा, ऐसी बात नहीं है। मनुष्य के दूर हो जाने या मरने पर विशुद्ध शारीरिक मोह के कारण ही दुःख नहीं होता। मनुष्य के हृदय मे, बुद्धि में, ज्ञान में जो कुछ प्रेम, नीति और अनुभव है उन्हें वह शरीर के द्वारा ही प्रकट कर सकता है। उसके पास जो कुछ है उसे प्रकट करने का एकमात्र साधन शरीर है। शरीर से ही वह देश की सेवा करता है; शरीर के साधन द्वारा ही वह ज्ञान देकर हमें ऊँचा उठाता है, बिना शरीर के वह जो कुछ है उसे न प्रकट कर सकता है, न उसका फायदा किसी को पहुँचा सकता है, इसलिए देही या शरीरधारी के पास न रहने पर उसके अन्दर जो कुछ अच्छा है उसका लाभ भी नहीं मिलता या बहुत-कम मिलता है। इसी-लिए जिन्हें हम भक्ति करते है, जिन्हे व्यक्तिगत या सार्वजनिक मामलो में अपना रास्ता दिखाने वाला समझते हैं उनके पास न रहने या दुनिया से कूच कर जाने पर जीवन मे सूनेपन का, अभाव का अनुभव होता है। और इसीलिए जिसे हम प्रेम करते हैं, जिसको अपने जीवन के लिए, अपनी उन्नति और विकास के लिए आवश्यक समझते हैं उसके पास न रहने पर उसके अनुभव का, उसकी सहानुभूति और प्रेम का, उसकी बुद्धि

और ज्ञान का लाभ नही उठा सकते; उसके न रहने पर या दूर चले जाने पर जैसे अपने जीवन की कमाई दूर चली जाती है। पत्नी पति को ही सर्वस्व समझती है इसलिए उसके लिए यह अनुभव होना स्वाभाविक है, इस दर्द को, इस अभाव को पुरुष, जिसके लिए दुनिया मे सान्त्वना की, आशा की बहुत-सी जगहे हैं और जिसके पास और बहुत-से काम हैं, अपनी दलीलो के बल पर समझ नही सकता !

इसलिए यद्यपि यह स्वाभाविक है जो स्त्री जितनी ही पतिभक्त होगी, पति को जितना ही अधिक प्रेम करती होगी वह उसकी अनुपस्थिति और अभाव का उतना ही अनुभव करेगी पर तुम बहनो को सदा यह सोचना चाहिए कि यह देखना, इसका ध्यान रखना और पत्नी को सब प्रकार सुखी एवं सन्तुष्ट रखना पतियो का कर्तव्य है। यदि वे अपना कर्तव्य पालन न कर सकें तो तुम लोग अपना कर्तव्य न भूलो। तुम्हारा कर्त्तव्य यही है कि ज़रूरत पड़ने पर पति के सन्तोष के लिए अपने उन सुखो का भी त्याग कर दो जिनपर न्यायतः तुम्हारा अधिकार है! पति के लिए, उसके दूर रहने पर, इस प्रकार की चिन्ता शरीर का मोह नहीं बल्कि पतिव्रत और पतिभक्ति का ही अंग है।

विवाह की वेदी पर पति पत्नी के साथ जिस प्रतिज्ञा मे बँधता है उसके अनुसार वह अपनी सहधर्मिणी को बहुत थोड़ा देता है। पत्नी उसे अपनी

खोया हुआ प्रेम

सारी स्वतन्त्रता, अपना प्रेम, अपना शरीर, अपने प्राण, अपना सर्वस्व सौंप देती है। उसके बदले में पति—पुरुष—उसे क्या देता है? वह अपनी स्वतन्त्रता अपने पास रखता है; वह अपनी दुनिया, अपने सिद्धान्त की रचना करने का अधिकार भी अपने पास रखता है। वह चाहता है कि मैं उस दुनिया मे पत्नी को जिस जगह और जिस आसन पर बैठा दूँ वहाँ बैठने मे वह सन्तोष मानकर चुपचाप

मेरी आराधना करती रहे; मुझे सब कुछ मानकर मुझसे प्रेम करे और जीवन के प्रत्येक विषय में मुझे ही अपना पथ-प्रदर्शक बनाये। इतनी साधना के बाद वह पत्नी को इस योग्य समझता है कि कभी-कभी दुनिया की झझटो से थोडा समय निकालकर उससे दो-चार मीठी बाते करले और प्रेम की लम्बी-चौड़ी व्याख्यायें करके उसे भुलाये रक्खे ! पति का यह थोड़ा-सा प्रेम ही पत्नी की वह सारी पूँजी है जो उसे इस तपस्या के कारण मिलती है। इस पूँजी के बल पर ही वह दुनिया को भूलकर केवल पति के लिए सब कठिनाइयाँ उठाती है। ऐसी हालत मे स्त्रियाँ इस प्रेम को सुरक्षित रखने के लिए प्रयत्न करे या उसके इधर-उधर होने या डिगने की आशंका से चिन्तित और दुखित हो जायँ तो यह बिल्कुल स्वाभाविक है।

पति के इस प्रेम को स्त्रियाँ बहुत सम्हाल कर रखती हैं, पर साधारण पुरुष के मन में जब तूफान आता है तो वह अपने को सम्हाल कर रख नहीं सकता—उसका वह असयत प्रेम उसके अग-अग से फूटकर वह निकलता है ! पर उसके प्रेम का यह ज्वार, यह तूफान जब शान्त होता है तो वह अतृप्त-सा दुनिया के और कामों में अपने को भुलाने की कोशिश करता है। आरभ का वह आकर्षण, वे प्रेमभरी बातें, कमजोर पड़ने लगती है। इसके विरुद्ध स्त्री आरभ मे अपने को बहुत छिपाती है। उसके हृदय मे बहुत धीरे धीरे उफान आता है और वह धीरे-धीरे एवं चुपचाप ही अपनी बलि चढ़ाना पसन्द करती है पर उसका दान फिर जीवन भर कभी समाप्त नही होता; वह सदा देती ही रहती है। उसका प्रेम दिन-पर-दिन गहरा और व्यापक होता जाता है।[1]

---

१. भर्तृहरि ने सच्चे-झूठ स्नेह का वर्णन करते हुए लिखा है—

आरंभ गुर्वी क्षयिणी क्रमेण लघ्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात्।
दिनस्य पूर्वार्द्ध परार्द्ध भिन्ना छायेव मैत्री खल सज्जानाम्॥

फ्रांस (यूरोप) के विश्वविख्यात लेखक अनातोल फ्रांस ने एक जगह विल्कुल ठीक लिखा है।—"स्त्री वादा नहीं करती पर पुरुष के लिए अपना सव कुछ निछावर कर देती है। पुरुष वहुत वादे करते हैं पर समय आने पर झुकर जाते हैं।" इसलिए स्त्रियो की सारी आशा पति के उस थोड़े-से, कृपा करके दिये हुए प्रेम पर ही अवलम्बित है। इसके विना उसका जीवन सूना हो जाता है। इसलिए बहन! विवाह होने के वाद तुम सदा इस वात का ध्यान रखना कि तुमसे कोई भी छोटे-से-छोटा ऐसा काम न हो जिससे पति के मन पर उसका खराब असर पड़े। पुरुष वहुत जल्दी घवरा जाता है और एक वार जो प्रेम खोजाता है वह फिर लौटाया नहीं जा सकता! तुम्हें उसे वहुत सँजोकर रखना चाहिए। तुम्हारी जरा-सी गलती, जरा-सी दिल खट्टा करने वाली बात तुम्हारे सारे जीवन को सूना कर दे सकती है। फिर चाहे न्याय तुम्हारे ही पक्ष में हो पर वर्तमान समाज में पति-पत्नी के सम्बन्ध की जो अवस्था है उसमें, तुम्हारा दोष न होते हुए भी, तुम्हें ही रोना और पछताना पड़ेगा।

सन्तान की इच्छा स्वाभाविक है

हमारे धर्म-शास्त्रों में विवाह का मुख्य उद्देश्य सन्तानोत्पत्ति है। विवाह मे पाणि-ग्रहण के समय ही वर कहता है कि "तू सुखपूर्वक मेरे साथ रहकर उत्तम सन्तान उत्पन्न करने वाली हो।" इसमे संकोच की न कोई बात है, न बुराई है। विवाह को भोग-विलास का साधन न वनाकर समाज को, देश को, संसार को अच्छे युवक एवं अच्छी कन्यायें भेंट करने का साधन वनाया गया था। समाज के ख़याल से तो सन्तानोत्पत्ति उचित है ही पर

अर्थात् सच्ची मित्रता दोपहर के वाद वढ़ने वाली छाया समान पहले छोटी रहती है और फिर धीरे-धीरे वढ़ती जाती है।

यदि मानसिक और आध्यात्मिक भावनाओं की दृष्टि से देखें तो भी यह मालूम होगा कि मनुष्य के अन्दर सन्तान की इच्छा स्वाभाविक है।

पहली बात तो यह है कि प्रत्येक मनुष्य के मन में अमर होने, अपने को सदा सुरक्षित रखने की भावना प्राकृतिक है। इसीलिए वेद में प्रार्थना है—

'मृत्योर्माऽमृतं गमय'

अर्थात् "मुझे मृत्यु से अमरता की ओर ले चलो।" मनुष्य की प्रत्येक इच्छा, प्रत्येक चेष्टा और प्रत्येक भाव-भगी एवं अंग-संचालन मे अपने बचाव की प्राकृतिक क्रिया दिखाई पडती है। इसका मतलब यही है कि वह विनाश से, मृत्यु से बचकर अमर रहना चाहता है। लेकिन वह जानता है कि प्रत्येक शरीरधारी के लिए मृत्यु अनिवार्य है। जो पैदा हुआ है वह मरेगा। इसलिए वह खुद तो सदा जीता रह नहीं सकता पर अपने ही रक्त-मॉस से बना हुआ अपना एक रूप, अपना एक प्रतिनिधि दुनिया में छोड़ जाना चाहता है—कुल या वश चलाने की भावना के अंदर यही बात है।

दूसरी बात यह है कि जब हम बच्चों के निर्मल जीवन को, उनके भेद-भाव रहित भावों को, उनके निर्दोष विनोद को देखते हैं तो स्वभा-वतः मन में आता है कि अहा! इनका जीवन कितना सुन्दर, कितना निर्मल है! दुनिया की कठिनाइयो एव बुराइयों से ये दूर हैं। तब अपने लड़कपन के दिन याद आने लगते हैं; वर्तमान अवस्था में कठोरता और बनावट के अनुभव होने लगते हैं और मन में आता है कि क्या अच्छा हो, वे दिन फिर आ जायँ। किन्तु वे दिन आते नहीं, आ भी नहीं सकते; इसलिए सन्तान के, बच्चे के रूप मे उन्हें लाने की भावना, कभी साफ-साफ और कभी अस्पष्ट-सी, मन मे उदय होती है। यह जीवन की आरम्भिक याद है जो बड़े होने पर संसार के परदे मे छिप जाती है किन्तु

बच्चो को देखकर, परदे को हटाकर बाहर झॉकने लगती है। हिन्दी की सुप्रसिद्ध महिला-कवि श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान ने 'मेरा नया बचपन' नामक एक कविता मे इस भाव को बड़ी अच्छी तरह व्यक्त किया है। उन्होने माता के हृदय की सच्ची भावनाये लिखी हैं। कविता बड़ी है, सबकी सब देना तो कठिन है पर कुछ अश, जो प्रसंग के अनुकूल है, यहाँ देता हूँ—

बार-बार आती है मुझको
मधुर याद बचपन तेरी।
गया, लेगया तू जीवन की
सबसे मस्त खुशी मेरी॥

× × ×

वह सुख का साम्राज्य छोड़कर
मैं मतवाली बड़ी हुई।
लुटी हुई, कुछ ठगी हुई सी
दौड़ द्वार पर खड़ी हुई॥

× × ×

दिल मे एक चुभन सी-थी
यह दुनिया सब अलबेली थी।
मन में एक पहेली थी
मैं सबके बीच अकेली थी॥
मिला, खोजती थी जिसको
हे बचपन! ठगा दिया तूने।
अरे! जवानी के फंदे मे
मुझको फँसा दिया तूने॥

सब गलियाँ इसकी भी देखीं
उसकी खुशियाँ न्यारी हैं।

॥

माना मैंने युवा काल का
जीवन खूब निराला है।
आकांक्षा, पुरुषार्थ, ज्ञान का
उदय मोहने वाला है॥
किन्तु यहाँ झंझट है भारी
युद्ध-क्षेत्र संसार बना।
चिन्ता के चक्कर में पड़कर
जीवन भी है भार बना॥
आजा, बचपन! एक बार फिर
दे दे अपनी निर्मल शान्ति।
व्याकुल व्यथा मिटाने वाली
वह अपनी प्राकृत विश्रान्ति॥

× × ×

मैं बचपन को बुला रही थी
बोल उठी बिटिया मेरी।
नन्दन वन-सी फूल उठी
यह छोटी-सी कुटिया मेरी॥

× × ×

पाया मैंने बचपन फिर से
बचपन बेटी बन आया।

उसकी मंजुल मूर्ति देखकर
मुझमे नवजीवन आया ॥
मैं भी उसके साथ खेलती
खाती हूँ, तुतलाती हूँ।
मिलकर उसके साथ स्वयं
मैं भी बच्ची बन जाती हूँ ॥
जिसे खोजती थी बरसो से
अब जाकर उसको पाया।
भाग गया था मुझे छोड़कर
वह बचपन फिर से आया ॥

इस प्रकार सन्तान की इच्छा अपने बचपन को फिर से लौटा लाने का भी एक प्रयत्न है। इन आध्यात्मिक और मानसिक कारणों के अतिरिक्त इसके व्यावहारिक कारण भी हैं। बात यह है कि विवाह के बाद पति ही पत्नी का एकमात्र सखा रह जाता है। वहीं से उसको सान्त्वना मिल सकती है; वहीं से सुख मिल सकता है। किन्तु पुरुष प्रायः संसार के अनेक प्रकार के काम-काज में अपने को ऐसा फँसा लेता है कि वह स्त्री को, सर्वदा साथ रखने या स्वयं साथ रहने की अपनी जिम्मेदारी को बहुत थोड़ी मात्रा में पूरी कर सकता है। इसलिए स्त्री को—पत्नी को—जीवन का एक सहारा ढूँढने की जरूरत मालूम पड़ती है। उसे एक ऐसी चीज चाहिए जिससे वह अपना मन बहला सके; जिसके लिए उसे अपने जीवन मे स्फूर्ति और साहस लाने की आवश्यकता अनुभव करे; जिसपर वह अपनी ममता, दया, स्नेह इत्यादि कोमल भावनाओं को निछावर कर सके; और जैसे वह पति पर निर्भर करती है वैसे ही कोई उस पर भी पूरी तरह निर्भर करने वाला हो; जैसे वह पति के बिना रह नही सकती,

जैसे पति ही उसका सर्वस्व है, वैसे ही कोई उसकी भी उतनी ही आवश्यकता समझे; उसके बिना रह न सके। बच्चा ही वह वस्तु है जो इन भावों की भूख मिटा सकता है। इसके अतिरिक्त बच्चा पति-पत्नी के विवाहित प्रेम को दृढ़ करनेवाला बंधन भी है। इसीलिए पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो मे सन्तान की इच्छा अधिक प्रबल होती है। सन्तान माता की आशा है और उसके दिल की शान्ति है। आरम्भ से लेकर अन्त तक उसका जीवन कर्तव्यमय है। इस कर्तव्यमय मरुभूमि मे बच्चा ही वह हरियाली है जहाँ चलते-चलते थक जाने पर वह साँस लेती और थकावट दूर करती है। बच्चों का अभाव या उनका मूल्य पुरुष पूरी तरह समझ नहीं सकते। श्रीमती सुभद्राकुमारी ने गौरवमयी आत्म-तृप्ति के साथ लिखा है—

परिचय पूछ रहे हो मुझसे,
कैसे परिचय दूँ इसका?
वही जान सकता है इसको,
माता का दिल है जिसका।

इसीलिए हिन्दू-धर्म मे नारी के आदर्श की सफलता माता के रूप मे प्रकट होने में मानी गई है। कन्या में बालपन की सरलता होती है, नारी में भोग-विलास की प्रधानता होती है; और माता में दया, ममता और वात्सल्य के भाव उमड़ते रहते हैं इसलिए माता, लड़की के समान ही पवित्र मानकर पूजा करने योग्य बताई गई है।

माता हो जाने पर नारी के त्यागमय जीवन का, उसकी मगलमयी और सदा देनेवाली मूर्ति का आदर्श पूरा होता है। सन्तानवती स्त्री के मन मे जीवन के प्रति बहुत ही संयत और उच्च कोटि का भाव जाग्रत होता है। यह ठीक है कि बहुत-सी स्त्रियाँ माता होने पर भी माता नहीं

बन पाती और उस अवस्था मे भी उनका रमणी रूप ही प्रधान रहता है फिर भी अधिकाश स्त्रियो मे बच्चो के कारण स्वतः संयम का भाव जाग्रत होता है।

पर सन्तान-प्रेम का यह मतलब नही कि ढेर के ढेर बच्चे पैदा होते चलें। सन्तान उत्पन्न कर देने से ही माता-पिता का कर्तव्य पूरा नहीं हो जाता! उनके पालन-पोषण, उनकी शिक्षा-दीक्षा की ज़बरदस्त ज़िम्मेदारी भी उन पर पड़ती है। निर्बल एव अयोग्य बच्चो की अपेक्षा एक सबल और होनहार सन्तान अधिक गौरव की बात है। फिर अधिक सन्तान की इच्छा असंयम और भोग-विलास का कारण बन जाती है। इसलिए प्रत्येक विवाहित बहन सदा यह खयाल रक्खे कि माता बन जाना तो सरल है पर माता की ज़िम्मेदारी और उसके पद के गौरव को सॅभालना बडा कठिन है।

हिन्दू-धर्म मे बहनो, बहुओ और माताओ के लिए अनेक प्रकार के व्रत इत्यादि रखने की व्यवस्था है। भाई के लिए, पति के लिए, पुत्र के लिये, भैयादूज, वट-सावित्री, दुर्गाष्टमी, पुत्रदा एकादशी इत्यादि व्रत स्त्रियॉ करती है। इनमे कुछ तो बडे ही पवित्र व्रत हैं। जैसे भैयादूज, वट-सावित्री, हरतालिका इत्यादि। इनमें भाई की हित-कामना और प्रेम-पूर्ण सम्बन्ध को कायम रखने की भावना, पति-व्रत धर्म का महत्व और प्रभाव तथा पति के कल्याण की कामना भरी हुई है। यह भी स्त्री-जाति की उच्चता और महत्ता का सबूत है कि वह अपने भाइयो, पुत्रों और पतियो के लिए, उनके मङ्गल और कल्याण के लिए, धर्म की शरण लेती है; उपवास करती हैं; स्थिरचित्त से भगवान् को पुकारती है जब कि भाई, पुत्र और पति इन अबलाओं की रक्षा के लिए कोई भी ऐसी बात करते देखे नही जाते। इसीलिए जहॉ स्त्री पति,

व्रत और त्योहार

को, बहन भाई को और माँ पुत्र को भगवान् की देन समझकर, हृदय के अत्यन्त पवित्र और सुरक्षित स्थान पर बैठाकर श्रद्धा, ममता और वात्सल्य स्नेहवश अपने मे दूर तक मिला लेती है वहाँ पुरुषो के लिए इन सम्बन्धों में और विशेषतः पत्नी के सम्बन्ध मे सुविधा और उपयोगिता का ही भाव ज़्यादा रहता है।

आजकल, समय के साथ, अच्छी-बुरी सभी बातो से श्रद्धा उठती जाती है। तर्क करने, बहस करने की भावना बढती जाती है और यद्यपि एक सीमा तक इसकी ज़रूरत है, पर यह भूल जाना ठीक नही है कि ऊँचे आदर्शों की स्थापना और इतिहास का निर्माण उन्हीं लोगो के द्वारा होता है जिन्हे अपने अन्दर, अपने काम के अन्दर अटूट विश्वास और श्रद्धा होती है। इस श्रद्धा से मनुष्य का मन कोमल, दूसरो के दुःख को समझनेवाला, अनुभवशील और नम्र होता है इसलिए उसमे अच्छी बातो की—धर्म की भावना बड़ी प्रबल होती है।

त्यौहारों का, व्रतो और उत्सवो का भी आजकल 'बायकाट' होता जा रहा है। यह सब एक प्रवाह में बिना तौले, बिना जाने-बूझे बहते चले जाने की प्रवृत्ति है। एक ओर कट्टरो मे धर्म की जो अन्धी और बुद्धिहीन व्याख्या दिखाई पडती है वही आजकल के बहुत 'सुधारकों' मे भी पाई जाती है। जैसे कट्टरपन्थी प्रत्येक नई चीज़ को देखते ही नाक-भौं सिकोडते है वैसे ही नवीनपन्थी प्रत्येक पुरानी बात को तोडने पर तुले हुए हैं। इन दोनों की जीवन-धारा में विशेष अन्तर नहीं है। पहला दल प्राचीन के प्रति अन्धा है और जो स्वयं करता है बस उसीको ठीक सिद्ध करके दिखाना चाहता है और दूसरा दल नवीन के प्रति अन्धा है, जो प्रत्येक नई बात को—नाचने से लेकर सिगरेट पीने तक हरेक बात को—ठीक कहकर पुरानो की हँसी उडाता है। दोनो की मनोवृत्तियाँ

अन्धी, अमौलिक और गुलाम हैं। चाहिए यह कि जहाँ भी अच्छी बात हो, लेने के लिए हम सदा तैयार रहे।

इस दृष्टि से हमारे यहाँ वहुत-से त्यौहार, व्रत और उत्सव ऐसे है जिनका भाव बडा पवित्र है। इनको रोकना नहीं चाहिए; हाँ, उनमें उचित सुधार करने और उन भावनाओ को जगाने की कोशिश करनी चाहिए जिनके लिये वे प्रचलित किये गये थे। हाँ, तुम्हे इन त्यौहारो के बाहरी आडम्बरो मे, जिनसे देव-पूजा की जगह पेट-पूजा अधिक होती है, न पड़कर केवल उनके भावो का अनुसरण करना चाहिए। त्यौहारो का जाति के जीवन में वड़ा महत्व है। वे किसी खास और स्मरण रखने योग्य घटना की यादगार होते हैं। उस दिन उस घटना की चर्चा, आलोचना, विचार करना चाहिए और इसमे जो अच्छी बातें, अच्छे भाव हो उन्हे अपनाना चाहिए।

चिरयौवन

ज्यो-ज्यो अवस्था बढ़ती जाती है स्त्रियो के मन मे निराशा घर करती जाती है। एक दिन एक बहन को मैंने खाने को एक फल दिया तो वह बोली—"भाई! अब मै तो बूढ़ी हो चली; क्या मेरे इन चीजों को खाने के दिन हैं? (बच्ची को दिखाकर) उसे दे दो।" इस बहन की अवस्था पच्चीस वर्ष से भी कम है, जो जवानी की खास अवस्था है, पर उसके मुँह से ऐसी बात सुनकर मैं तो भौंचक रह गया! इस वाक्य मे त्याग नहीं है, वैराग्य नहीं है; निराशा और दुःख अधिक है। आजकल हमारे देश की स्त्रियो का स्वास्थ्य, उमग-उत्साह, सब कुछ बीस से तीस वर्ष की आयु के अन्दर ही चला जाता है। आज-कल जब हम एक तरफ २०–२२ वर्ष की युवती लडकियों को देखते हैं और उनसे उनकी चालीस-पचास वर्ष की माताओ और पचास-साठ वर्ष की सासों को मिलाते हैं, जिनके उनके समान कई लड़के लडकियाँ होती हैं, तो दिल मे चोट-सी लगती है। सास और माँ भली-

चगी, स्वस्थ और उमंग वाली है और बहू या कन्या अपने पीले मुँह और दिन-दिन छीजते हुए शरीर को लिये अपाहिज और पंगु सी हो रही है। आजकल की परदे से बाहर रहकर स्वस्थ जल-वायु का लाभ उठाने वाली स्त्रियो को आज से तीस वर्ष पहले व्याही गई परदे मे मकान की गन्दी चहारदीवारी के बीच रहने वाली स्त्रियो से मिला लो। इनकी शादी बहुत लडकपन में दस-बारह की अवस्था में हुई थी; इन्होने भोग-विलास का जीवन बिताया; सुधार की कोई भी सुविधा इन्हे नही मिली; बाज-बाज के ८-८, १०-१० हृष्ट-पुष्ट सन्तानें मौजूद हैं फिर भी आज-कल की बहुत-सी लड़कियो और आये दिन रोगी रहने वाली बहुओं से इन्हे मिला लो। वे इनकी कलाई भी सीधी न कर सकेंगी। क्या यही उन्नति का मतलब है? सौ मे पचहत्तर स्त्रियॉ आजकल स्त्री-रोगो की शिकार हैं। चाहिए तो यह था कि परदे के बाहर स्वस्थ जल-वायु में रहने के कारण, अधिक ज्ञान होने के कारण, ये पहले की स्त्रियो से अधिक स्वस्थ होतीं; पर बात बिल्कुल उल्टी है। इससे समाज की सारी संतति निकम्मी होती जा रही है। जब पहले की स्त्रियॉ पानी के चार-चार, पॉच-पॉच, भरे घड़े लेकर चलती थीं आज की फैशनेबिल लेडियो के लिए हैण्डबेग भी भारी हो रहा है। अपने बच्चे तो इनसे सम्हलते ही नहीं। अपनी माताओ, बहनों और बेटियों की यह हालत देखकर रोना आता है। प्राचीन आर्य नारियों में बुढ़ापा जल्द सुना नहीं जाता था और जो अपने तेज से बहुत दिनो तक जवान और स्वस्थ रह सकती थी, आज उनकी सन्तति की यह दशा है! क्या राणा प्रताप और शिवाजी आजकल की शौकीन कामिनियो के गर्भ से पैदा हो सकते है? क्या स्वामी रामतीर्थ और विवेकानन्द को ये बीस वर्ष मे चश्मा लगाने वाली बूढ़ी लड़कियॉ जन्म देगी? क्या अर्जुन और भीष्म, याज्ञवल्क्य और वशिष्ठ, बुद्ध और शङ्कर को पिलाने

योग्य पवित्र दूध इनकी छाती मे है ? क्या ये उस सीता को जन्म देंगी जो अपने बाये हाथ से उस धनुष को उठाकर एक तरफ रख देती थी जिसे राम ने बड़े अभिमान से तोड़ा था ? क्या ये उस सावित्री को जन्म देंगी जिसने यम को मार भगाया था ? क्या ये तेज से भरी उस सती की माता होने योग्य हैं जिसने भरी सभा मे पिता को अपने पति के अपमान के लिए फटकार कर अपने को आग की लपटो मे भस्म कर दिया था ? या इनके गर्भ से वे राजपूतानियाँ उत्पन्न होंगी जो सतीत्व के लिये कटार मार कर अपना अन्त कर लेती थीं या अपने युद्ध-भूमि से भागे हुए पतियो को देखकर कह सकती थीं कि ये हमारे पति नहीं हो सकते, इन्हे दरवाजे के अन्दर न घुसने दो ? आज या कल जब देश स्वतन्त्र होगा और उसकी गौरव-पताका फहराने वाले युवक-युवतियों की जरूरत होगी तो ये बहने क्या इन्हे इसी मरकटे शरीर से जन्म देंगी ? यह याद रक्खो कि देश की बहनो के स्वास्थ्य पर ही देश का भविष्य निर्भर है क्योकि उन्हीं की गोद मे जाति का निर्माण होगा और उन्हीं का दूध पीकर संसार को शान्ति का सदेश देनेवाले बच्चे समाज के आँगन मे खेलेंगे।

इसलिए तुम सदा अपने स्वास्थ्य पर ध्यान रक्खो। स्त्रियों को अपने स्वास्थ्य की ओर से उदासीन रहना और उसकी उपेक्षा करना न केवल अनुचित है वरं एक सामाजिक पाप है। प्रत्येक स्त्री को सदा यह आशा-भरोसा और हिम्मत रखनी चाहिए कि साठ वर्ष की अवस्था मे भी जवान बनी रहूँगी। हमारे देश की एक बड़ी-बूढी अंग्रेज स्त्री-नेता अपने को 'बयासी वर्ष की युवती' कहती थीं और उनका उत्साह, उनका परिश्रम और कभी न थकने वाली उनकी शक्ति देखकर जवानो को शर्म आती थी। बहुत-से लोग जवानी बनाये रखने की बातें करते शर्माते हैं, पर यह इसलिए कि जवानी को सिर्फ भोग-विलास का साधन समझते हैं।

वे यह भूल जाते हैं कि जवानी मे उत्साह है; जवानी मे ऊँचा उठने और अच्छे से अच्छा काम करने की लगन है; जवानी मे उत्तम भावों को जाग्रत करने का जोश है; जवानी में कर्त्तव्य पालने की शक्ति है, जवानी में सजीवता और आत्म-निर्भरता है; इसलिए जवानी बुरी चीज नहीं है। बुढापे में निर्बलता है; बुढापे में रोग है; बुढ़ापे मे निराशा है। इसीलिए देवता कभी बूढ़े नही होते; भगवान को बुढापा कभी नहीं आता। इसलिए सदा जवान बने रहने की कामना करना कोई बुरी बात नहीं है, बशर्ते कि विषय-भोग के लिए वह न हो।

दूसरी बात यह भी है कि पति-पत्नी के प्रेम में, हृदय से हृदय मिल जाने पर भी, कुछ न कुछ शारीरिक आकर्षण होता ही है। इसलिए यदि पत्नी पति का प्रेम सदा बनाये रखना चाहे तो भी उसे खूब प्रसन्न और स्वस्थ्य रहना चाहिए। उसके स्वस्थ न रहने से घर के और कामो मे भी विघ्न पड़ेगा और दिन-दिन लोग उससे ऊबते जायँगे।

बहनो को अपने स्वास्थ्य का इतना ज्यादा ध्यान रखना चाहिए कि चालीस वर्ष की अवस्था में भी वे बीस-पच्चीस की मालूम पड़े। यह बात अचरज की मालूम होगी पर असम्भव नहीं है। तुम पूछोगी कि वह कौन-सा उपाय है जिससे ऐसा हो सकता है। नीचे मैं वे बातें लिखता हूँ—

१. अविवाहित अवस्था मे माता-पिता, भाई-बहनो और विवाहित अवस्था में पति, सास-श्वसुर, देवर-देवरानियों और जेठ-जेठानियो तथा ननद इत्यादि के प्रति प्रेम रक्खो। प्रेम का अर्थ यह कि सदा तुम्हारा हृदय उनके सुख, उनकी भलाई और उनके प्रति सद्भावो से उछलता रहे। प्रेम से बढ़कर स्वास्थ्य को अच्छा बनाने वाला दूसरा पदार्थ नहीं है। प्रेम जीवन का अमृत है; प्रेम जीवन का रस है। जिसके हृदय मे प्रेम भरा हो उसे दुनिया की कोई कठिनाई निराश नहीं कर

सकती; उसका हृदय सदा उमंगो से भरा-पूरा रहता है। प्रेम से क्या असंभव है!

२. सदा दुःख को दबाकर अपने को सुखी अनुभव करो और कड़ी बात को भी हँसी मे उड़ा दो। सबसे सदा मीठी बात बोलो, जिससे तुम जिससे बोलो उसके हृदय मे उत्साह भर जाय; वह नाच उठे। सदा हँसी-खुशी से रहो।

३. सदा संयम से रहो। संयम का मतलब यह है कि हलका, और जल्द हजम होने वाला भोजन करो और उठना सोना, नहाना-धोना, खाना-पीना और पढ़ना सब काम नियत समय पर हो। शौकीनी और भोग-विलास तथा बुरी बातो से सदा दूर रहो।

४. कभी सुस्त मत बैठो। सदा अपने को काम में लगाये रक्खो और अपने काम अपने हाथ से करो।

५. सदा अच्छे भाई-बहनो के पास बैठो। गन्दी और दिल लुभाने वाली बाते करने वाली स्त्रियो या पुरुषो के पास न जाओ। अपने मन को सदा बुरे विचारो से बचाओ। सदा अच्छी बातो को ध्यान में रक्खो। केवल दिल बहलाने के ख़याल से कोई किताब मत पढ़ो; जिससे तुम्हे कुछ फायदा हो, कुछ शिक्षा मिले, जिससे तुम अच्छी बाते सीख सको, ऐसी ही किताब अपने पास रक्खो और ऐसी ही पढ़ो और उस पर बुद्धि से विचार करो। जो अच्छी बात हो उसे मन मे गाँठ बाँध लो।

६. चिन्ता कभी न करो; भगवान् मे विश्वास रखकर इसके लिए अपने को तैयार रक्खो कि जब जो बात, जो कठिनाई आ पड़ेगी उसे सह लोगी पर उस चिन्ता से हमेशा दुखी और उदास रहना ठीक नहीं है। इससे बहुत जल्द बुढ़ापा आ जाता है। हाँ, कोई गलती हो जाय तो मन में निश्चय कर लो कि आगे से वह नही होने पावेगी।

७. सारे काम नियम और व्यवस्था से करो। हर चीज़, हर काम और हर बात मे कायदा और तरतीब होनी चाहिए।

८. भूत-भविष्य की चिन्ता न करके वर्तमान को अच्छा बनाने और उसमें सुख पाने की कोशिश करो।

९. थोडी कसरत रोज करो। स्त्रियों के लिए चक्की चलाने, चर्खा कातने, स्वच्छ हवा मे थोड़ी दूर टहलने और मकान तथा कपड़ों की सफाई करने की कसरतें बहुत उपयोगी हैं।

१०. अपने हाज़मे का हमेशा ध्यान रक्खो। पेट मे कोई ख़राबी न आने दो, जितनी भूख हो बस उतना ही खाओ। इतने पर भी यदि पेट मे कोई खराबी आजाय या पाखाना साफ न आवे तो तुरन्त उसकी दवा करो। गरम दूध मे मुनक्के डालकर पीने, नीबू का रस चाटने और गुल-कन्द (सिर्फ़ गरमी मे) खाने से पेट की मामूली ख़राबी दूर हो जाती है। दर्द या ज़्यादा ख़राबी मालूम हो तो योग्य डाक्टर या वैद्य से सलाह लो। यह याद रक्खो कि सारी बीमारियो की जड़ हाज़मे की ख़राबी है। जिसे खाना ठीक समय पर हज़म हो जाता है, टट्टी साफ आती और पेट साफ रहता है, भूख ज़ोरों की लगती है उसे कोई बड़ी बीमारी तंग नहीं कर सकती। पेट की गडबड़ी से ऑखें कमजोर हो जाती है; सिर मे दर्द होने लगता है; दॉत में बदबू और कीडे पैदा हो जाते है; मुँह मुरझा जाता है; जुकाम और पेट मे जलन तथा दर्द बना रहता है; बवासीर, प्रदर, मधुमेह इत्यादि रोग हो जाते हैं; चक्कर आने लगता है; नींद नहीं आती और भोजन बेस्वाद मालूम पड़ता है। इसलिए सदा पेट को साफ रक्खो। भोजन के बाद थोड़ा लवण-भास्कर चूर्ण या नीबू या एक चम्मच खाने वाला सोडा पानी के साथ पी जाओ। थोड़ी दूर रोज टहलना बहुत अच्छी बात है।

तुम्हारे हृदय में पवित्रता आयगी और तुम्हारे अन्दर अच्छे विचारों की वृद्धि होगी।

× × × ×

वह एक साधारण गृहस्थ के घर, गृहस्थी की कठिनाइयों के बीच, पैदा हुई थी। कठिनाइयों के वीच लाड़-प्यार की जितनी सुविधायें मिल सकती हैं, उतनी उसे मिली। लड़कपन के दिन पूरे न हुए थे कि शादी हो गई—गृहस्थी का बोझ सिर पर आ पड़ा। रात-दिन की चिन्ता, अपने दुःख को छिपाकर सबको प्रसन्न रखने की उत्कण्ठा में उसका शरीर गलने लगा। कभी यह नराज़ हैं; कभी उनको मनाना है; कभी ससुर बीमार है; कभी पति को तबियत ठीक नहीं है, उनकी दवा-दारू करना है। अभी दवा देकर उठी तो देखा मकान साफ करना है; वर्तन मॉजने को पड़े हैं। उनसे निबटी और नहा-धोकर खाना पकाने को आग जलाई और आटा गूँधने लगी। आधा भोजन तैयार हो गया था कि मालूम हुआ कि दो मेहमान और आये हुए हैं। बेचारी ने सोचा था कि जल्दी से भोजन से निवट-कर दवा इत्यादि तैयार कर दूँगी और पति के दर्द करते हुए शरीर में थोड़ी मालिश करूँगी, तबतक यह मेहमानों का बोझ आ पड़ा। रात को देर से सोने के कारण ऑखों में जलन हो रही है, सिर भारी है, घर मे पति के स्वास्थ्य को देखकर चिन्ता से हृदय दुःखी है। उधर मेहमानो को जल्दी ही खा-पीकर किसीसे मिलने जाना है। किसी तरह राम-राम करके खाने-पीने का काम खत्म हुआ तो फिर वर्तन मॉजने में लगी। वर्तनो से निवटी तो देखा नहाने के घर में ढेर के ढेर कपडे पड़े है! उन्हें साफ करते-करते बाहों में दर्द होने लगा और किसी तरह काम खतम किया। फिर देखा कि धोती एक जगह से फट रही है जिसे न सी दिया तो और

इस चित्र की ओर देखो।

भी फट जायगी। झट उसमें लग गई। उधर पति के पास बैठकर उनसे दो-चार मीठी बातें करने, उन्हे शान्ति देने, उनकी सेवा करने को जी चाहता है, इधर शाम होने को आई। फिर भोजन की तैयारी मे लगना है। अभी दाल-चावल, शाक-भाजी सब पड़ी है। उन्हे साफ़ करना है। उसके बाद फिर वही खटराग चला! इस तरह बिना एक मिनट की शान्ति और विश्राम के उसका जीवन बीत रहा है।

पीछे सन्तानवती होने पर सन्तान की बड़ी भारी ज़िम्मेदारी आ पड़ी। उसका पालन-पोषण करने मे रात की नींद भी गायब होने लगी है। उसे नहलाना-धुलाना, खिलाना-पिलाना, कपड़े साफ करना, खेलाना-झुलाना! —काम बढ़ता ही गया और उसे कभी इतनी फ़ुर्सत न मिली कि देखे मैं क्या थी, क्या हो गई हूँ। कैसा कंचन-सा शरीर था, चेहरे पर कितनी कान्ति, कितना तेज था। मन में बड़ी-बड़ी उमगे और बड़े-बड़े हौसले थे पर एक-एक करके सब उसने त्याग दिये! और—

बदले में उसे क्या मिला? उसके त्याग की कानोकान किसी को खबर न हुई। उसके जीवनव्यापी बलिदान की कहानियाँ अखबारो मे नहीं छपी। उसका नाम किसी ने न जाना; उसकी प्रशंसा के लिए सबके ओठ चुप हैं—हाँ, निन्दा और डॉट-फटकार की बौछारे कभी कभी उसकी तरफ़ आ निकलती हैं, उसकी आँखो के कोनो मे सजीव मोती के दो-चार दाने उदय होते हैं; दुनिया की ओर हसरत और निराशा से देखते हैं और फिर चुपचाप ढुलककर मिट्टी में मिल जाते हैं! इसे भी कोई नहीं देखता। फिर भी निन्दा और कठिनाइयो से भरे इस मार्ग से वह चुपचाप अपनी गृहस्थी का बोझा उठाये जीवन की मंजिल पर चली जा रही है।

× × ×

यह एक साधारण स्त्री का चित्र है। अमेरिका की एक बहन अपने देश की ऐसी साधारण स्त्रियो के बारे मे अपनी एक पुस्तक में लिखती हैं—

"मेरी इच्छा होती है कि यदि मुझे बहादुरी के तमगे बॉटने का संयोग प्राप्त हो तो मैं साधारण स्त्रीको सबसे अच्छा तमगा दूँ। यह बात ठीक है कि उसने कभी तूफान से डूबते जहाज को किनारे नहीं लगाया, न किसी डूबते हुए आदमी को नदी से निकाला और यह भी सच है कि उसने कभी भागते हुए घोड़े को नहीं पकडा और न किसी जलते हुए मकान में से किसी के प्राणो की रक्षा की अथवा और किसी प्रकार से किसी हिम्मत के काम मे कोई वीरता दिखाई।

"उसने केवल इतना किया कि तीस-चालीस वर्ष तक गृहस्थी में स्थिर रही और बीमारी, गरीबी के बीच अकेली रहकर चुपचाप अनेक निराशायें सहीं और इन विपत्तियों को ऐसी हिम्मत के साथ बर्दाश्त किया कि किसीको कानो-कान खबर न होने दी। ऐसी साधारण स्त्री के सामने बहादुर सिपाही भी सिर झुकाकर उसकी वीरता के लिए अभिवादन करेगा!

"उसकी शकल से कोई बहादुरी या उच्चता का भाव प्रकट नही होता। वह एक साधारण स्त्री है जिसके साधारण कपड़े, थका हुआ चेहरा तथा काम से घिसे हुए हाथ होते हैं। इस स्त्री को सैकड़ो बार तुमने देखा होगा परन्तु कभी उसे प्रणाम करने का विचार न आया होगा; परन्तु वास्तव में एक शूर-वीर सिपाही की तरह मनुष्य-जीवन की लड़ाई मे वह बहादुरी की प्रशंसा पाने की हकदार है!

"इस बात को वर्षों गुजर गये जब वह नई जवानी के साथ हृदय में उमगें भरे हुए विवाहित हुई थी। उसने अपने मनमे बड़ी-बड़ी आशाये बॉध रक्खी थीं।

× × ×

"एक-एक करके उसकी सब आशायें नष्ट हो गईं। उसको जो पति मिला वह भला आदमी था परन्तु थोड़े ही दिनो पीछे उसका स्वभाव बदल गया। अब वह स्त्री के रूप या शृङ्गार की प्रशंसा नहीं करता, न उससे अब मीठी-मीठी बातें करता है; न इसके लिए उसके पास अब समय है। धीरे-धीरे उसके विवाह का सुख दूर हो गया और प्रेम और आनन्द के सुखमय मार्ग की जगह उसके सामने कर्त्तव्य और चिन्ता का कठोर मार्ग फैला हुआ है।

"हर रोज वह सिलाई करती, भोजन बनाती, और घर की सफ़ाई करती और यह सब उस आदमी के लिए जो इस सेवा के बदले उससे दो मीठी बाते नही करता था। इसके सिवाय जब उसका मिज़ाज बिगडता तो रुखाई के साथ झगड़ा करता। जब उसका मिजाज शान्त होता तो भूखे पशु की भाँति भोजन करता और अखबार लेकर एक कोने मे बैठ जाता; स्त्री बेचारी अपना मन मारे अपने गृहस्थी के काम मे फँसी रहती।

"भाग्य से पति मे रुपया पैदा करने का गुण था; वह बड़े परिश्रम से जीविका उपार्जन करता था पर संसार मे सभी ऐसे भाग्यशाली नही है। ऐसे भी हैं जिन्हे पेट की चिन्ता हर समय लगी रहती है, स्त्रियो को दरिद्र जीवन काटने को मजबूर होना पडता है। यह स्त्री का ही काम है कि थोड़ी आमदनी मे गुजर करती है तथा पति एव बच्चो के सुख के लिए उसे अपना पेट काटना पडता है, वह एक रुपये मे पाँच रुपये का काम निकालती है।"

यह अमेरिका की एक साधारण स्त्री का चित्र है! पर इससे पहले मैने जिस चित्र का वर्णन किया है वह इससे कहीं अधिक करुण है क्योंकि जहाँ पश्चिम में स्त्रियाँ आर्थिक कठिनाइयों के कारण इतना सहती हैं वहाँ हमारे यहाँ इसे अपना धर्म समझकर सहती हैं!

तुम साधारण स्त्री के इस चित्र को ध्यान से देखो। वह कितना बलिदान देती है, वह कितने सुखो को छोड़ती है; कितने पदार्थों के लिए उसे मन मारना पड़ता है; वह घर मे सबको अच्छा खिला देती है और स्वयं क्या खाती है, इसका किसीको पता नहीं चलता; न कोई पता चलाने की परवा करता है। कभी-कभी सबको खिलाने के बाद इतना ही बचता है कि अधपेट खाना पड़ता है; कभी शाक ख़त्म हो जाता है और नमक से सूखी रोटी चबानी पडती है, किन्तु इसका पता किसीको चलने तक नहीं देती।

जब वह थकी होती है या भीतर-ही-भीतर बुखार से हड्डियाँ चिलकती रहती हैं तब भी घर का सब काम किये जाती है। रोते हुए बच्चों को चुमकारकर सुलाती है और जब बच्चो को शीतला, चेचक इत्यादि कठिन रोग हो तो भी अपने प्राणो को ख़तरे मे डालकर उन्हें कलेजे से चिपकाये रखती है। एक तरफ़ पति या किसी बच्चे की बीमारी से उसका दिल करता है कि खूब रोये और दूसरी तरफ दूसरे रोते बच्चे को चुमकारती और कलेजे पर पत्थर रखकर हँसती और उसे भी हँसाती है। संभव है यह लड़का आगे जाकर उसी का विरोधी निकल आवे किन्तु वह अपने स्नेह मे इन बातो का विचार किये बिना अपने कर्तव्य का पालन कर रही है। इस मौन त्याग और अविचल धीरज के सामने किस सिपाही की बहादुरी ठहर सकती है? इस जीवनव्यापी तप के सामने किस देशसेवक का त्याग तुलना के लिए पेश किया जा सकता है?

मैं चाहता हूं कि तुम अपने सामने यश और धन के लिए ललचनेवाली स्त्रियो की जगह साधारण स्त्री का यह चित्र रक्खो! मैं जानता हूँ कि देश या समाज मे ऐसी स्त्री को कोई नहीं पहचानता; किसी के हाथ उसके स्वागत के लिए नही उठेंगे; न तुम्हारे इस चुनाव की कोई

प्रशंसा करेगा; किन्तु इतने पर भी मैं कहूँगा कि वह उन लोगो से कहीं महान् है जिनकी बातो पर हजारो तालियॉ एक साथ बज उठती हैं या जिनके लिए सभाओ मे सबसे आगे कुर्सियॉ सजाकर रक्खी जाती हैं ! ऐसी स्त्री ऑख से देखने की चीज नहीं हैं, कान से सुनने की कहानी नहीं है, सिर झुकाने लायक मूर्ति नही है; हृदय मे रखने, दिल में अनुभव करने की चीज है। मैं नहीं चाहता कि तुम्हारा नाम हो; मैं नहीं चाहता कि तुम उपदेश देने योग्य विदुषी बनो; मैं नही चाहता कि रानी बनकर लोगो पर हुक्म चलाओ। मैं चाहता हूँ कि तुम ऐसी ही एक साधारण स्त्री बन जाओ !

दुनिया का राय तुम्हारी कसौटी नहीं है

दुनिया मे आगे चलकर तुम पर अनेक ऐसी कठिनाइयॉ आयेंगी जिनकी तुम्हे कल्पना भी न होगी। जब तुम बिल्कुल पवित्र और निर्दोष होगी, बहुत-से स्त्री-पुरुष तुम्हारा नाम धरेंगे और निन्दा करेंगे। समाज की निन्दा से बढ़कर चोट पहुँचानेवाली चीज़ दूसरी नहीं है और विशेषतः जब एक आदमी निर्दोष हो और उसकी निन्दा की जाय तो मनुष्य पर से उसकी श्रद्धा उठ जाती है। पर तुम कभी निन्दा से विचलित होकर कोई काम न करना। भगवान् के सामने पवित्र रहो और उसके चरणो में अपने को छोड दो। मैं जानता हूँ यह कठिन है। दुनिया बहुत गिर गई है इसलिए वह साधारण सुधार को, एक स्त्री-पुरुष की साधारण घनिष्ठता को या पवित्र प्रेम को भी अपने ही तराज़ू से तौलती है। उसके ऐसे नाप-जोख को सह लेना बड़ा कठिन काम है। पर सदा यह वाक्य याद रक्खो—"पाप-रहित हृदय से बढ़कर दूसरा रक्षक नहीं है।"

निन्दा-भय से, यदि तुम सच्ची और निर्दोष हो तो, अपने सिद्धा-

न्तों से डिंग जाना ठीक नहीं। जो मनुष्य निन्दा पर कान देकर आदर्श से गिर जाता है वह ईश्वर का अपमान करता है और उसके प्रति अविश्वास प्रकट करता है। सदा याद रक्खो कि जो सत् है, सच्चा है वह मर नहीं सकता, वह निन्दा का विष पीकर भी बना रहेगा; जो नाशवान् है, नष्ट होने योग्य है वही नष्ट होता है।

इसलिए मैं चाहता हूँ कि तुम अपने को इतना ऊँचा उठा लो कि न तो कोई निन्दा तुम्हे तुम्हारे उचित मार्ग से हटा सके और न यश की कोई भावना तुम्हे झूठे मार्ग पर चला सके। इसी में तुम्हारा गौरव है और इसी में तुम्हारा आदर्श है। याद रक्खो जब सीता और सती निन्दा से न बच सकीं तो साधारण स्त्रियों के ज़ीवन की झूठी-सच्ची कहानियाँ फैलने में आश्चर्य की क्या बात है? दुनिया बहुत गिर गई है। सबको खुश रखना असम्भव है, इसलिए कोई काम लोगों की खुशी या नाराज़ी के कारण मत करो बल्कि यह सोचकर करो कि वह अच्छा काम है और उससे भगवान् प्रसन्न होंगे। यही सबसे अच्छी कसौटी है।

ऊपर मैं लिख चुका हूँ कि तुम साधारण स्त्री को अपना आदर्श बनाना। उस स्त्री का चित्र भी तुम्हारे सामने खींचकर रखने की चेष्टा

तुम्हारे तीन आदर्श

मैंने की है। पर उसके अतिरिक्त प्राचीन आर्य नारियों मे से सीता और दमयन्ती दो के चरित ऐसे हैं कि प्रत्येक स्त्री उन्हे अपना आदर्श बनाकर जीवन को ऊँचा उठा सकती है। सीता के चरित मे पति के प्रति प्रेम है, जीवन की कठिनाइयों को सहने का साहस और हौसला है, लज्जा है पर अपने आदर्श और अपने धर्म के पालन की दृढ़ता भी है। वे राम के राज्य छोड़कर जंगलों मे जाने के समय उन्हे राज छोड़ने के संकल्प से हटाती नहीं; इसके बारे में वे एक शब्द भी नहीं कहतीं, यद्यपि कुछ ही समय पहले उनका व्याह हुआ और वे

सदा सुख के पालने मे झूलती रहीं। पर भोग-विलास में उनकी आसक्ति नहीं थी, उनका मोह नहीं था। उन्हें इसे छोड़ते ज़रा भी दुःख नहीं हुआ। पति जंगलों में मारा-मारा फिरे और वे राज-भोग भोगें, यह उनकी कल्पना के बाहर था। इसलिए राम के समझाने पर, घर पर ही रहकर सास-ससुर की सेवा करने को कहने पर भी, वह न डिगीं और राम के हिचकिचाने और वन की कठिनाइयाँ बताने पर बोलीं कि 'आप मेरे पति हैं, आपके चरणो में मेरी अगाध श्रद्धा है; आपके बिना मैं जी भी न सकूँगी। आपके साथ जंगल भी मुझे स्वर्ग हो जायगा।' इसपर भी जब राम साथ ले जाने को राजी न हुए तो सीता, अपूर्व तेजस्विता के साथ, बोलीं—

"मेरे पिता मिथिलाधिप राजा जनक ने आपको पुरुष-शरीरधारी स्त्री नहीं समझा था, अतएव उन्होंने आपको अपना दामाद बनाया। जो सती है, जो आपके साथ बहुत दिनों तक रह चुकी है, लड़कपन मे ही जिसके साथ आपका व्याह हुआ है, उस स्त्री को आप नट के समान दूसरे को देना चाहते हैं।"[1]

× × ×

इसी प्रकार की तेजस्विता सीता ने तब दिखाई थी जब हनुमान ने लंका मे उनसे कहा कि "माँ! तुम मेरी पीठ पर बैठ जाओ। मैं एक छलाँग में समुद्र लाँघकर तुम्हें भगवान् रामचन्द्र के पास पहुँचा दूँगा।"

१ किं त्वामन्यत वैदेहः पिता मे मिथिलाधिपः।
राम जमातरं प्राप्य स्त्रियं पुरुषविग्रहम्॥
स्वयं तु भार्यां कौमारीं चिरमध्युषितां सतीम्।
शैलूष इव मां राम परेभ्यो दातुमिच्छसि॥
—वाल्मीकीय रामायण, अयोध्याकाण्ड सर्ग ३०, श्लोक ३,८

सीता ने तब कहा था—"वत्स ! मैं इस तरह यहाँ से नहीं जा सकती। जब राम वीरो की भाँति शत्रु को मार कर, विजय प्राप्त करके मुझे ले चलेंगे तब जाऊँगी।" अग्नि-परीक्षा के समय भी सीता ने ऐसी तेजस्विता दिखाई थी। पति के लिए उन्होंने राज-पाट, भोग-विलास छोड़ा; सास-ससुर सबको छोड़ दिया; लंका मे वियोग मे दुबली-पतली हो गईं; पर उनका प्रेम केवल शरीर का मोह नहीं था; उसमे तेजस्विता थी, उसमे गौरव था। सीता की पति-भक्ति ऐसी न थी जो उचित-अनुचित का कुछ विचार नहीं करती। वह पतिभक्त थीं, सती थी, पर साथ ही उनमे साहस, गौरव, तेज और अपने सिद्धातो पर दृढ़ रहकर धर्म-पालन करने की भी शक्ति थी। अपने सतीत्व और अपनी पति-भक्ति का ज़रा भी अपमान उन्होंने कभी सहन नहीं किया। पति के मन मे भी कालिमा आ गई तब भी उन्होने सफाई न देकर राम से, बडे गर्व और दुःख से कहा—"हे राम ! तुम ऐसा कहते हो?" उस पतिव्रत के लिए स्वय पति—राम—को भी छोड़ने का साहस उनमे था। आज देश मे उनके समान ही पति-भक्ता त्यागशीला, धर्म-परायणा पर तेजस्विनी स्त्रियो की आवश्यकता है।

मेरी सम्मति में, सीता के बाद, दमयन्ती को तुम अपना तीसरा आदर्श चुन सकती हो। दमयन्ती ने पति के लिए क्या-क्या नहीं सहन किया? उसके पति नल जब जुए मे सब कुछ हारकर, नंगे-भूखे जंगलो मे घूमते तो दमयन्ती परछाई की तरह सदा उनके साथ लगी रहती। उसने पति के लिए सब कुछ छोडा। उसका हृदय पति के प्रेम से भरपूर था, इसलिए घास पर सोने मे उसे मख़मली गद्दो से भी अधिक सुख होता था और काटे उसे फूल के समान लगते थे। उसकी भक्ति और उसके धीरज को देखकर जब नल दुःख से अधीर हो रात को उसे सोती छोड़ कहीं चले गये और एक व्याध ने उसका सतीत्व भंग करना चाहा तो

उसने अविचल धैर्य और अद्भूत साहस एवं तेज के साथ अपने नारी-धर्म की रक्षा की थी। सीता जहाँ सच्चे अर्थ में एक तेजस्विनी सहधर्मिणी एवं एक तपस्विनी नारी थी वहाँ दमयन्ती एक प्रेममयी पत्नी और सच्ची जीवन-संगिनी थी। यदि कोई बहन इनके जीवन से पति-प्रेम और तेजस्विता, त्याग और आदर्श पत्नीत्व के भाव ग्रहण करे तो वह स्त्री-जाति का गौरव दुनिया के सामने रख सकती है।

× × ×

पहले पत्र मे मैं लिख चुका हूँ कि सम्भव है तुम्हारे विवाह के समय मैं उपस्थित न रह सकूँ, इसलिए विवाह के पहले जितनी बातें विवाहित जीवन के बारे में योग्य कन्या को जाननी चाहिएँ, मैंने लिख दी हैं। हमारे देश मे प्रायः विवाह के बाद, विदा करते समय, लड़की को थोड़े मे उपदेश करने की प्रथा है। पर उन सब बातो को मैंने पहले ही लिख दिया है जिससे व्याह होने के बाद ससुराल में तुम्हारे जीवन का सद्व्यय हो किन्तु आज मुझे महान् ऋषि कण्व का वह उपदेश याद आ रहा है जो उन्होंने शकुन्तला को पति के घर भेजते समय दिया था। उसमे थोड़े में सब बातें आ गई हैं, इसलिए उसे भी लिख देता हूँ—

"गुरुजनो—बड़ो—की सेवा करना; सौतो[1] के साथ प्यारी सखी के समान आचरण करना, स्वामी कभी तिरस्कार भी करे तो क्रोध में आकर अनुचित एवं विरुद्ध काम मत करना; परिवार के सब लोगों के साथ बहुत उदारता का व्यवहार करना, भोग की वस्तुओ मे अभिलाषा मत रखना। इस तरह रहने वाली स्त्रियाँ योग्य गृहणी होती हैं, इसके

१ उस समय पुरुष बहुविवाह करते थे जो राजा-महाराजाओं एवं धनी लोगो में आज भी प्रचलित है।

विपरीत आचरण करनेवाली कुल के लिए पीडा के समान हो जाती हैं।"[१]

इसी तरह साधारण स्त्रियों के मुँह से मैंने एक टूटा-फूटा गीत सुना था, जिसके कुछ अंश याद है—

पहनो-पहनो री सुहागिन ज्ञान-गजरा।
दया-धरम की ओढ़ चुनरिया शील का नेत्रों में डालो कजरा।
पहनो-पहनो री० ॥
लाज करो तुम पर-पुरुषों से अपने पति का देखो मुखड़ा।
सास-ससुर की सेवा करियो कबहुँ पती से न कीजो झगड़ा।
पहनो-पहनो री सुहा० ॥

अर्थात् "ऐ सुहागिन! यह ज्ञान की माला पहन ले, दया-धर्म की चूनरी ओढ़ और आँखों मे शील-संकोच का काजल दे। दूसरे पुरुषों से लज्जा रखना और अपने पति की ओर ही ध्यान रखना। सास-ससुर की सेवा मन लगाकर करना और पति से कभी झगड़ा न करना।"

थोड़े मे यह सब शिक्षाओं का निचोड़ है!

स्त्रियो के सम्बन्ध मे, उनके आदर्श के सम्बन्ध मे, बहुत लिखा जा सकता है पर मैंने तुम्हे थोडे मे सारी बातें बताने की चेष्टा की है जिससे न केवल तुम एक योग्य गृहिणी बन सको, वरं भगवान् ने तुम्हे जो स्त्री का जन्म दिया उसका आदर्श पूरा हो; तुम्हारा जन्म सफल हो और दुनिया से विदा होते समय तुम्हे इस बात का सन्तोष—गर्व नहीं—रहे कि मैंने अपना कर्तव्य पालन किया है।

१. शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखी वृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भोगेष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः।
अभिज्ञान शाकुन्तल, अंक ५

दुनिया मे लिखने की बाते बहुत हो सकती हैं पर मैंने तुझे जो ग्यारह पत्र लिखे है उनमे लिखी हुई बातो पर ध्यान देगी तो वही बहुत होगा। भगवान् ने हम लोगो को धन नहीं दिया, रूप नही दिया, यश नहीं दिया, बल नहीं दिया पर जो निर्मल मन और दुर्बल शरीर दिया है उससे भी हम लोग बहुत ऊँचा उठ सकते है। परवा नहीं, उस उठने को दुनिया न जाने; परवा नहीं, उस उठने मे लोग निन्दा के कॉटे मार्ग मे बिखेरे, परवा नहीं, सच्चे हितैषी और मित्र भी बदल जायॅ पर हमारा मन पवित्र रहे; हमारा विश्वास उस परम पिता के अन्दर अटल रहे जिसके निर्णयो पर दुनिया की निन्दा और दुनिया से मिलनेवाला यश अपना प्रभाव नहीं डाल सकता। जिस समय हमे कोई देखनेवाला न हो उस समय भी हममें पाप की भावना न आये और आवे तो हम एक मिनट के लिए भी न भूले कि यद्यपि यहॉ कोई मनुष्य उपस्थित नहीं है भगवान् सब देख रहा है।

हम लोगों के पास दुनिया मे गर्व करने लायक और कोई पूॅजी नही है इसलिए हमे अपने सुविचारो और सद्गुणो को विकसित करने की ज़्यादा आवश्यकता है। हमारे पास वह धन नहीं है जिसके ढेर मे बहुत से पाप छिप सकते है या जिसके द्वारा बहुत-सा पुण्य सहज ही मे ख़रीदा जा सकता है; हमारे पास यश नही है जिसके अन्दर हम अपने हृदय की मलिनता को छिपाकर निर्द्वन्द्व दुनिया मे घूम सके; हमारे पास बल और रूप नहीं है जिससे हम लोगो को अपने अनुकूल उपयोग करने का झूठा हौसला करे; हमारे पास बस यही छोटा-सा शरीर है और उसके अन्दर वह हृदय है जो किसी को दिखाया नहीं जा सकता पर जिसके सहारे दुनिया की सम्पूर्ण कठिनाइयो को पार करके भगवान के चरणो तक पहुॅचा जा सकता है।

मैं चाहता हूँ कि प्रेम तुम्हारी पूँजी हो; सेवा तुम्हारा साधन हो, त्याग तुम्हारी सॉस हो और निष्पाप हृदय तुम्हारा रक्षक हो।

खण्ड ३ : माता

माता गुरुतरा पृथिव्याः
"माता पृथ्वी से भी बड़ी है।"

: १ :

जगज्जननी !

तेरे हृदय की स्नेह-गङ्गा मे स्नान कर न जाने कितने तर गये। तेरी छाती के अमृत ने न जाने कितनों को अमर बनाया है ! तेरे नेत्रो की ज्योति से न जाने कितने अभागो को प्रकाश मिला है; तेरी भौहों के संचालन से इतिहासों के न जाने कितने पन्ने लिखे गये हैं ! तेरी गोद मे दुनिया कबसे जन्म ले रही है; कब से पल रही है और कब से नष्ट हो रही है ! दुःख मे, आतक मे, प्रसन्नता में, जन्म में, मृत्यु में सदा तेरी शीतल गोद में दौड़कर छिप जाने को प्राणी लालायित है ! कभी कन्या के रूप मे, कभी नारी के रूप में, और कभी माता के रूप में तू सदा रही और सदा रहेगी ! जो-कुछ जगत् मे है वह तुझ से है; तेरे बिना कुछ नहीं हो सकता।

माँ ! आज तेरी यह महिमा लोग क्यों भूल गये हैं ? तू तो अनादि काल से ज्यो की त्यों अपने कर्तव्य में स्थिर है ! आँधी हो, तूफ़ान हो, धूप हो, बादल हो; महल हो या सूनी झोपड़ी हो; सुख हो या दुःख हो; स्वास्थ्य हँस रहा हो या बीमारी रो रही हो तू तो अविचल है ! तू तो माता ही है; तू तो और नहीं हो सकती ! पर हम तो और हो गये। क्यो ऐसे हो गये माँ ? एक दिन वह था जब मनुष्य मनुष्य का भाई था; मनुष्य ही क्यो पशुपक्षी इत्यादि जीवों से भी मनुष्य मिल गया था; तब ईर्ष्या-द्वेष, दंभ, लोभ, छल-कपट कहाँ था ? तब तो हमारे घर में जीवन का बोझ बढ़ा देने वाली इतनी सामग्री न थी। जरा-सा शरीर था; और उसके अन्दर

पृथ्वी मे भी समा न सकने वाले प्रेम के अमृत से भरा विशाल हृदय था! वह क्या तेरा पराक्रम न था?

उसके बाद—

अभिमान की ऑधी मे, हम तेरे स्नेह के ऑचल की छाया से दूर भटक गये। दुनियादारी बढ़ गई, भाइयो के मन में भाइयो को कुचलने, विजय करने, अपने चरणो मे झुकाने की अभिलाषा जाग उठी! लड़ाइयॉ हुई; भाई ने भाई का खून बहाया और गर्व की सॉस ली। बड़े-बडे राष्ट्र, बडे-बड़े देश बन गये; दल-बन्दियॉ हुई। ईर्ष्या-द्वेष, लोभ और होड़ का सोता बह चला। तेरे स्नेह की वह मन्दाकिनी हमारे हृदय के मरु-प्रदेश मे खो गई! तब से वही अहकार और अभिमान का अविराम खेल पृथ्वी पर चल रहा है! आज यह हारता है, कल वह जीतता है। आज यह गिरा, कल वह उठा!

मॉ! ओ जगजननी! आज तेरे बच्चों की क्या दशा है? सब है, पर तेरी वह आदर्श मूर्ति कहॉ है? उसके बिना तो जैसे यह सब कुछ नही है। ससार के समस्त जल से हमारी प्यास, हमारी आग न बुझेगी; हमे तेरे दूध की जरूरत है। बिना उसके न हम सच्चे हिन्दू होंगे, न सच्चे भारतीय होगे, न सच्चे मनुष्य होगे।

मॉ, तुझे प्रणाम है। तू अपने बच्चों की सुधि ले!

: २ :

यह अविराम क्षय !

जब हमे जरा-सी बीमारी हो जाती है तब हम छटपटाने लगते हैं; डाक्टरो और वैद्यो के पास दौड़ते फिरते हैं। जब हमारा एक रुपया खो जाता है तो हमारा मन उदास हो जाता है और आगे से हम सावधान रहने का निश्चय करते हैं पर यह एक आश्चर्य की बात है कि बच्चो की मृत्यु के रूप में जो महामारी दिन-दिन बढ़ती जा रही है, उसके निराकरण के लिए हम चुप है ! हमारी जो बहुमूल्य सम्पत्ति आये दिन मिट्टी मे मिलती जा रही है उसके लिए हमे परवा नहीं है। जो मनुष्य जरा-सी हानि और जरा-से दुःख मे पागल हो जाता है वह यह व्यापक क्षय देखकर भी अचल है। क्या यह कम अचरज की बात है ?

हमारी भूलो के कारण दिन-दिन बच्चो की मृत्यु-संख्या बढती जाती है। १९२१ की सरकारी मर्दुम-शुमारी के अनुसार सारे हिन्दुस्तान मे प्रति एक हजार पैदा हुए बच्चों में १९८ मर जाते हैं। कुछ लोगों के हिसाब से प्रति हजार २०५-६ बच्चे मरते हैं। यह तो औसत है पर बम्बई, बंगाल और सयुक्तप्रान्त में तो मृत्यु-सख्या बहुत ज्यादा है। बम्बई में प्रति हजार ६३७ बच्चे जन्म लेने के बाद, पहले वर्ष के अन्दर ही, मर जाते हैं। संयुक्तप्रान्त मे भी प्रति हज़ार पौने तीन सौ के करीब बच्चे मर जाते है। इस भयंकर क्षय का कहीं ठिकाना है ! माताये कहती हैं कि 'मरना-जीना तो ईश्वर के अधीन है; उसपर हमारा क्या बस है ? नहीं तो कौन माता अपने बच्चे की मृत्यु चाहेगी ?'

मैं यह नहीं कहता कि कोई माता अपने बच्चे की मृत्यु चाहेगी;

मेरा कहना तो यह है कि ऐ माताओ ! जिन बच्चो को तुम ९-१० महीनो तक अपने पेट मे रखकर, अपने शरीर के रक्त-मास से बढ़ाकर और कठिन पीड़ा सहकर जन्म देती हो, उन्हे किस तरह रखना चाहिए कि वे बड़े होकर अपने अच्छे कर्मों से तुम्हारे मातृत्त्व को गौरवान्वित करें, यह तुम भूल गई हो। आजकल माता-पिता सिर्फ बच्चा पैदा कर देना ही अपना काम समझते हैं। बच्चो का पालन-पोषण किस तरह किया जाय कि वे स्वस्थ, सुगठित एवं तेजस्वी शरीर वाले युवकों-युवतियों के रूप में संसार मे आये, उन्हे किस तरह की शिक्षा-दीक्षा दी जाय कि उनमें सच्चे मानवी भावो का विकास हो, इन बातों की ओर हमारा ध्यान नहीं है। गरीबो के घरो मे बच्चे गन्दी एवं बदबूदार गद्दियो पर, धुएँ के बीच पड़े रहते हैं; शरीर मे मैल भरी रहती है; टट्टी-पेशाब मे हाथ-पॉव सने रहते हैं; उनको उपयुक्त दूध इत्यादि नहीं मिलता, इससे वे गन्दे, अनुपयुक्त और मुरदे-से हो रहे हैं। अमीरो के घरो मे अन्धे लाड़-प्यार मे ही बच्चे का भविष्य बिगड़ जाता है; उसका शरीर दुर्बल और कमजोर कर दिया जाता है। हम बच्चों को छाती से चिपटा लेने में जितना आनन्द पाते हैं, उतना यह सोचने में नहीं पाते कि क्या करने से वे मनुष्यता का, समाज का, देश का सिर ऊँचा करनेवाले होंगे। इस प्रकार कुरीतियॉ, अज्ञान, अनियमित और असंयत प्रेम, दरिद्रता और बच्चो का पालन किस तरह करना चाहिए, यह न जानने के कारण देश मे हजारों बच्चे रोज मर रहे हैं। और जो बच जाते हैं वे भी दुबले, कमजोर और अयोग्य निकलते हैं तथा जवानी तक पहुँचते-पहुँचते बूढ़े हो जाते हैं।

मैं मानता हूँ कि मरना-जीना आदमी के बस की बात नही है। पर इसका मतलब सिर्फ यह है कि कोई आदमी सदा जीवित नहीं रह सकता; एक न एक दिन मरेगा; उसकी मृत्यु न हो, ऐसा नही हो

सकता। पर इसके साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि हम अपनी लापरवाही, अपने अज्ञान और अपने अन्ध-विश्वास से मृत्यु को नज़दीक बुला सकते हैं और अपनी सावधानी, संयम, ज्ञान और व्यवस्था से उसे दूर हटा सकते हैं। अकाल-मृत्यु शब्द का मतलब ही है उचित समय से पहले मर जाना। प्राचीन समय में लोग अपने सयम एवं व्यवस्थित जीवन के कारण बलिष्ठ, तेजस्वी और दीर्घजीवी होते थे। आज भी यदि हम बुद्धि से काम लें तो हमारी सन्तानें वैसी हो सकती हैं।

पर यह तभी हो सकता है जब मातायें अपना कर्तव्य समझें; जब वे यह समझ ले कि उनकी गोद मे उनके जो बच्चे पल रहे हैं आगे जाकर उनपर न केवल उनका सुख-दुःख बल्कि सारे संसार का सुख-दुःख निर्भर है। माताओ! तुम सच्ची माता बनोगी तो तुम्हारे पुत्र तुम्हारे गौरव को बढ़ानेवाले होंगे। याद रक्खो, दुनिया का भविष्य पुरुषों के हाथ नही, तुम्हारे हाथ है। पुरुष तो तुम्हारी गोद में जन्म लेता है; तुम्हारी ही गोद मे पलता है। आज के पुरुष चाहे नष्ट हो गये हों, चाहे तुम पर अन्याय करते हो पर कल के पुरुषों को तो तुम बिल्कुल ही अपनी इच्छा के अनुसार रच सकती हो क्योंकि बच्चे माता के पास ही रहते हैं; माता की गोद मे ही उनका चरित्र बनता है, उनका बनना-बिगड़ना तुम पर निर्भर है, पिता पर नही।

अपने बच्चो को किस तरह तुम स्वस्थ, दीर्घजीवी, योग्य, चरित्रवान् और बुद्धिमान बना सकती हो, यह सब सच पूछो तो तुम्हारी अपनी समझ और योग्यता पर निर्भर है। क्योंकि उन्नति का कोई एक रास्ता नहीं है; फिर सबका स्वभाव, परिस्थिति, वातावरण, सुविधा अलग-अलग होती है। इसपर भी आगे, थोड़े में, जो बातें लिखी हैं उनपर ध्यान देने से तुम्हारा रास्ता बहुत सरल हो जायगा।

: ३ :

स्त्रीत्व से मातृत्व तक

सबसे पहली बात तो यह है कि प्रत्येक स्त्री-पुरुष को 'माता' एव पिता के पद का गौरव और उसकी जिम्मेदारी समझनी चाहिए। अनियंत्रित भोग-विलास मे डूबने वाले लोग न केवल अपने शरीर और मन की छिपी शक्तियो को नष्ट करते है बल्कि सदा के लिए अपने कुल और अपनी भावी सन्तानो को कमजोर और अयोग्य बना जाते हैं। इस दृष्टि से विवाहित जीवन को भोग-विलासमय जीवन बना लेना न केवल एक नैतिक पाप है वरं सामाजिक अपराध भी है। इसे प्रत्येक बहन-भाई अच्छी तरह समझ ले।

सामाजिक अपराध

दूसरी बात यह है कि माता के शरीर के खून से ही बच्चे का शरीर बनता है। एक बच्चा होने मे उसके शरीर का कई सेर खून नष्ट हो जाता है और पैदा होने के बाद भी उसे मॉ के जिस दूध की जरूरत पड़ती है वह माता के अच्छे एवं स्वस्थ शरीर मे ही यथेष्ट मात्रा मे मिल सकता है। इसलिए जबतक स्त्री का शरीर स्वस्थ, बलिष्ठ, नीरोग तथा बच्चे की जिम्मेदारियों को सम्हालने योग्य न हो उसे माता बनने की चेष्टा न करनी चाहिए। साधारणतः १६-१७ वर्ष की अवस्था मे नीरोग एव स्वस्थ लड़कियो का शरीर गर्भ धारण करने और मातृत्व की जिम्मेदारियो को सम्हालने योग्य होता है; पर इसके बाद भी दो-तीन वर्ष बचाये जायॅ और पति-पत्नी ब्रह्मचर्य-पूर्वक रह सके तो उनको भी लाभ होगा और भावी सन्तान को भी।

उपयुक्त आयु

भारत मे स्वस्थ लड़कियों को प्रायः १२ से १५ वर्ष की अवस्था के अन्दर नियमित रजःस्राव होने लगता है। प्रति अट्ठाईस दिन के बाद लगातार तीन या चार दिन तक नियमित मात्रा मे यह रजःस्राव होता है। इसे ही मासिक धर्म भी कहते हैं। यह प्रायः चालीस-पैंतालीस वर्ष की अवस्था तक होता है। अधिक स्वस्थ स्त्रियो को ५० वर्ष तक भी होता देखा गया है। स्त्रियों के स्वास्थ्य के लिए इसका ठीक समय पर होना बहुत जरूरी है। यदि किसी लड़की को ऐसा न हो तो शीघ्र ही योग्य लेडी डाक्टर से इसकी दवा करानी चाहिए। जिन स्त्रियो का स्वास्थ्य खराब रहता है, या जिन्हे कब्ज़ की या कोई भीतरी बीमारी होती है, मासिक धर्म के समय उनके पेट में बड़ी पीड़ा होती है; कमर-दर्द शुरू हो जाता है और सिर भारी रहने से चक्कर भी आने लगते हैं। यह अच्छी बात नहीं है। मासिक धर्म में कमर-दर्द और पेट में पीड़ा नहीं होनी चाहिए। हॉ, शरीर मे थोड़ी सुस्ती और कमज़ोरी का अनुभव ज़रूर होता है। जिन स्त्रियों को[1] नियमित समय पर और उचित मात्रा में रजःस्राव नहीं होता उनके कमर और पेडू में बहुत दर्द हुआ करता है; सिर दर्द बढ़ता जाता है और दॉत एव आखे कमजोर हो जाती हैं। प्रायः स्त्रियॉ इन बातो को बहुत छिपाती हैं, जिसका परिणाम अन्त में बड़ा खराब होता है। चक्कर आने लगते हैं और हिस्टीरिया के दौरे भी आने शुरू हो जाते हैं। इसलिए ऐसी शिकायत होने पर इलाज का ठीक इन्तज़ाम करना चाहिए।

मासिक धर्म

---

१ बाज़-बाज़ स्त्रियों को ३५ दिन में भी होता है और बराबर पॉच दिन तक होता रहता है। बहुतों को ऋतुधर्म के बाहरी लक्षण प्रकट ही नहीं होते। फिर भी बच्चे होते हैं।

—लेखक

खान-पान एवं व्यवहार

रजोदर्शन के समय से लेकर चार दिनो तक शरीर को बहुत सम्हाल-कर रखना चाहिए। शरीर मे कमज़ोरी आजाने के कारण ठण्ड लग जाने का ऐसे समय बड़ा भय रहता है। इसलिए जाडे के दिनों में तो स्नान से भी बचना चाहिए या खूब धूप निकल जाने पर ही गर्म पानी से स्नान करना चाहिए। आरम्भ के तीन दिनो तक यदि स्नान न करके गर्म पानी से हाथ-मुंह धो लिये जायें तो भी ठीक होगा। साधारणतः हिन्दुओ के यहाँ इन चार दिनो मे स्त्रियाँ किसी को छूती नहीं, न उनके हाथ का बनाया भोजन करने का नियम है। पति को छूने का तो बिल्कुल निषेध-सा है। आजकल इसके विरुद्ध भी आवाज़ उठाई जा रही है। समय बदल गया है, बहुत-सी स्त्रियाँ आज बडे-बड़े स्कूलो मे अध्यापिका का काम करती हैं या और काम कर रही हैं। उनके लिए छूत बचाना कठिन है। पर यह व्यवस्था स्त्रियो के लिए नैतिक और शारीरिक दोनो दृष्टियो से लाभदायक है। एक तो यह कि इस अवस्था मे शरीर बहुत कमज़ोर हो जाता है इसलिए स्त्रियो को पूर्ण विश्राम करना चाहिए और परिश्रम के कामो से बचना चाहिए। यदि छूने का क्रम जारी रक्खा जाय तो बहुत से काम सदा की तरह ही उनको करने पड़ेंगे, इससे यथासम्भव छूत मानने मे कोई हर्ज नहीं है पर आजकल व्यवहार मे इसका अनर्थ भी होता है। छूत तो मानते हैं पर बहुत-से ऐसे घरेलू काम मान लिये गये है जो छूत से अलग हैं और इस अवस्था मे भी स्त्रियो के सिर आ जाते हैं। जैसे सूखे बर्तन माँजना; ऊनी चीजे बुनना; दाल-चावल इत्यादि साफ करना; घर की सफाई इत्यादि। सच पूछो तो इन कामो से भी इस हालत में स्त्रियो को बचना चाहिए!

यह छूत लाभकारी है

इन दिनो मन भी बड़ा उत्तेजित रहता है, कुवासनाओ के प्रबल हो जाने का भय बना रहता है, विविध मनुष्यो के स्पर्श से यह उत्तेजना बढ़ सकती है। पति के प्रति इस तरह की भावना उत्पन्न होने की आशंका अधिक रहती है इसलिए पति को छूने (और कहीं-कहीं तो देखने तक) का बिल्कुल निषेध है।

नैतिक दृष्टि से

भोजनादि बनाने का निषेध इसलिए है कि आग के पास बैठने से बीमार पड़ जाने का भय रहता है। आँखे कमजोर हो जाती हैं। दूसरे शरीर के विकारग्रस्त रहने से ऐसे भोजन का प्रभाव भी भोजन करने वालो के मन पर अच्छा नहीं पड़ सकता।

इसलिए आजकल हमारे यहाँ इस हालत मे छूतछात की जो साधारण परिपाटी प्रचलित है वह स्वास्थ्य की दृष्टि से बुरी नहीं है। पर हाँ, ऐसा भी न होना चाहिए कि यदि भूल से कोई बच्चा या और कोई छू जाय तो उसे जाड़े के दिनों मे भी नहाने के लिए बाध्य किया जाय। यह छूत का तात्पर्य नहीं, उसकी अति है।

इन तीन दिनों तक स्त्री को एकान्त मे ही अधिक समय व्यतीत करना चाहिए और अच्छी बाते सोचने, अच्छी पुस्तकें पढ़ने मे मन लगाना चाहिए। चित्त को स्थिर और शान्त रखना चाहिए और कमरे में जितने भी शृंगारमय चित्र इत्यादि हो उन्हे अलग दूर रख देना चाहिए। कम्बल पर सोना और कम्बल ओढ़ना अच्छा है पर बहुत-सी स्त्रियो को जाड़े के दिनो मे सरदी से काँपते देखा गया है। उनके पास पहनने, ओढ़ने को बहुत कम रहता है, वे एक कोने मे सिकुड़ी पड़ी रहती हैं। यह बड़ी खराब बात है। ऐसी अवस्था मे शरीर की पूरी-पूरी हिफाजत न होने से अनेक रोगों के पैदा हो जाने का भय बना रहता है।

रहन-सहन

भोजन की ओर भी स्त्रियाँ प्रायः कुछ ध्यान नहीं देतीं। पर इसका मन और शरीर दोनों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। ऋतु-धर्म के समय स्त्रियो को बासी, खट्टा, चरपरा और तेल से बना भोजन हरगिज़ न करना चाहिए और ताज़ा, हलका एवं सात्विक भोजन करना चाहिए। खट्टी चीजें नुकसान और मामूली मीठी चीजें फायदा करती हैं। बहुत-सी स्त्रियाँ विश्राम करने का मतलब चुपचाप चारपाई पर पड़े रहना समझती हैं पर यह उनकी बडी भारी भूल है। दिन को सोना हर हालत मे नुकसान करता है। ज़्यादा कमज़ोरी मालूम होने पर तकिये या दीवार के सहारे पॉव फैलाकर आराम करना चाहिए। इस अवस्था मे स्त्रियो को सिर्फ अच्छी बातें ही करनी चाहिएँ; इधर-उधर बकवाद करते फिरना ठीक नहीं है। ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध इत्यादि दुर्भावो को मन मे न आने देना चाहिए।

भोजन और विश्राम

चौथे दिन स्नान करके स्वच्छ वस्त्र पहनकर स्त्री को पहले थोड़ी देर भगवान का ध्यान करना चाहिए और उससे अपने को सन्मार्ग पर चलाने और अपने कुटुम्बियों के कल्याण की कामना करनी चाहिए। फिर पति, देवर, भाई, पुत्र, प्रिय सम्बन्धी इनमें से जिसमें अधिक गुण हों और जो उपस्थित हो, उसका दर्शन करना चाहिए। पति हो तो उन्हे जाकर प्रणाम करना चाहिए।

एक जरूरी बात

गर्भाधान

हिन्दूधर्मशास्त्र मे विवाह और सन्तानोत्पत्ति को धर्म-साधन का एक प्रधान अंग माना गया है। इसीलिए इसमे संयमपूर्ण जीवन विताने और आवश्यकतानुसार उपयुक्त सन्तान उत्पन्न कर समाज को भेंट करने में शर्म की कोई बात न थी। पर आज कल हम लोगों ने विवाह और विवाहित जीवन को

यह शर्म की बात नहीं है

इतना भोग-विलासमय और अप्राकृतिक बना लिया है कि हमारे अन्दर, अपने मन मे जमी हुई कालिमा के कारण, स्वभावतः इन विषयो की चर्चा करते शर्म आती है। वेद मे, उपनिषद में, स्मृतियो तथा वैद्यक-ग्रन्थो में विस्तार के साथ इन बातों का, वैज्ञानिक ढंग से वर्णन किया गया है। और हमारे यहॉ सोलह संस्कारों मे विवाह और गर्भाधान दो मुख्य संस्कार माने गये हैं। बड़े-बड़े आचार्यों का कहना है कि गर्भाधान के समय स्त्री-पुरुष की मनोवृत्ति, स्वास्थ्य, परिस्थिति इत्यादि के अनुकूल ही सन्तान उत्पन्न होती है। इसलिए सदैव विषय-भोग में लिप्त न रहकर शुभ घड़ी और मुहूर्त्त मे, जब मन प्रसन्न और स्थिर हो तथा ऊँचे सात्विक भावो से पूर्ण हो, स्वस्थ और अधिक दिनो तक ब्रह्मचर्य-पूर्वक संयमपूर्ण जीवन बिताने के बाद गर्भाधान करने की हमारी प्राचीन प्रथा हॅसने योग्य नही है, न उसमें शर्म की कोई बात है; बल्कि आजकल की शर्मीली, असयत भोगविलासमय विवाहित जीवन-प्रणाली से कहीं ऊँची और अच्छे परिणाम से भरी हुई है।

इस प्रकार के गर्भ-धारण से संयमी, सुन्दर, नीरोग और बलिष्ठ सन्तान होती है और माता-पिता का सुयश उससे बढ़ता है।

कई बाहरी लक्षणो से बच्चे के पेट में आने का पता चतुर एवं बड़ी-बूढी स्त्रियॉ चला लेती हैं। गर्भ-धारण के बाद मासिक रजःस्राव प्रायः बन्द हो जाता है। पहले महीने में कभी-कभी कुछ मिचलाहट-सी आती है और सुबह उठते समय बड़ा आलस्य मालूम पड़ता है। एक-डेढ़ महीने बाद दाइयॉ एवं घर की बूढी स्त्रियॉ स्वयं ही सब बातो का पता लगा लेती हैं।

यो तो सदा अच्छी बातों पर विचार, सात्विक आहार और शान्त स्वभाव स्त्रियों के चरित्र के आभूषण हैं पर जब उनको यह पता चल

जाय कि पेट में बच्चा है, तब उन्हे अपने स्वास्थ्य और मन को अधिक अच्छा बनाने की सदा कोशिश करनी चाहिए। यह याद रखना चाहिए कि इस समय माता का जैसा रहन-सहन होगा, वैसी ही सन्तान उत्पन्न होगी।

पहले पाँच महीने

गर्भ-स्थिति के बाद के पॉच महीनो मे बच्चे के शरीर के भिन्न-भिन्न अग बनते है। पहले यह गर्भ एक छोटे दाग या छीटे के समान होता है। परन्तु धीरे-धीरे बढ़कर दूसरे महीने में एक इंच, चौथे महीने मे पॉच से छः इच और तोल मे १९-२० तोले या एक पाव के करीब हो जाता है। पहले चार महीने मे उसकी ऑखें, नाक, कान, मुँह, हाथ-पैर, तथा लड़की लड़के के भेद-सूचक अंगविशेष बन जाते हैं। इसके बाद हड्डियॉ गठित होतीं और सिर का ढॉचा पूरा होता है। जिस रूप मे बच्चा उत्पन्न होता है, वह रूप तो प्रायः सात महीनो में पूरा होता है किन्तु साधारणतः बच्चे के सारे शरीर का ढॉचा पॉच महीनों के अन्दर बन जाता है।

शारीरिक विकास

अब यह बात ध्यान रखने की है कि माता के शरीर के खून से ही बच्चे का शरीर बनता और बढ़ता है और जो कुछ वह खाती है उसका उसके खून और शरीर पर बड़ा असर पड़ता है। इसलिए हृष्ट-पुष्ट सन्तान उत्पन्न करने के लिए यह जरूरी है कि गर्भ-धारण के बाद स्त्री विषय-भोग से दूर रहे, संयम से काम ले और खाते-पीते, उठते-बैठते सोते-जागते हर समय अपने शरीर का, अपने स्वास्थ्य का, अपने मन का, ध्यान रक्खे। गर्भवती स्त्री को यह बात कभी नहीं भूलनी चाहिए कि उसके स्वास्थ्य पर ही उसके पेट में स्थित एक जीव की ज़िन्दगी निर्भर है। इसलिए उसे सदा नीरोग और प्रसन्न

गर्भिणी का स्वास्थ्य

रहना चाहिए। उठने-बैठने मे सावधानी रखना चाहिए। ज़ोर से चलना कूदना या उछलना, ज्यादा गरिष्ट और देर से हज़म होनेवाले पदार्थों को खाना एवं एकदम आलसी बनकर बैठ रहना—इन बातों से बचना चाहिए। बहुत-सी स्त्रियॉ यह समझकर कि हमे दो जीवों के लिए भोजन करना है, ऊटपटाग, बिना मात्रा का विचार किये बहुत अधिक भोजन करती जाती है और प्रायः सोंधी चीजें, चाट इत्यादि खाया करती हैं। बहुत-सी तो सोंधी मिट्टी, खपरैल, कुल्हड़ वगैरा भी तोड़कर खा जाती हैं। पर इन बातों का क्षणिक परिणाम चाहे जो हो अन्त में स्त्री और बच्चे दोनो के स्वास्थ्य पर इसका बुरा असर पड़ता है। भूख के मुताबिक, हलका, सादा और जल्द हज़म हो जाने वाला भोजन हमेशा फ़ायदा करता है। आरंभ मे मिचलाहट आती है। ऐसे समय दूध सागूदाना, मूँग की दाल की खिचड़ी इत्यादि जल्द हज़म हो जानेवाली चीज़ें और आम, अनार, नारंगी, अंगूर और इत्यादि फल खूब खाने चाहिए। घी-दूध का उपयोग भी अधिक हो पर इस बात का सदा ध्यान रहे कि कब्ज न होने पावे। इसके लिए रोज़ भोजन के बाद एक चम्मच खाने का साफ़ सोडा (सोड़ा बाइकार्ब) पानी के साथ या दूध के साथ मिलाकर लिया जा सकता है। इससे पेट साफ रहेगा, जलन नहीं होगी और खूब भूख भी लगेगी। गर्भवती स्त्री को कड़ा जुलाब कभी न लेना चाहिए अन्यथा बच्चे के विकास मे बाधा पड़ेगी और उसके बनते हुए शरीर पर इसका बड़ा खराब असर पड़ेगा। कभी-कभी कच्ची पक्की सौंफ खॉड के साथ फॉक लेने से भी पेट साफ़ हो जाता है और भूख भी बढ़ती है। पान में, या यों अलग भी, थोड़ी केसर रोज़ खाने से बच्चे के शरीर का रंग साफ़ और अच्छा निकलता है।

दूसरी बात यह है कि गर्भिणी स्त्री को प्रसन्न और शान्त मन के

साथ रात को शय्या पर जाना चाहिए और जहाँ तक हो नौ बजे रात से पाँच या छः बजे दिन तक अर्थात् ८-९ घण्टे अवश्य सोना चाहिए। दिन को भूलकर भी न सोना चाहिए, हाँ, गर्मी के दिनों में भोजन के बाद कुछ देर लेट सकती हैं।

इस प्रकार गर्भ-स्थिति के बाद के पाँच महीनो में स्त्री जितनी ही नीरोग, प्रसन्न, सयमी और स्वस्थ होगी तथा जितनी ही खून बढाने वाली सात्विक चीजे खायगी बच्चे का शरीर उतना ही सुगठित और बलिष्ठ होगा। अपने स्वभाव को स्त्री जितना मधुर और शान्त रक्खेगी उतनी ही उत्तम सन्तान पैदा होगी।

शेष साढ़े चार महीने

अन्तिम साढ़े चार महीनो में बालक का सिर और दिमाग बनता है, हड्डियाँ सुगठित होती हैं और उसके संस्कार एवं प्रवृत्तियाँ बनती हैं। इसलिए, यद्यपि गर्भ-धारण के समय से ही गर्भिणी को अपने स्वभाव मे शान्ति, मधुरता, संयम, प्रेम एवं अन्य सात्विक वृत्तियो को बनाना चाहिए पर अन्तिम साढ़े चार महीनो मे तो उसे अपना चित्त बहुत ही संयत और शान्त रखना चाहिए; आलस्य की जगह उत्साह और हर्ष से उसका चेहरा खिला रहे और वह सदा अच्छी भावनाओं, अच्छी बातों को मनमे स्थान दे; अच्छी एवं चरित्र बनाने वाली पुस्तके पढ़े। किसी से लड़ाई-झगड़ा न करे; किसी पर चिढकर, क्रोध करके जली-कटी बातें न करे, और अपने सोने के कमरे मे सुन्दर, बलिष्ठ और सात्विक आदर्श के महात्माओं के चित्र टाँगकर रक्खे जिससे उनपर उसकी निगाह पड़ती रहे। इससे सन्तान पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

माता के मनोबल का प्रभाव

बहुत से लोग समझते हैं कि सन्तान देना और उसे अच्छी-बुरी

बनाना ईश्वर के अधीन है। यों तो दुनिया मे सब कुछ ईश्वर की ही मर्जी पर है और उसी की इच्छा सबके अन्दर काम कर रही है पर ईश्वर ने मनुष्य को विवेक और बुद्धि दी है जिसके सहारे वह अनेक आश्चर्यजनक काम कर सकता है। ईश्वर की दी हुई इसी बुद्धि की सहायता से मनुष्य चाहे जैसी सन्तान उत्पन्न कर सकता है। सन्तान का भला-बुरा होना, यदि सम्पूर्णतः नही तो, बहुत-कुछ माता के ऊपर निर्भर है। मै यह कोई नई बात नहीं बता रहा हूँ। शुकदेव, अभिमन्यु, युधिष्ठिर, बुद्ध, नेपोलियन, सिकन्दर इत्यादि दुनिया के अनेक महापुरुषों पर गर्भ की अवस्था मे ही माताओ के रहन-सहन का प्रभाव पड़ा था।

कहने का तात्पर्य यह है कि माता-पिता और विशेषतः माता या गर्भवती के मनोबल का पेट में स्थित बच्चे पर बहुत ज़्यादा प्रभाव पड़ता है। और यह प्रभाव अन्तिम साढ़े चार महीनों में बहुत बढ़ जाता है क्योंकि चार साढ़े चार महीनो के बाद बालक का हृदय बनने लगता है। इसलिए अन्तिम साढ़े चार महीनो में गर्भिणी को बहुत सावधानी से रहना चाहिए।

मैं भावी माताओ और गर्भिणी बहनो से जोर देकर कहना चाहता हूँ कि दुनिया का भविष्य तुम्हारे हाथ है। तुम जिस तरह रहोगी, जैसा सोचो-विचारोगी, तुम्हारी सन्तान भी वैसी ही होगी। इसलिए पहले इस बात को गॉठ बॉध लो और इसपर सच्चे हृदय से, दृढ़ता-पूर्वक विश्वास करो कि तुम जैसी सन्तान चाहो बना सकती हो। इस विश्वास के साथ तुम इस बात का निर्णय शुरू में ही कर लो कि तुम कैसी सन्तान चाहती हो। दुनिया में बहुत-से गुण हैं। उनमें किस गुण का होना तुम अपने पुत्र या पुत्री में सबसे अच्छा या आवश्यक समझती हो? कोई माता शूर-वीर पुत्र चाहती है; कोई

जैसी चाहो बना लो

देशभक्त चाहती है; कोई ज्ञानी और बुद्धिमान चाहती है; कोई तेजस्वी और चरित्रवान चाहती है; कोई त्यागी, सन्तोषी और संयमी चाहती है। इसके अतिरिक्त साधारण स्त्रियाँ रूपवान, धनवान पुत्र चाहती हैं पर यह कोई बड़ी अच्छी कामना नही है। इसी प्रकार कोई सती-साध्वी कन्या पसन्द करेगी; कोई रूपवती और सुगठित शरीर वाली को अच्छा समझेगी; कोई तेजस्वी और परिश्रमी कन्या के लिए लालायित होगी और कोई सीधी-सादी, विनयी और धीरजवान लड़की पसन्द करेगी। इनमे तुम जिसे चाहो, उसे चुन लो। इसका निश्चय कर लेना बहुत जरूरी है कि तुम कैसी कन्या और कैसा पुत्र चाहती हो? मेरी समझ से, अच्छा पुत्र वह है जो भगवान् में विश्वास रक्खे; पाप से डरनेवाला, त्यागी और सदाचारी हो। इसी प्रकार अच्छी कन्या वह है जो विनयी, मृदुभाषिणी, धीरजवान् और साध्वी हो। इस प्रकार के पुत्र और पुत्री की कामना करके, या जिन गुणों को तुम ज़्यादा अच्छा समझो उनका निश्चय करके अन्तिम साढ़े चार-पॉच महीनो में सदा यह प्रार्थना करो कि ऐसी सन्तान हो। इसके साथ तुम्हारा आचरण भी वैसा ही होना चाहिए जैसा तुम अपनी सन्तान के अन्दर देखना चाहती हो। अर्थात् यदि तुम सच्चरित्र, शान्त स्वभाव का, त्यागी और सन्तोषी पुत्र चाहती हो तो तुमको सदा अपना स्वभाव शान्त रखना चाहिए; तुम्हारे मन मे कोई बुरी भावना नहीं आनी चाहिए; दूसरो के प्रति तुम्हारा व्यवहार मधुर, ईर्ष्या-द्वेष एवं लोभ से रहित होना चाहिए और विषय-भोग से दूर रहना चाहिए। इसी प्रकार सोचो कि यदि पुत्र की जगह कन्या हुई तो वह सती साध्वी और विनयी हो और स्वयं भी वैसा ही रहन-सहन तथा विचार रक्खो। एक क्षण भी व्यर्थ की बातों मे न गॅवाओ।

त्यागी और सच्चरित्र—यदि तुम त्यागी, धार्मिक, सच्चरित्र एवं शांत

सन्तान चाहती हो तो राम, बुद्ध, ईसा, गाधी, सावित्री, सीता, दमयन्ती, इत्यादि की जीवनियाँ पढ़ो; उनके जीवन की उन बातों को बार-बार याद करो जिन्हे तुम अपनी सन्तान मे देखना चाहती हो। यदि मिल सके तो उनके चित्र कमरे में सदा ऑख के सामने रक्खो। यदि पुस्तकें न मिल सकें तो उनकी कथायें सच्चरित्र स्त्री-पुरुषो से सुनो। तुम स्वयं अपना जीवन वैसा ही बनाने की कोशिश करो।

शूर-वीर—यदि शूर-वीर और हृष्ट-पुष्ट सन्तान चाहती हो तो लक्ष्मण, कर्ण, अर्जुन, सिकन्दर, नेपोलियन, शिवाजी, राणा प्रताप, चॉदबीबी, लक्ष्मीबाई (झॉसी की रानी) की जीवनियाँ पढ़ो और उनके चित्र देखा करो। राजपूतो की वीरता-भरी कहानियाँ पढ़ा करो।

देशभक्त—देशभक्त सन्तान के लिए भिन्न-भिन्न देशो की स्वतंत्रता की कथायें, मैजिनी, गेरीबाल्डी, मैक्स्विनी, खुदीराम, कन्हाईलाल, तिलक, चित्तरंजनदास, लाजपतराय, मोतीलाल इत्यादि की जीवनियाँ पढ़ो; उनके चरित्र एव चित्र पर सदा ध्यान रक्खो।

ज्ञानी—ज्ञानी सन्तान के लिए प्राचीन ऋषि मुनियों, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ इत्यादि के चित्र-चरित्र पर विशेष ध्यान देना चाहिए। सन्तो के भजन और जीवनियाँ भी उपयोगी हैं।

इसी प्रकार जैसी सन्तान की इच्छा हो उसी तरह के आचार-विचार, पठन-पाठन मे लगा रहना चाहिए और रोगी, अन्धे-लूले-लॅगड़े, चिड़चिड़े, लालची, विषयी स्त्री-पुरुषो के दर्शन से भी, यथासम्भव, बचना चाहिए। घर मे कोई रोगी हो तो उसके बारे में बहुत ज़्यादा न सोचना चाहिए अन्यथा बच्चा रोगी होगा। घर-गृहस्थी के कामो मे यथासम्भव सहायता करते हुए भी किसी बात की अधिक चिन्ता न करनी चाहिए।

तुम देख सकती हो कि एक ही माता-पिता की भिन्न-भिन्न सन्तानें

भिन्न-भिन्न और कभी-कभी एक-दूसरे के विरोधी स्वभाव की होती हैं। इसका कारण यही है कि गर्भावस्था मे माता-पिता के जैसे विचार और आचार होते हैं उसका उनपर प्रभाव पड़ता है। गर्भावस्था मे यदि माता-पिता का जीवन चिन्ता और दुखो मे बीतेगा तो सन्तान का स्वभाव भी, बहुत करके, करुण, उदास, चिन्तित और दुःखमय होगा। इससे इस विषय में खूब सावधानी से काम लो और अपने शरीर और मन को सदा नीरोग, स्वस्थ, शान्त, प्रसन्न और सुविचारो से भरा-पूरा रक्खो। यह मत भूलो कि तुम्हारी जरा-सी गलती से तुम्हारी सन्तान का सारा जीवन नष्ट हो जायगा और फल-स्वरूप तुम्हे भी आगे बहुत कष्ट भोगने पड़ेगे।

दुनिया के अनेक विद्वानो का कहना है कि पिता की अपेक्षा माता का सन्तान पर ज़्यादा प्रभाव पड़ता है। बच्चा माता के पेट मे, उसी के रक्त-मास से बढता है; पैदा होने पर उसी का दूध पीता है। वही उसे सुलाती, खिलाती-पिलाती है; उसी की गोद मे वह बढ़ता है; उसी के लाड-प्यार; क्रोध और प्रसन्नता से उसके सस्कार बनते हैं। बच्चे के जीवन का वही केन्द्र है; वही उसकी रक्षा है, वही उसकी छाया है; बिना उसके उसका जीना कठिन है। बिना पिता के बच्चा माता के साथ बिना किसी असुविधा का अनुभव किये हुए बढ़ सकता है पर यदि दुर्भाग्यवश माता की मृत्यु हो जाय तो बच्चा, बहुत करके तो, मर ही जायगा और बच गया तो भी, रोगी, अनाथ, दुःखी और उदास होगा। इन सब बातो से सहज ही सन्तान पर माता के प्रभाव का अनुमान किया जा सकता है। इसलिए माता होने वाली बहनें सदा इन बातो को याद रक्खे तो उनका भला होगा।

गर्भ का विकास

मैं ऊपर लिख चुका हूँ कि बिल्कुल आरम्भ मे गर्भ एक जरा से दाग के समान, बीच मे कुछ उभरा, होता है। दूसरे महीने एक पैसे के बरा-

बर, चौथे महीने पॉच-छः इञ्च लम्बा और एक पाव वज़न का और नवे महीने, सब अंगो के ठीक-ठीक बन जाने पर, लगभग बीस इंच लम्बा और तोल मे साढ़े तीन सेर रहता है।

पेट मे बच्चे का पोषण और विकास माता के खून से ही होता है। गर्भ-स्थिति के प्रायः दो महीनों बाद नाल बनता है। यह नाल बच्चे की नाभि से लगा रहता है और इसका सम्बन्ध माता के खून एवं रस की नाड़ियो से रहता है। इसलिए गर्भिणी जो खाती-पीती है उसीके द्वारा बने रस और खून से बच्चे का विकास होता है। इससे सिद्ध होता है कि गर्भिणी का स्वास्थ्य जितना ही अच्छा रहेगा; उसके शरीर मे जितना ही खून बनेगा, बच्चे का विकास उतना ही अच्छा होगा।

किन्तु इसके साथ ही यह आश्चर्य की बात है कि बहुत-सी हृष्ट-पुष्ट और बलवान स्त्रियो को दुर्बल सन्तान उत्पन्न होती देखी जाती है और बहुत-सी कमजोर स्त्रियो को खूब हृष्ट-पुष्ट और बलवान सन्तान उत्पन्न होती है। कहीं-कहीं यह भी देखने मे आता है कि माता-पिता दोनो सबल और स्वस्थ हैं; गर्भावस्था मे स्त्री ने भोजन भी पुष्टिकर किया फिर भी निर्बल सन्तान उत्पन्न हुई। असल बात यह है कि बच्चे का सबल होना मुख्य रूप से गर्भिणी के संयम, गर्भ-स्थिति के समय की मनोवृत्ति, संस्कार और भोजनादि पर निर्भर है।

गर्भ-स्थिति से बच्चा पैदा होने तक प्रायः २८० दिन या नौ महीने दस दिन लगते है। कभी इससे ज़्यादा दिन भी लग जाते हैं। सुश्रुत के मत से ग्यारहवे महीने भी बच्चा पैदा हो सकता है।

प्रसव

प्रसव-काल अर्थात् बच्चा पैदा होने का समय गर्भिणी के लिए बड़ा कठिन होता है। कितनी ही स्त्रियॉ पानी से निकाल ली हुई मछली के

समान बेहाल होकर तड़पती हैं। उस पीड़ा का ठीक-ठीक वर्णन शब्दों में हो नहीं सकता। प्राचीन कवियों ने भी इसका वर्णन किया है। तुलसीदासजी कहते हैं—'बॉझ कि जान प्रसव की पीरा'—बॉझ स्त्री प्रसव की पीडा क्या जान सकती है ? किन्तु जहॉ बहुत-सी स्त्रियो को प्रसव-काल में असह्य वेदना होती है वहॉ गॉवो की छोटी जातियो की स्वस्थ स्त्रियो को बच्चा पैदा होने के घटे-आध घण्टे पहले तक खेतो मे काम करते देखा गया है। उनके लिए प्रसव मे इतनी कठिनाई नही होती; न दाइयो की जरूरत पड़ती है, न वे इतना हाय-तोबा मचाती हैं। इसमे यह प्रकट होता है कि यद्यपि प्रसव की पीड़ा कठिन होती है फिर भी इसकी कमी-ज्यादती गर्भिणी के स्वास्थ्य और स्वभाव पर निर्भर है। कमजोर या कोमल स्त्रियो को निश्चय ही गहरी वेदना सहनी पड़ती है; आलसी और आरामतलब स्त्रियो का भी बुरा हाल होता है पर जो स्त्रियाँ आलसी नहीं हैं और सदा काम-काज मे लगी रहती हैं, धीरज से काम लेती है उन्हें उतना कष्ट नहीं होता। इसलिए जो बहने स्वस्थ और उत्तम सन्तान के साथ ही यह चाहती है कि प्रसव-काल मे उन्हे अधिक पीड़ा न हो तो उन्हे सदा आलस्य से दूर रहना और परिश्रमपूर्वक घर-गृहस्थी के काम-काज करना चाहिए। जो स्त्रियॉ रोज मील आधा मील टहलती है, उन्हे बहुत कम कष्ट होता है। पर इसका यह मतलब नहीं कि गर्भिणी से बहुत कम काम लेना चाहिए। गर्भिणी को उछलना-कूदना, पेट दबनेवाले काम, दौड़ने, भारी बोझ उठाने इत्यादि से और अन्तिम दो-तीन महीनो मे, यदि सम्भव हो, आग से दूर रहना चाहिए। अन्य कार्यों को खूब मन लगाकर धीरे-धीरे पर उत्साह के साथ करना चाहिए।

प्रसव-पीड़ा

बच्चा पैदा होने का समय ज्यो-ज्यो नजदीक आता है, गर्भिणी का शरीर और मुँह सूखता और कुम्हलाता जाता है। मुँह और ऑखो मे

शिथिलता मालूम पड़ती है; अन्न से अरुचि हो जाती है। एक प्रकार का जल गिरता है। बच्चा पैदा होने के ८-१० दिन पहले से ही पेट हलका मालूम पड़ता है; पेशाब जल्दी-जल्दी उतरता है; टट्टी साफ नहीं होती और उसमे तकलीफ भी होती है। इन लक्षणो से अनुमान किया जा सकता है कि बच्चा पैदा होने का समय आ गया है। ये लक्षण उन स्त्रियों में विशेषकर होते हैं जो पहली बार गर्भवती होती हैं।

आसन्न-प्रसूता के लक्षण

प्रसव के समय से १२-१४ घण्टे पहले प्रायः पेट के पिछले हिस्से मे दर्द बढ़ने लगता है। इसका कारण यह है कि बालक धीरे-धीरे खिसकता है। झिल्ली की जिस पतली थैली में बच्चा रहता है वह फैलती और आगे आती जाती है। इस समय ज्यादा पीडा होती है क्योंकि बच्चा पैदा होने के कुछ पहले पतली झिल्ली फट जाती है और बच्चे के साथ पेट की खेड़ी भी खिंचती आती है। इस समय स्त्रियॉ बड़ी असावधानी करती हैं, व्याकुल होकर बार-बार उठती बैठती हैं; चलती-फिरती हैं। कई उकड़ूँ बैठकर कॉखती और जोर लगाती है। बड़ी-बूढी स्त्रियॉ पेट मसलती हैं। लोग समझते है कि इससे बच्चा जल्दी होगा। यद्यपि इससे बच्चे के जनने के समय मे घण्टे-आध घण्टे की कमी हो सकती है पर इन कामो से कभी-कभी बहुत ज़्यादा नुकसान हो जाने की भी सम्भावना बनी रहती है। इन बातो से बच्चा कभी-कभी टेढ़ा हो जाता है और उसके अङ्ग बेडौल हो जाते हैं। इसलिए अंग्रेज़ो के यहॉ प्रायः गर्भिणी को पलङ्ग पर लिटाकर ही बच्चा जनवाते हैं। वैद्यक-ग्रन्थो का भी यही उपदेश है। इससे बच्चा सुडौल रहता है।

भूलें

प्रकृति का साधारण नियम यह है कि बच्चा सिर के बल पैदा होता

है। पर कभी-कभी कूदने-फाँदने, चोट लग जाने या गर्भिणी के रोगी होने की अवस्था मे बालक उलटा या टेढ़ा भी हो जाता है। उस अवस्था में पहले क्रमशः पाँव और हाथ नीचे दिखते हैं। चतुर दाइयो का कर्त्तव्य है कि ऐसी अवस्था मे बडे धीरज, सावधानी और शान्ति से काम लें और बच्चे के सिर को धीरे-धीरे नीचे लावें। कभी-कभी सिर और हाथ, सिर और एक पाँव या चारो हाथ-पाँव साथ निकलते हैं। यह बड़ी भयङ्कर अवस्था है; इसमे बच्चे और माता दोनो की मृत्यु तक हो सकती है इसलिए कई बार आप्रेशन कराके तब बच्चे को पेट से निकालते हैं।

भयकर अवस्था

जब बच्चा गर्भ से बाहर आता है, उस समय दाई या घर की चतुर स्त्रियो को बड़ी सावधानी रखनी चाहिए। जब बच्चे का सिर निकले तो उसके साथ ही यह देख लेना चाहिए कि सिर के साथ कुछ और तो नहीं लिपटा है। कभी-कभी सिर के साथ नाल भी लिपटा हुआ बाहर निकलने लगता है। यदि ऐसा हो तो बच्चे के सिर से नाल निकाल देना चाहिए। सिर को दाहिने हाथ से सम्हालना और बाये हाथ से पेट को धीरे-धीरे दबाना चाहिए। इससे बच्चा सरलता से पेट के बाहर आ जायगा। यदि इस समय देर लगे तो समझना चाहिए कि बच्चे का सिर ज्यादा बड़ा है या कोई विकार है।[१] बहुत-सी दाइयाँ बच्चे को खींचकर निकालती हैं पर यह बुरी बात है; इससे हाथ-पाँव खराब और टेढे हो जाने का भय रहता है।

सौरी-घर

गर्भिणी स्त्री के लिए बच्चा जनने का जो कमरा होता है उसे सौरी-घर या प्रसूति-गृह कहते हैं। हमारे देश में, अज्ञान-वश, इसके लिए प्रायः

१ 'सन्तति-शास्त्र', (श्री अयोध्याप्रसाद) काशी, १९२३।

सबसे ख़राब और गन्दी एवं प्रकाश-हीन कोठरी चुनी जाती है और उसमें हवा आने के सारे रास्ते, सूराख़ इत्यादि तक, बन्द कर दिये जाते हैं। बच्चों की बढ़ती हुई मृत्यु-सख्या का एक बड़ा कारण यह मूर्खता भी है। यदि बुद्धि से काम लिया जाय और स्वास्थ्यकर नियमों पर ध्यान दिया जाय तो बहुत-सी कठिनाइयो और अनेक प्रकार की दुर्दशा से हमारी रक्षा हो सकती है।

सबसे पहली बात, जिस पर ध्यान देना बहुत ज़रूरी है, यह है, कि सौरी-घर खूब साफ़-सुथरा, प्रकाशमय और हवादार होना चाहिए। तङ्ग

स्थान

और अन्धेरी कोठरी मे गर्भिणी को रखने से अनेक रोग हो जाते हैं। यह ज़रूरी नहीं है कि बड़ा भारी और शानदार कमरा हो, भले ही वह कच्चा, मिट्टी का, हो पर [1] लम्बा चौड़ा हो, उसमे प्रकाश आने की गुँजाइश हो, आस-पास बदबूदार नालियाँ या पाखाना इत्यादि न हो। ऐसे कमरे को अपनी हैसियत और सुविधा के अनुसार गोबर-मिट्टी या चूने से लीप-पोत एवं धोकर साफ रखना चाहिए और खूब सूख जाने पर घण्टे-आध घण्टे अँगीठी जलाकर कमरे को बन्द रखना चाहिए। इससे फ़ायदा यह होगा कि धुएँ के कारण विषैले कीड़े और मच्छर आदि मर जायँगे। इसके बाद दशाग, लोबान या अगर-बत्ती इत्यादि सुगन्धित चीजे जलाकर उसे शुद्ध कर लेना चाहिए।

इसके बाद गर्भिणी को स्वच्छ धुले हुए वस्त्र पहनाकर उसके अन्दर

१ वैद्यक के प्रसिद्ध प्राचीन आचार्य वाग्भट्ट तक ने लिखा है—

प्राक्चैव नवमान्मासात् सूतिकागृह माश्रयेत।
देशे प्रशस्ते सम्भारे सम्पन्नं साधकेऽहति॥

इसका मतलब यह है कि नवें महीने में लम्बे-चौड़े हवादार स्थान में बने एवं सब आवश्यक सामग्री से युक्त घर को सूतिकागृह बनाना चाहिए।

ले जाना चाहिए। आजकल स्त्रियाँ बहुत साधारण, पुराने और कभी-कभी मैले वस्त्र पहनकर अन्दर जाती हैं क्योंकि बहुत जगह ऐसा कायदा है कि प्रसूता या ज़च्चा के काम मे आने वाले वस्त्र फिर आगे के काम मे नहीं आते और चमारिन या दाई ले जाती है। थोड़े-से कपड़ो के लोभ से ऐसा करना बड़ी ख़राब बात है क्योकि पुराने और गन्दे कपडो मे कीडे होते हैं जो शरीर की कमज़ोरी के कारण बहुत जल्द गर्भिणी के स्वास्थ्य को नष्ट करने-वाले स्थायी रोग उत्पन्न कर जाते है। बच्चा पैदा होने के पहले या सौरी-घर मे भेजते समय गर्भिणी को बहुत ही हल्के और ढीले वस्त्र पहनाना चाहिए। साड़ी बहुत छोटी और पतली हो; जिससे पेट कस न जाय। पिन से बाँध देना सबसे अच्छा उपाय है। पेट के ऊपर एक पतली पट्टी बाँधने से पेट में बच्चे का बोझ कम मालूम पड़ता है।

गर्भिणी के लिए भीतर जो पलङ्ग या चारपाई हो वह खूब मजबूत, कसी और खटमल इत्यादि जन्तुओ से रहित होनी चाहिए। पलङ्ग बहुत ऊँचा न हो। लकड़ी की बड़ी चौकी इस काम के लिए अधिक उपयुक्त है। उसपर एक गद्दा, फिर ऊपर एक या दो कम्बल, फिर दरी, उसपर एक किरमिच या मोमजामा बिछाना चाहिए और सबके ऊपर धुली हुई साफ सफेद चादर होनी चाहिए। ओढ़ने के लिए भी धूप मे सुखाये हुए ऋतु के अनुकूल काफी कपड़े होने चाहिएँ। गर्भिणी के उपयोग—बिछाने ओढ़ने या अन्य कामो—के लिए जो कपड़े हो उन्हें पहले से ही खौलते हुए गर्म पानी मे देर तक रखकर, निचोड़कर, सुखा रखना चाहिए। पानी मे थोडा पारा डाल देने से कपडो के अन्दर के सब जहरीले कीड़े मर जाते हैं।

ओढना-बिछौना

बच्चा होने के पहले से सब सामान तैयार रखना चाहिए। प्रायः किसी चीज़ की ज़रूरत पड़ने पर स्त्रियाँ घबड़ाई-सी इधर-उधर दौड़ती

आवश्यक सामग्री

फिरती है; उस समय जो चीजें घर में होती हैं वे भी नहीं मिलती। इसलिए अच्छा यह है कि प्रसूति-गृह मे गर्भिणी को भेजने के पहले से ही सब सामान वहाँ लाकर कायदे से सजा-कर एक तरफ रख दिया जाय। निम्नलिखित चीजे ज़रूरी हैं:—

१—खूब अच्छा लम्बा-चौड़ा कसा पलङ्ग या लकड़ी की चौकी।

२—एक साफ गद्दा, दो-तीन कम्बल (बिछाने के लिए), एक दरी, मोमजामा या किरमिच के दो बडे टुकड़े, चार साफ धुली सफेद चादरें (बिछाने के लिए), ओढ़ने के लिए ऋतु के अनुकूल कपडे, पतली बारीक मलमल-जैसी खादी या स्वदेशी वस्त्र के आध-आध गज़ के चार टुकड़े। थोड़ा साफ पुराना वस्त्र। डेढ़ गज़ लम्बी दो-तीन गिरह चौड़ी कपड़े की साफ धुली पट्टी। दो तौलिये।[1]

३—अँगीठी, कढ़ाई, दो-तीन पानी गरम करने के बर्तन।

४—गर्म पानी, सरसों का तेल, अच्छा साबुन (कार्बोलिक हास्पि-टल सोप हो तो अच्छा), तेज़ चाकू, तेज़ बड़ी कैंची, नये रेशमी सूत की लच्छी, मोमबत्ती, दियासलाई, बोरिक पाउडर, बेसन, शहद, सोठ, अज-वाइन, चम्मच, उपले की छनी हुई राख, अण्डी का तेल, फिनायल, स्पंज।

हमारे यहाँ हवा को लोग, अज्ञानवश, भयानक समझने लगे है। वे यह भूल गये है कि हवा का दूसरा नाम हमारे यहाँ प्राण है। स्वच्छ और

हवा से न डरो

ताज़ी हवा से बढकर स्वास्थ्यकर वस्तु दुनिया में दूसरी नहीं है। इसलिए ताज़ी हवा कभी नुकसान नही करती। हाँ, जब तेज़ हवा चलती हो तो उसके झोको से गर्भिणी या बीमार को बचाना चाहिए। गर्भिणी के सामने वाले दर्वाजे या खिड़कियाँ बन्द रखनी चाहिएँ जिससे हवा सीधे उसके ऊपर न आवे; बगल की खिड़कियाँ खुली

१. सब कपड़े ख़ौलते गर्म पानी में उबाल कर सुखाये हुए होने चाहिएं।

रहनी चाहिएँ जिससे हवा कमरे में आती रहे पर उसके तेज़ झोंके गर्भिणी तक न पहुँचें। यह याद रक्खो गर्भिणी के लिए भी और बच्चा पैदा होने के बाद बच्चे के लिए भी शुद्ध वायु बड़ी ज़रूरी चीज़ है।

साफ़-सुथरे कपड़ों का इस्तेमाल दूसरी बात है जिसकी तरफ़ ध्यान देना चाहिए। आश्चर्य की बात तो यह है कि बच्चा पैदा होने की खुशी में जहाँ बहुत-सा रुपया दान-दक्षिणा और उत्सव-बधावे में खर्च कर दिया जाता है वहाँ प्रसूता (ज़च्चा) को दस दिन फटे-पुराने गूदड़ों में ही काटने पड़ते हैं। इससे बड़ी हानि होने की सम्भावना रहती है। इसलिए चाहे और ख़र्चों में कमी कर दी जाय पर इन बातों में कमी न करनी चाहिए।

तीसरी बात यह है कि सौरी-घर या प्रसूति-गृह में आग जलाने और धुँआ करने की बड़ी बुरी रीति प्रचलित है। एक ओर आग जलाई जाती है, दूसरी ओर हवा आने के सारे रास्ते बन्द कर दिये जाते हैं। यह याद रखने की बात है कि आग में एक तरह की विषैली गैस रहती है जो बहुत जल्द हवा को ख़राब कर देती है। इसलिए आग उसी हालत में जलानी चाहिए जब खूब सरदी पड़ रही हो या पानी बरसने से नमी बढ़ गई हो या शीत लग जाने का डर हो। गर्मी के दिनो में या दिन को जब हवा मे सर्दी न हो सौरी-घर मे आग हर्गिज़ न जलानी चाहिए और ठण्ड के दिनो मे भी सिगड़ी या अँगीठी में कोयले इत्यादि बाहर ही जलाकर धुँआ बन्द हो जाने पर ही, कमरे के अन्दर ले जाना चाहिए। चाहे खूब सर्दी ही पड़ रही हो, कमरे के अन्दर धुआँ हर्गिज़ न होने देना चाहिए। इससे साँस लेने मे तकलीफ़ होती है और फेफड़ों पर बहुत ज़ोर पड़ता है तथा हवा विषैली हो जाती है। गर्भिणी को गर्मी पहुँचाने की सबसे अच्छी तरकीब तो यह है कि गर्म पानी की बोतले भरकर पलङ्ग पर, उसके पास दोनों तरफ़ रख दी जायँ।

धुआँ मत करो

प्रसव के बाद

बच्चा जनाने के लिए आजकल जो दाइयाँ, चमारिनें या नाइनें आती हैं वे अत्यन्त मूर्ख होती है; उनको बच्चे और माता की सुविधा और सेवा का उतना ध्यान नही रहता जितना भरपूर टके वसूल करने का रहता है। इसलिए जहाँ मिल सके होशयार और पासशुदा दाई को बुलाना चाहिए। दाई मधुरभाषिणी और साफ-सुथरा रहने वाली हो। जिनको ये सुविधाये प्राप्त न हो सकें उनको भी निम्नलिखित बातो पर जरूर ध्यान देना चाहिए—

दाई कैसी हो

१—अच्छी से अच्छी और सबसे होशयार दाई को बुलाना चाहिए।

२—सौरी घर मे प्रवेश करने के पूर्व गरम या ताजा पानी से अच्छी तरह उसके हाथ-पैर, मुँह धुलवा देना चाहिए और उसे साफ कपड़े पहनाना चाहिए। दोनों हाथों के नाखून अवश्य कटवा देने चहिएँ।

३—बच्चा होने के बाद उसकी नाभि मे लगा हुआ नाल भी बाहर आ जाता है। यह वही नाल है जिसके द्वारा माता के शरीर से खून एवं अन्ये आवश्यक सामग्री, गर्भावस्था मे, बच्चे के शरीर मे पहुँचती रहती है। बच्चा होने के कुछ देर बाद इस नाल को काटा जाता है। इस नाल को काटने में हमारे यहाँ बड़ी मूर्खता और असावधानी से काम लिया जाता है। सच पूछिये तो बच्चो के शरीर के भविष्य का इतिहास बहुत-कुछ प्रसव के समय की सावधानी और नाल के ठीक-ठीक काटने पर निर्भर है। गाँवो मे या साधारण लोगो के यहाँ जो चमारिनें नाल काटने आती हैं, वे अपने साथ एक हँसिया या भोथरी छुरी लाती हैं। इस हँसिये या छुरी से न जाने कितने बच्चो के नाल कटे होते हैं; इसमें अनेक रोगों के जहरीले कीडे भरे रहते हैं। इसे वे सब धोती भी नहीं। इसलिए ऐसे औजार से नाल काटने मे बच्चों को अनेक रोग

हत्या मत करो

जन्म से ही हो जाते है। इस समय बच्चा बडा कोमल होता है और दुनिया की बाहरी कठिनाइयो को सहने की शक्ति उसके अन्दर बिल्कुल नहीं होती; इससे स्वभावतः बाहरी कीटाणुओ का असर उसके शरीर पर बहुत जल्द होता है। ऐसे गन्दे औज़ार से नाल काटने पर एक खास तरह का रोग (जिसे 'टिटनेस', 'धनुस्तम्भ' या 'जमोगा' कहते हैं) हो जाता है। इस रोग मे बच्चा रोता, छटपटाता, शरीर ऐंठता और प्रायः दुनिया से चल बसता है। बहुत जगह ऐसा ऐसा भी रिवाज है कि प्रत्येक कुटुम्ब मे इसके लिए अलग एक छुरी रहती है। बाप-दादो के समय से चली आती हुई, जंग लगी, इस भोथरी छुरी से कुटुम्ब के सब बच्चो के नाल काटे जाते है। यह रिवाज भी बड़ा खतरनाक है। क्योकि बहुत दिनो के रक्खे और नित्य उपयोग मे न आने वाले धातु मे छोटे-छोटे ज़हरीले कीडे पैदा हो जाते हैं जो बच्चे के खून मे मिल जाते और तरह-तरह के कठिन रोग पैदा कर देते है। दूसरी बात यह है कि इस भोथरे औज़ार से काटने पर नाल खिंच जाती है; उससे ज्यादा खून निकलने के कारण बच्चा या तो मर जाता है या बहुत कमज़ोर हो जाता है। यदि भगवान की दया से इन दोनों बातों से रक्षा हो गई तो भी नाल पक कर घाव हो जाता है और बच्चे को बड़ा कष्ट देता है। मैंने सुना है कि कही-कहीं इससे भी बुरे ढंग से नाल काटने का काम किया जाता है। कहीं ठीकरे से रगड़कर और कहीं पतली लकड़ी से भी नाल काटते हैं। इससे बच्चे को बडा कष्ट होता है। नाल काटने मे हमेशा जल्दी करनी चाहिए क्योकि जब तक नाल नहीं कटता बच्चे को साँस लेने मे बड़ी कठिनाई पड़ती है। नाल कटते ही बच्चा साँस लेने लगता है।

नाल काटने की सबसे अच्छी, सुविधाजनक और स्वास्थ्यकर रीति यह है कि बच्चा पैदा होने के पहले ही एक नई और खूब तेज बड़ी कैंची

नाल काटने की विधि

खौलते हुए पानी मे डाल रखनी चाहिए और बच्चा पैदा होने पर उसको नाल काटने के काम मे लाना चाहिए। इसकी तरकीब यह है कि नाभि से चार अंगुल छोड़कर नाल पर एक रेशमी या साधारण साफ़ तागे से मज़बूत गाँठ बाँधे और फिर पहली गाँठ से दो इंच या लगभग चार अंगुल पर वैसी ही दूसरी गाँठ बाँधे फिर दोनों गाँठों के बीच से नाल को उसी तेज़ कैंची से झटपट काट दे। इस तरकीब से खून बहुत थोड़ा गिरता है और बच्चे को कष्ट भी नही होता।

इस तरह काटने के बाद नाल का जो हिस्सा बच्चे की नाभि से लगा रहता है, उसके भी पक जाने का डर बना रहता है। इसलिए इसमें भी एक धागे से गाँठ बाँधकर उस धागे को बच्चे के गले मे माला की तरह पहना देना चाहिए। नाल के कटे हुए ऊपरी हिस्से मे थोड़ा-सा बोरिक पाउडर भर कर उस पर एक साफ़ मलमल-जैसी खादी का टुकड़ा रखकर उसे एक हलकी पट्टी से बाँध देना चाहिए। बोरिक पाउडर के ऊपर कपडे का जो टुकड़ा रक्खा जाय वह खौलते पानी मे दो मिनट तक भिगोकर रक्खा जाय जिससे उसके ज़हरीले कीड़े नष्ट हो जायँ। नाल को सदा धूल या और तरह की मैल से बचाना चाहिए, नहीं तो उसके पक जाने का बडा डर रहता है।

बहुत-से लोग कटे हुए नाल मे गरम राख या कई चीज़े लगाते है। "बच्चे की नाल मे एक कण कस्तूरी और ज़रासी राय सेंदुर भरकर सेंक देने से सदा के लिए बालक पित्त-प्रधान प्रकृति का हो जाता है और कफ़ या बादी उसे जीवन मे कम सताते हैं।" *

बच्चा पैदा हो जाने के कुछ देर बाद माता को कठिन पीड़ा होती है। कभी-कभी ज़्यादा दर्द के कारण वह बिल्कुल बेहोश हो जाती है। इस समय

* 'सफल-माता' पृष्ठ ९६-९७, चाँद-कार्यालय, प्रयाग।

ध्यान देने की बातें

बड़ी सावधानी की आवश्यकता पड़ती है। दाई को बालक की ओर ध्यान देना चाहिए, साथ ही उसे चाहिए कि माँ के पेट को हाथों से दबा रक्खे। इससे भीतर की थैली (जरायु) फैलती नहीं। अनजान दाइयाँ कभी-कभी माँ को उठाकर खडा कर देती हैं कि खून गिर जाय; ऐसा करना ठीक नहीं है। बच्चा पैदा होने के साथ या थोड़ी देर वाद खेड़ी, आमर या आँवल गिरती है; इसमें खून-मल इत्यादि लगे रहते हैं। जब तक यह न गिरे पेट दबाये रहना चाहिए, इससे वह जल्द निकल आती है। इस आमर का थोडी भी मात्रा मे पेट मे रह जाना बड़ा हानिकर होता है; जिनके पेट में इसका एक भी टुकड़ा रह जाता है वे प्रसव के अनेक रोगो में फँस जाती हैं। बच्चा पैदा होने के वाद गर्भाशय धीरे-धीरे सिकुड़ कर अपनी पहले-जैसी अवस्था में आ जाता है परन्तु खेड़ी रहजाने से भली-भाँति सिकुड़ने नही पाता, खून वहुत निकल जाता है। भीतर जो टुकड़ा रह जाता है, वह सड़ जाता है। प्रसूतिज्वर इत्यादि भयङ्कर रोग, जिनसे बचना कठिन है, इसी से उत्पन्न होते हैं।

जो भी खेड़ी, आमर इत्यादि निकले उसे तुरन्त दूर मैदान में गड़वा देना चाहिए; थोडी देर भी पड़े रहने से उसमें कीड़े पैदा हो जाते हैं और

विश्राम की जरूरत

हवा विषैली हो जाती है जिससे अनेक बीमारियाँ फैलती हैं। आमर—मल और रक्त—इत्यादि निकल जाने के बाद प्रसूता को साफ करके डेढ़ गज़ लम्बी और आध गज चौड़ी साफ मुलायम कपड़े की एक पट्टी से उसका पेट कसकर बाँध देना चाहिए। खून इत्यादि निकलने का डर रहता है इसलिए साफ एवं मुलायम कपड़ो की एक गद्दी और उसपर एक लँगोटी बाँध देनी चाहिए। इससे पेट और गर्भाशय दोनों ठीक रहते हैं। इसके बाद धीरे-धीरे उसकी साड़ी निकाल

कर हलकी छोटी साडी लपेट देनी चाहिए, पर ज्यादा हिलाना-डुलाना या खड़ा करना ठीक नहीं है। प्रसूता को अधिक-से-अधिक देर तक चुपचाप आराम करने देना चाहिए, बहुत-सी स्त्रियाँ बार-बार आकर उसे टोकती और जगाती हैं, यह ठीक नहीं है। पर हाँ, सोते समय उसकी नाड़ी और चेहरे पर ध्यान रखना चाहिए। यदि चेहरा या नाखून ज़्यादा पीले पड़ जायँ तो समझना चाहिए कि खून अधिक गिर गया है। कभी-कभी खून गर्भाशय में ही जम जाता है जिससे हाथ-पाँव के नाखून पीले पड़ जाते हैं। यह भय की बात है। ऐसी अवस्था में योग्य डाक्टर से तुरन्त सलाह लेनी चाहिए।

इसके बाद कम-से-कम दस दिन तक तो माता को चुपचाप चारपाई पर ही चित लेटे रहना चाहिए। टट्टी-पेशाब के लिए भी चारपाई पर पड़े-पड़े ही इतजाम हो जाय तो बहुत ठीक। क्योंकि इन दिनों माता के शरीर में जो कमी हो जाती है वह पूरी होती है; ज़रा भी धक्का या चोट लगने से बड़ी हानि हो सकती है। हम लोगों के यहाँ छः दिन बाद—छठी को—उठाकर स्नान इत्यादि कराते हैं। पर यह अच्छी बात नही है। पहले छः दिनों मे तो उसे, यथासंभव चारपाई पर भी उठकर न बैठना चाहिए।

दस दिन की हिफाजत

माता के शरीर के भीतरी अवयवों को पहले की अवस्था मे लौटने में कम-से-कम दो महीने लगते है। इसलिए दो महीनो तक माता को बहुत कम उठना-बैठना चाहिए और ज़्यादा समय लेटे रहना और विश्राम करना चाहिए।

जिस दिन बच्चा हो उस दिन माता को पेशाब आना अच्छा है; टट्टी न आवे तो भी चिन्ता की कोई बात नहीं है।

माता को बच्चा होने के दिन तो कुछ खाने को नहीं देना चाहिए

क्योंकि इन्द्रियाँ एकदम निर्बल पड़ जाती हैं और भोजन पचाने की शक्ति पेट मे नहीं रहती। इसके बाद चार दिनो तक गाय का उबाला हुआ थोड़ा कुन-कुना दूध देना चाहिए;

खाने को क्या दें ?

अन्न कुछ भी न दिया जाय तो बहुत अच्छा। इसके बाद पाँच दिन तक दूध-सागूदाना दे और फिर क्रमशः दाल का पानी, दलिया, मूँग की पतली खिचडी इत्यादि देना चाहिए। जिस स्त्री का स्वास्थ्य बहुत अच्छा हो उसे दूसरे दिन गरम घी और पुराने गुड को घोलकर तथा उसमे सोंठ, पीपल का चूर्ण या अजवायन का चूर्ण मिलाकर पिलाना चाहिए। पीने के लिए अजवायन का पका हुआ पानी देना चाहिए। अजवायन बड़ी अच्छी चीज़ है। यह बुखार को रोकती, पाचन-शक्ति बढाती और अधिक पेशाब लाकर पेट एव गर्भाशय के सब विकारो को दूर करती है। पीने के लिए साधारण पानी हर्गिज़ न दिया जाय। प्यास लगे तो दूध देना चाहिए इस बात का हमेशा ख़याल रक्खा जाय कि देर से हज़म होने वाला भोजन माता को कभी न देना चाहिये। कम-से-कम दो महीने तक उसे बिल्कुल हल्का भोजन करना चाहिए, जो जल्द हज़म हो जाय और पेट साफ़ रहे। बहुत-सी स्त्रियाँ माता की शारीरिक कमज़ोरी दूर करने के लिए उसे बादाम का हलवा इत्यादि खिलाती हैं, यह बुरी बात है। इससे उलटे हानि होती है। दो महीनो तक दूध, फल, चावलो का माँड़, पुराने चावलो का थोड़ा भात, मूँग की खिचडी, पतली रोटी खाना अच्छा है। दूध मे सोंठ का चूर्ण या मुनक्के डालना चाहिए। भोजन मे हल्दी का चूर्ण मिलाकर खाना भी अच्छा है। हल्दी से शरीर की हड्डियाँ मजबूत होती हैं और दर्द दूर होता है।

यदि गरमी के दिन न हो तो जच्चा या प्रसूता को दशमूल का काढ़ा या दशमूलासव १५-२० दिनो तक दिया जा सकता है।

: ४ :

नवजात शिशु

अहा ! कैसा कोमल बच्चा है ! भोलेपन की मूर्ति ही है ! सचमुच कलेजे का टुकडा है। दुनिया के इस ईर्ष्या-द्वेष के उपवन मे मानो एक निर्दोष फूल एकाएक खिल गया हो या विधाता ने आँगन मे मानो एक गुलाब का फूल फेंक दिया हो ! अहा ! जन्म के समय यह बच्चा कैसा निर्दोष और पवित्र दीख पड़ता है पर बड़ा होकर, दुनियादारी के झकोरों मे क्या इसकी यही निर्दोषता कायम रहेगी ? रहेगी या नहीं, सो तो भगवान जाने पर यदि माता-पिता आरंभ से चाहे और कोशिश करें तो इसकी दिव्य विभूति बड़ा होने पर भी कायम रह सकती है।

बच्चे के लिए यह दुनिया बिल्कुल नई चीज है इसलिए पेट से बाहर आते ही वह घबड़ा-सा जाता है और रोने लगता है। पैदा होने के बाद बच्चे का रोना जरूरी है; रोना उसके नीरोग और सजीव होने का चिन्ह है; यदि न रोये तो समझना चाहिए कि उसमे कोई खराबी है जिसके कारण रोने मे बाधा उपस्थित हो रही है। प्रायः उसका साँस लेना रुक जाता है। इसलिए ऐसे उपाय करना चाहिए जिससे वह ठीक-ठीक साँस लेने लगे। यदि बालक बाहर आते ही न रोये तो उसके मुँह मे फूँक मारना चाहिए। फूँक मारने के पहले मुँह को खूब साफ कर लेना चाहिए। यदि यह उपचार सफल न हो तो पैर फैलाकर बच्चे को उस पर चित लिटा देना चाहिए और बच्चे की बाहो को थोड़ा ऊपर उठाकर मुँह मे फूँक मारना चाहिए। फूँक मारने के बाद दोनो

रोना जरूरी है!

हाथो को उसकी छाती पर मोड़कर धीरे से दबाना चाहिए। एक-दो मिनट तक ऐसा करने से बच्चा साँस लेने लगेगा।

इस क्रिया को करने के साथ ही बच्चे के मुँह, आँख, कान, नाक और नथनो को साफ़ एवं मुलायम कपड़े से अच्छी तरह साफ कर देना चाहिए और मुँह मे अँगुली डालकर अन्दर का झाग राल इत्यादि निकाल देना चाहिए।

नाल पर जरा-सी आँच दिखाने से भी बच्चा रोने लगता है। ठडे पानी के छींटे भी देते हैं और बहुत जगह थाली भी बजाई जाती है। इससे घबड़ाकर बालक रोने लगता है। पेट से बाहर आते ही बच्चा रोने लगता है पर यदि मुँह, नाक इत्यादि साफ़ करने के बाद भी बच्चा न रोये तो, स्वस्थ अवस्था में, तबतक उसका नाल न काटना चाहिए जब तक वह रोने न लगे।

रोने के बाद सब अग साफ़ करके बच्चे को नहलाना चाहिए। हमारे देश मे नहलाने का नाम भर होता है; ज़रा-सा पानी डालकर पोछ-पाँछकर स्त्रियाँ छुट्टी पा जाती है पर इस तरह नहलाने से कोई लाभ नही। नवजात

शरीर की सफाई

शिशु के सारे शरीर पर मैल चढ़ी रहती है और यह मैल ऐसी चिपकी होती है कि मुश्किल से निकलती है। यदि बच्चे के शरीर की यह मैल ठीक तरह से निकाली न जाय तो उसे आगे फुन्सियाँ हो जाने का डर रहता है इसलिए बच्चे को इस तरह नहलाना चाहिए कि उसके शरीर से सब मैल निकल जाय। इसके लिए कई तरह के रिवाज हैं। कहीं-कहीं बेसन या कपडछन की हुई राख पोतकर स्नान कराते हैं और कहीं बच्चे के सारे शरीर मे शहद पोत कर थोड़ी देर तक यो ही पड़ा रहने देते है। पाँच-सात मिनट मे शहद के कारण मैल फूल जाती है; तब उसे नहलाते हैं, इससे मैल निकल जाती है।

बच्चे को नहलाने के लिए साधारण पानी काम मे लाना ठीक नहीं

है। तपाई हुई चॉदी या सोने को पानी मे बुझाकर बच्चे को नहलाना चाहिए। पीपल या बट बृक्ष की छाल को पानी मे उबालकर तब उस पानी से भी नहलाते है। नहलाने के बाद साफ़ कपड़े से बच्चे का शरीर अच्छी तरह पोछ देना चाहिए जिससे पानी बिल्कुल सूख जाय। फ़िर उसे मुलायम और सांफ बिछावन पर सुला कर कपड़ा ओढ़ा देना और सिर पर अच्छे शुद्ध तेल में भीगा हुआ एक फाहा भी रख देना चाहिए। नहलाते समय बच्चे की ऑखों को त्रिफला या बोरिक पाउडर के पानी से धो देना चाहिए। बच्चे की ऑखो के सामने लालटेन इत्यादि न ले जाना चाहिए, पीछे से ही उस पर धीमी रोशनी पड़े अन्यथा आरम्भ में उसकी ऑखें ख़राब हो जाने का डर बना रहता है। क्योंकि उसकी ऑखो को रोशनी सहन करने का अभ्यास नहीं होता।

गर्भ मे बच्चे के पेट के अन्दर बहुत दिनों से मल संचित होता रहता है। इसलिए पैदा होने के बाद किसी तरह पेट से यह मल निकल

पेट की सफ़ाई

जाना हितकर है। इसके लिए शहद मे तीन-चार बूँद अण्डी का साफ तेल या स्वच्छ किया केस्टर आयल मिलाकर चटा देना चाहिए। इससे एक-दो दस्त आयेंगे और बच्चे का पेट साफ हो जायगा।

नवजात शिशु को, जन्मघुटी के नाम पर, बहुत-सी चीजे चटाई या पिलाई जाती है पर इस विषय मे बड़ी सावधानी की जरूरत है। क्योंकि बिना जाने-पूछे कोई चीज खिला देने से बच्चे पर उसका बड़ा बुरा असर पड सकता है।

इस विषय मे एक अनुभवी लेखिका[1] का मत है कि निम्नलिखित नुस्ख़ों में से कोई एक चटाना चाहिए—

१. देखिए 'सफल माता, (श्रीमती सुशीलादेवी); पृष्ठ ९९-१००

१. घी मे थोड़ा-सा सेंधा नमक डाल कर दो।

२. बच, ब्राह्मी और इलायची का चूर्ण कपड़छन कर एक या दो चावल-भर घी और शहद मे चटाओ। इससे बहुत लाभ होता है।

३. शहद में सोना घिसकर दो।

४. चावल-भर कपडछन किये हुए आँवले के चूर्ण मे आधा चावल स्वर्ण-भस्म, घी और शहद मिलाकर चटाओ।

इनमें से किसी एक को, विशेषतः दूसरे को, माता के स्तनो में दूध न आने तक (दूध आने मे प्रायः तीन दिन लगते हैं) दिन मे दो बार चटाने से बालक स्वस्थ, बलवान और बुद्धिमान होगा।

: ५ :

पालन-पोषण

बच्चों के पालन-पोषण में आजकल बड़ी असावधानी की जाती है। कहीं तो उसे इतना दूध पिला दिया जाता है कि बदहजमी हो जाती है, हरे-पीले दस्त आने लगते है, बच्चा मुँह से दूध उगलने लगता है और कही इतना कम दूध पिलाया जाता है कि उसकी बाढ़ रुक जाती है। इसी प्रकार नहलाने-धुलाने, सुलाने और कपड़ा पहनाने में भी बहुतेरी गलतियाँ की जाती हैं, फलस्वरूप दिन पर दिन उसका स्वास्थ्य गिरता जाता है और वह रोगी और दुर्बल हो जाता है। यदि माताये चाहे तो जरा-सी सावधानी से उनके बच्चे सबल, नीरोग और बुद्धिमान हो सकते हैं।

नवजात शिशु के लिए माँ के दूध से उत्तम और लाभकारी कोई आहार नहीं है। कोई अन्य वस्तु माँ के दूध का स्थान नहीं ले सकती। गाय का दूध भी माँ के दूध के सामने निकम्मा है। इसलिए जो माताये रोगी न हो, उन्हे भरसक अपना ही दूध पिलाना चाहिए। रोगी होने की अवस्था में गाय या बकरी का दूध पानी मिलाकर पिलाना अच्छा होगा। किसी दूसरी स्त्री का दूध, बिना भलिभाँति उसे जाने बूझे, पिलाना ठीक नहीं। क्योंकि दूध पिलानेवाली स्त्री यदि साफ-सुथरी और नीरोग न हुई तथा उसके हृदय में बच्चे के प्रति प्रेम न हुआ तो वह दूध बच्चे को लाभ के वदले हानि ही अधिक पहुँचायेगा।

बच्चा माँ का दूध स्वाभाविक रीति से पीता है। उसे गरम करने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। यही हाल सब दुधारू पशुओ के बच्चों का है। वस्तुतः दूध को गरम करने से उसके पोषक तत्वो में एक ओर

तो कमी आ जाती है, दूसरी ओर वह भारी—गरिष्ठ—, देर से हजम होने वाला, हो जाता है। तुरन्त का दुहा दूध सबसे उत्तम है। पर इसमे कठिनाई यह है कि समय पर ताज़ा दूध नहीं मिल सकता, और देर तक रखे हुए दूध में कीटाणु उत्पन्न होने का भय रहता है। इसलिए दूध को औटाना तो कभी न चाहिए। मामूली गरम होते ही दूध को गरम पानी से अच्छी तरह साफ किये हुए थर्मास या वैकूम बाटल मे रख देना चाहिए। इस तरह के बोतल कई साइज़ और वज़न के शहरो मे मिलते हैं।

वस्तुतः दूध मे हवा का लगना खतरनाक है। इसीसे उसमें विकार उत्पन्न होता है। जो दूध जितनी ही देर तक खुला रहेगा और जिसमे जितनी ही हवा लगेगी वह उतना ही भारी, दुष्पच और विकार पैदा करने वाला होगा। माँ का दूध बच्चे के लिए इसी कारण ज़्यादा लाभदायक होता है कि स्तन से निकलने वाले दूध मे हवा नहीं लगती। बच्चा स्तन से मुँह लगाकर दूध चूसता रहता है। दूसरी बात यह कि इस तरह थोड़ा थोड़ा दूध, मुँह के लार के साथ, पेट मे जाता है जिससे पाचन-क्रिया ठीक रहती है।

मतलब यह है कि यदि बच्चे को बाहर का दूध देना अनिवार्य ही हो तो

१. मिल सके तो उसे हर बार ताज़ा दुहा हुआ दूध देना चाहिए।

२. न मिल सके तो मामूली गरम करके थर्मास मे रखा हुआ दूध देना चाहिए।

३. यदि गाय का दूध बच्चे को न पचता हो तो गरम दूध मे थोड़ा खौलता हुआ साफ पानी मिलाना चाहिए। और बच्चे को पिलाते समय खाने का सोडा चुटकी भर चम्मच मे मिलाकर दे देना चाहिए।

जब बच्चा पैदा होता है तो उसके पेट में बहुत थोड़ी जगह रहती

है; उस समय प्रायः तीन तोले से अधिक दूध उसके पेट में अँट ही नही सकता अतः बच्चे को दूध पिलाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि ज्यादा दूध पेट में न चला जाय नही तो नुकसान करेगा। इसके लिए नीचे के नकशों पर ध्यान देना चाहिए—

पेट का वज़न

समय	कितना पेट में अँट सकता है
पैदा होने का समय	ढाई से चार तोला
पहले महीने के अंत में	एक छटाँक
चौथा महीना	ढाई छटाँक
छठा महीना	तीन-सवातीन छटाँक
आठवाँ महीना	लगभग एक पाव
साल के अन्त में	सवा पाव

कितनी बार दूध पिलाया जाय

समय	बार
पहला महीना	१० बार
दूसरा महीना	८ बार
तीसरा-चौथा-पाँचवाँ	७ बार
छः से बारह तक	६ बार

जिन्हें प्रथम सन्तान होती है उन माताओ को बच्चा होने के प्रायः तीन दिन बाद दूध आता है। इन तीन दिनो तक पिछले अध्याय मे बताये नुस्खो के सिवा कुछ देने की जरूरत नहीं। हाँ, माँ का स्तन बच्चे के मुँह में दिन में चार-पाँच बार देना चाहिए। दूध आने पर बच्चे को गोद मे लेकर, एक हाथ से उसका सिर और दूसरे से स्तन पकड़कर दूध

पिलाना चाहिए और एक बार आठ-दस मिनट से अधिक दूध नहीं पिलाना चाहिए। एक ही स्तन से दूध पिलाना ठीक नहीं; चार-चार मिनट मे बदल देना चाहिए। यह याद रहे कि लेटे-लेटे कभी दूध न पिलाना चाहिए और, सदा दूध पिलाने के पहले स्तनो को साफ़ पानी से धो लेना चाहिए। कभी-कभी फिटकरी के पानी से धोना लाभकारी है।

बच्चे को रात मे, दस से पॉच बजे तक यथासंभव दूध न पिलाना चाहिए। यदि रोये तो और तरह से बहला देना चाहिए; जब किसी तरह न माने तभी एकाध बार दूध पिलाना चाहिए। निम्न-लिखित अवस्थाओं मे माता को दूध नहीं पिलाना चाहिए—

१. आग के पास से उठने के बाद।

(आध घण्टे बाद पिला सकती है)

२. बच्चे को उबटन लगाने या सेकने के बाद।

(आध घण्टे बाद पिला सकती है)

३. नहलाने के पहले या बाद।

(आध घण्टे पहले या बाद पिला सकती है)

४. जब मॉ को ज्यादा जुकाम हो अथवा पेट मे पीड़ा, बदहजमी या बुखार हो।

५. पेट मे कोई फोड़ा हो जाय।

यदि मॉ ज्यादा बीमार हो जाय और अधिक दिनों तक उसके दूध पिलाने की सम्भावना न हो तो उचित परिमाण मे पानी और शक्कर मिलाकर गाय या बकरी का दूध पिलाना चाहिए। कितना पानी और कितनी शकर मिलाने से गाय-बकरी का दूध मॉ के दूध के समान गुणकारी हो जायगा, यह लिखने के पहले नीचे के नक्शे मे यह बता देना अच्छा होगा कि मॉ और पशुओ के दूध मे क्या अन्तर है—

दूध के विभिन्न अंशों की सूची

दूध	मक्खन या घी का अंश	प्रोटीड या मॉस का अंश	शक्कर का अंश	नमक का अंश	पानी का अंश
स्त्री	३.३३	३.४२	४.५५	.१२	८८.९
गाय	३.८२	४.२१	३.६७	.७१	८७.५
बकरी	४.३४	३.७९	३.७८	.६५	८६.८५
भैंस	७.१	४.०	४.०	.८	८४.१

१. मक्खन या घी के अंश से चरबी बनती, शरीर में गरमी उत्पन्न होती है; वजन बढता है; हड्डियॉ मजबूत होतीं और दिमाग की ताकत बढ़ती है। शरीर मुलायम और चिकना होता है।

२. प्रोटीड या मास के अंश से मास बढ़ता है।

३. शक्कर के अंश से गरमी उत्पन्न होती और चरबी के काम मे सहायता पहुँचती है। बल बढ़ता है।

४. नमक के अंश से खून बनता और साफ होता है; हड्डियॉ बढती हैं।

५. पानी के अंश से सब चीजो के रस बनकर पाचन-क्रिया को जारी रखने एव खून बनाने मे सहायता पहुँचती है।

ऊपर के नक्शे से यह बात मालूम हो सकती है कि भैंस के दूध में मॉ के दूध से बहुत ज्यादा फर्क है इसलिए भैंस का दूध बच्चे को नहीं दिया जा सकता। वे उसे हजम नहीं कर सकते। पहले चार-पॉच महीनो तक यदि बच्चे को गाय या बकरी का दूध पिलाना पड़े तो जितना दूध हो

उतना ही पानी मिलाना चाहिए और एक पाव दूध मे एक चम्मच शक्कर भी मिला लेनी चाहिए। फिर उसे छानकर बोतल में रख लेना अच्छा होगा। ज्यों-ज्यो बच्चे की उम्र बढ़ती जाय पानी की मात्रा मे धीरे-धीरे कमी करनी चाहिए।[1]

दूध सदा गरम करके पिलाना चाहिए। क्योंकि असावधानी से रखे हुए सिर्फ एक चम्मच दूध मे पैंतीस करोड़ कीटाणु रहते हैं।

गाय के दूध मे थोड़ा चूने का पानी मिलाने से वह शीघ्र पच जाता है। इसके बनाने की तरकीब यह है कि एक सेर पानी में एक तोला पत्थर का अनबुझा चूना घोलकर रख दिया जाय और जब वह सब चूना नीचे बैठ जाय तो ऊपर का पानी निकालकर बोतल में भर लिया जाय और उसमे से छः माशे से एक तोला तक पानी कभी-कभी दूध मे मिला लिया जाय। यदि पानी तैयार करने मे कठिनाई हो तो एक-दो रत्ती खाने का सोडा मिला सकते हैं।

जन्म के बाद, पहले महीने मे, बच्चा बीस-बाईस घण्टे और फिर छः

१ "इस तरह तैयार किये हुए दूध को एक साफ़ चौड़े मुँह की बोतल में भरकर···कार्क से उस बोतल का मुँह बन्द कर देना चाहिए। इस बोतल को किसी धातु के बर्तन मे रखकर उसमें पानी भर देना चाहिए। अब इस बर्तन को आँच पर रखकर धीमी आँच से गरम करना चाहिए। कम-से-कम पन्द्रह मिनट तक बोतल को इस प्रकार आँच में रखना चाहिए। इसके बाद जब पानी चार-पाँच मिनट तक उबल चुके तब दूध वाले बोतल को गरम पानी से निकालकर ठण्डा होने देना चाहिए। ×× अब इस पानी में किसी भी प्रकार की गरमी न पहुँचने पावे। बेहतर यह होगा कि किसी गहरे बर्तन मे ठण्डा पानी डालकर उसीमें इस दूध वाली बोतल को पड़ा रहने देना चाहिए।"

'सफल माता', १२४-१२५

महीने तक सतरह-अठारह घण्टे और सात वर्ष के अन्त तक पन्द्रह-सोलह घटे सोता है। फिर ज्यो-ज्यो उम्र बढ़ती जाती है, सोने के इस समय मे कमी आती जाती है। स्वस्थ बच्चा खूब शान्ति से सोता है और रोगी बच्चे सोते कम और रोते बहुत हैं। बच्चे के स्वास्थ्य और समुचित विकास के लिए उसका इतने समय तक सोना जरूरी है। इसलिए दिन हो या रात दूध पिलाते ही बच्चे को सुला देना चाहिए। रात को बच्चे को अलग एक छोटे पलंग पर सुलाना चाहिए। क्योकि एक ही पलंग पर सोने से माँ को बच्चे के दब जाने का खटका लगा रहता है और उसे ठीक-ठीक नींद नहीं आती। दिन मे पलग की अपेक्षा पालने मे सुलाना ज्यादा अच्छा है। आरम्भिक दो महीनो तक बारह-तेरह घण्टे और उसके बाद चार-पॉच महीनो तक नौ-दस घण्टे माँ को जरूर सोना चाहिए। ऐसा न करने से उसका स्वास्थ्य खराब होगा, पाचन-शक्ति नष्ट होगी; दूध गाढ़ा और दूषित हो जायगा; बच्चे का स्वास्थ्य भी खराब हो जायगा।

साधारणतः जब बच्चे को भूख लगती है तो वह रोता है। यह प्राकृतिक साधन है जिससे वह अपनी भूख प्रकट करता है पर इसका यह मतलब नही कि भूख के सिवा और किसी कारण से बच्चा रोता ही नहीं इसलिए बच्चा के रोने पर देखना चाहिए कि क्यो रो रहा है। यदि स्तन मुँह में देने से चुप हो जाय तो समझना चाहिये कि भूख के कारण रोता था, न चुप हो तो समझना चाहिए कि किसी पीड़ा से रोता है।

डेढ़ वर्ष के बाद माँ को दूध पिलाना बन्द कर देना चाहिए। किन्तु इसके बाद भी दो-ढाई वर्ष की अवस्था तक उसे दूध ही अधिक देना चाहिए; अन्नप्राशन सस्कार के बाद उसे दाल का पानी इत्यादि कभी-कभी चटा सकते हैं।

एक वर्ष के बाद बच्चे को पाचनशक्ति के अनुसार चावल का माँड

या गेहूँ अथवा जौ के दलिये का पतला मॉड दिया जा सकता है। थोडे से दलिये को काफी पानी मे एक घण्टे तक पकाना चाहिए। बाद में ऊपर का मांड छान कर या अन्य रीति से निकाल लेना चाहिए और बच्चे को देना चाहिए। दूध मे मिलाकर भी इसे दे सकते हैं। यह पौष्टिक और गुणकारी होता है।

बच्चा यदि बहुत कमजोर न हो तो प्रथम सप्ताह के बाद उसे दो पहर को कुनकुने पानी से धूप मे (जहाँ हवा न चलती हो) नहलाना चाहिए।

हफ्ते मे दो-तीन दिन तो जरूर नहलाना चाहिए। बच्चे को पॉवो पर सुलाकर धीरे-धीरे नहलाना और चुमकारते जाना चाहिए; एकाएक ज्यादा पानी डालने से वह घबडा जाता है। दूध पिलाने के घण्टे-डेढ घण्टे बाद नहलाना चाहिए। नहलाने का मतलब सिर्फ पानी डाल देना नही है। अच्छी तरह बच्चे के शरीर को पोछकर सारी मैल निकाल देनी चाहिए। स्नान कराने के पहले तेल की मालिश करना बहुत लाभदायक है। जो माताये रोज बच्चो को तेल-उबटन लगाती हैं, उनके बच्चे नीरोग रहते हैं। इससे चमड़ी मुलायम होती तथा फोडे-फुसियों से रक्षा होती और बदन सुडौल होता है। सिर मे तेल की मालिश करने से दिमाग मजबूत होता है।

जब बच्चा पैदा होता है तो उसके शरीर पर बहुत-से छोटे-छोटे रोयें रहते है। इनको निकालने के लिए बहुत जगह स्त्रियॉ लोई फेरती है। लोई फेरने का मतलब यह है कि बालक के शरीर पर खूब तेल चुपड़ कर गुँधे हुए मुलायम आटे की एक लोई सब जगह फेरते हैं। इससे शरीर की मैल तो दूर हो ही जाती है, ये रोयें भी दूर हो जाते हैं और चमडी साफ हो जाती है। मुँह पर खास तौर से इसे फेरते हैं जिससे चेहरा खिल उठता है।

चार-पॉच महीने तक बच्चे को कोई कपड़ा पहनाने की जरूरत नही। गहने तो कतई तौर पर न पहनाने चाहिएँ। हॉ, ठण्ड, मक्खियो-मच्छरों से बचाने के लिए कपड़ा जरूर ओढ़ा देना चाहिए।

बच्चे सोते में टट्टी-पेशाब कर देते हैं, इसलिए नीचे मोमजामा या किरमिच का टुकड़ा बिछा देना अच्छा है। बहुत-सी मातायें इधर ध्यान नहीं देतीं; उनके बच्चे घण्टों पेशाब-पाखाने के अन्दर सने पड़े रहते हैं। इससे न केवल स्वास्थ्य वरं उनकी आदत भी बिगड़ती है; वे बचपन से ही गन्दा रहना सीख जाते हैं। बच्चो को आदत ऐसी डालनी चाहिए कि बचपन से उन्हे गन्दगी असह्य हो जाय और यह तभी हो सकता है जब मॉ खुद ही इसका ध्यान रक्खे और बच्चे तथा उसके बिछौने को साफ़ रखने के साथ ही खुद भी साफ़ रहे। एक कपड़ा गन्दा होते ही तुरन्त उसे बदल देना चाहिए।

बच्चो को गोद मे ज़्यादा हर्गिज न रखना चाहिए और न उनके रोने पर उनकी बातें मान लेनी चाहिए। इन दोनों बातों से बालक सुस्त, रोने और हठी हो जाते है।

बच्चे की बाढ़

स्वस्थ और नीरोग मॉ का बच्चा, जो दसवें महीने होता है, पैदा-यश के समय कम से कम तीन सेर का होता है। साधारणतः स्वस्थ बच्चे का वजन सात पौण्ड या साढ़े तीन सेर होना चाहिए। असाधारण स्वस्थ बच्चे पॉच सेर तक के देखे गये है। पैदा होने के बाद पॉच-छः दिन तक वज़न घट जाता पर फिर एक सप्ताह के अन्दर पूरा हो जाता और बाद में बराबर बढ़ता जाता है। यदि मॉ के दूध मे कोई ख़राबी न हो और बच्चे को बराबर यथेष्ट दूध पीने को मिले और वह बीमार न पड़े तो छः महीने तक वह दो-ढाई तोला रोज़ बढ़ता है। और फिर सातवें

महीने से वर्ष के अन्त तक डेढ-दो तोला रोज़ बढता है। इस तरह साल के अन्त मे बच्चा जन्म के समय से प्रायः तिगुना हो जाता है। लड़के लड़कियो की बाढ़ मे कुछ अन्तर है। नीचे के[1] नक्शो मे दोनो के क्रम-विकास का ब्यौरा देखिए—

१. अधिक स्वस्थ बच्चे की बाढ़—तौल

आयु	लड़के की तौल	लड़की की तौल
जन्म	४ सेर	३ सेर ४७ तोला
छः महीना	८ सेर	७ सेर ६० तोला
एक वर्ष	१० सेर २० तोला	९ सेर ७२ तोला
डेढ़ वर्ष	११ सेर ३० तोला	११ सेर
दो वर्ष	१३ सेर २० तोला	१२ सेर ६० तोला
तीन वर्ष	१५ सेर ४८ तोला	१५ सेर
चार वर्ष	१७ सेर ४० तोला	१७ सेर
पाँच वर्ष	२० सेर ४८ तोला	१९ सेर ७२ तोला
छः वर्ष	२२ सेर ४४ तोला	२१ सेर ७२ तोला
सात वर्ष	२४ सेर ६० तोला	२४ सेर
आठ वर्ष	२७ सेर २० तोला	२६ सेर ३७ तोला
नौ वर्ष	३० सेर	२८ सेर ६० तोला
दस वर्ष	३३ सेर २४ तोला	३२ सेर
ग्यारह वर्ष	३६ सेर १६ तोला	३५ सेर १२ तोला
बारह वर्ष	३९ सेर ७२ तोला	४० सेर ५४ तोला
तेरह वर्ष	४४ सेर १२ तोला	४५ सेर ४८ तोला
चौदह वर्ष	४९ सेर ५२ तोला	५० सेर १२ तोला
पन्द्रह वर्ष	५५ सेर ३२ तोला	५४ सेर १६ तोला

१. 'जननी और शिशु', सफलमाता और सन्तति शास्त्र के आधार पर।

२. साधारण बच्चे की बाढ़—तौल

आयु	लड़के की तौल	लड़की की तौल
जन्म	३॥ सेर	३। सेर
एक महीना	४॥ सेर	४। सेर
दो महीना	५॥ सेर	५। सेर
तीन महीना	६। सेर	६ सेर
छः महीना	८ सेर	७॥ सेर
एक वर्ष	१० सेर	९ सेर ६० तोला
दो वर्ष	१२ सेर ७० तोला	१२ सेर २० तोला
तीन वर्ष	१४ सेर २० तोला	१४ सेर
चार वर्ष	१६ सेर २० तोला	१६ सेर
पाँच वर्ष	१८ सेर ४० तोला	१८ सेर
छः वर्ष	२० सेर ६० तोला	२० सेर
सात वर्ष	२२ सेर ६० तोला	२२ सेर १० तोला
आठ वर्ष	२५ सेर ४० तोला	२४ सेर २० तोला
नौ वर्ष	२७ सेर ६० तोला	२६ सेर ३० तोला
दस वर्ष	३० सेर	२९ सेर
ग्यारह वर्ष	३३ सेर २० तोला	३२ सेर १० तोला
बारह वर्ष	३६ सेर ३० तोला	३६ सेर ३० तोला
तेरह वर्ष	३९ सेर २० तोला	४० सेर
चौदह वर्ष	४३ सेर १० तोला	४४ सेर
पन्द्रह वर्ष	४७ सेर	४७ सेर के लगभग

इसी प्रकार लम्बाई भी बढ़ती है। पहले छः महीनों मे पॉच इंच और दूसरे छः महीनों में चार इंच बढनी चाहिए। जन्म के समय स्वस्थ

बच्चे की लम्बाई साधारणतः २० इंच होती है। लम्बाई के विकास का ब्यौरा नीचे के नक्शे में देखिए—

३. स्वस्थ बच्चे की बाढ़—लम्बाई

आयु	लड़के की लम्बाई	लड़की की लम्बाई
जन्म	२० इंच	२० इंच
एक वर्ष	२९ इंच	२८ ३/४ इंच
दो वर्ष	३२ इंच	३२ १/२ इंच
तीन वर्ष	३४ १/२ इंच	३४ १/२ इंच
पाँच वर्ष	४० १/४ इंच	४० इंच
सात वर्ष	४५ ३/४ इंच	४५ १/२ इंच
दस वर्ष	५१ १/२ इंच	५१ इंच
बारहवर्ष	५५ इंच	५६ १/२ इंच
चौदह वर्ष	५९ १/२ इंच	६० इंच
पन्द्रह वर्ष	६१ १/२ इंच	६१ १/४ इंच

माँ को सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बच्चा नाक से साँस ले; यदि वह मुँह से साँस ले तो सोते समय उसका मुँह थोड़ी देर बन्द करने से वह स्वतः नाक से साँस लेने लगेगा। आरम्भ से बच्चा प्रति मिनट चवालीस बार साँस लेता है जब कि मनुष्य केवल अठाईस बार। धीरे-धीरे यह संख्या घटती जाती है और चौथा वर्ष लगते-लगते अठाईस तक आ जाती है। इसी प्रकार शुरू मे बच्चे की नाड़ी प्रति मिनट एकसौ तीस बार चलती है पर धीरे-धीरे घट कर चौथे वर्ष मे अस्सी तक आ जाती है।

स्वस्थ बच्चो के प्रायः छः-सात महीने बाद दाँत निकलने लगते हैं। किसी-किसी के देर से निकलते है। सब से पहले नीचे के दो दाँत निक-

दाँत निकलना

लते हैं; फिर ऊपर के चार और फिर क्रमशः नीचे के जबड़े के दो दॉत, एव नीचे और ऊपर की दो-दो दाढ़ें निकलती हैं। ढाई-तीन वर्ष की अवस्था तक बीस दॉत निकल जाते हैं। इन्हे दूध के दॉत कहते हैं।

दॉत निकलने के समय बच्चों को बड़ा कष्ट होता है। वे चिड़चिड़े हो जाते हैं; काटते हैं। मुँह से लार टपकने लगती है; हरा खुरदुरा, फटा हुआ दस्त आने लगता है; मुँह लाल हो जाता है; वे रोते हैं; नींद नही आती, कभी-कभी कै भी होने लगती है; बच्चा बार-बार मुँह में अँगुली डालता है, ऑखे आ जाती हैं; दर्द के कारण बुखार भी हो आता है। ऐसे समय बच्चे को बडी सावधानी से रखना चाहिए। उसका हाजमा प्रायः खराब हो जाता है; इसलिए चूने का पानी या खाने का सोडा ज़रा-सा मिलाकर दूध पिलाना चाहिए। यदि दस्त रुक जाय तो शहद मे अण्डी के तेल की चार-छः बूँदें डालकर चटानी चाहिएँ। मसूड़े निकलने के समय ज़्यादा बेचैनी होती है। उस समय छः माशा पिसा हुआ सोहागा या सेंधा नमक साफ शहद में मिलाकर दिन मे तीन-चार बार मसूड़ों पर मलना चाहिए। इससे दर्द कम होता है और बच्चे को आराम मिलता है। दॉत के दिनों मे बच्चों को 'ग्राइप वाटर' या 'डिल वाटर' दिन मे दो-तीन बार एक-एक बड़े चम्मच की मात्रा मे देना चाहिए। इससे कष्ट कम हो जाता है।

छः-सात वर्ष की उम्र में दूध के दॉत टूटने लगते हैं। प्रायः हर साल चार दॉत टूटते और उनकी जगह नये निकलते हैं। बारह वर्ष तक अट्ठाईस दाँत हो जाते हैं और फिर सोलह-सत्रह वर्ष के बाद अन्त की चार दाढ़े निकलती हैं। इस तरह कुल बत्तीस दॉत होज़ाते हैं।

सुन्दर स्वास्थ्य के लिए दातों की सफ़ाई पहली बात है। दूध पिला-

कर या कुछ खिलाकर सदा बच्चों के दाँत और मुँह धो देना चाहिए और अच्छी तरह देख लेना चाहिए कि दाँत में कोई टुकड़ा रह तो नहीं गया है। बदहज़मी, सिरदर्द, दाँतो से खून निकलना, दाँत-दर्द इत्यादि रोग दाँतों की गन्दगी से ही पैदा होते हैं।

: ६ :

बच्चे का भविष्य

बच्चे को इच्छानुकूल बनाना माता पर ही निर्भर है। माता के हाथ मे ही बच्चे का भविष्य है। इसलिए न केवल गर्भावस्था में बल्कि बच्चा होने के बाद भी माता को अपना जीवन बड़ी सावधानी से बिताना चाहिए। क्रोध की अवस्था मे या बिगडकर कभी बच्चे को दूध नही पिलाना चाहिए, हमेशा प्रसन्नचित्त से, ममता के साथ दूध पिलाने से बच्चे का विकास शीघ्र होता है।

दूसरी बात यह कि प्रायः मातायें बच्चों को रोने से चुप कराने के लिए डरावनी चीजो के नाम लिया करती हैं। कभी पिता का डर दिखाती हैं। यह बड़ी बुरी बात है। पहली अवस्था मे बच्चे डरपोक हो जाते हैं; उनकी इच्छा-शक्ति घट जाती है और निर्भयता चली जाती है, और दूसरी अवस्था में वे पिता को भय-प्रद समझकर उसके हृदय से दूर हटते जाते हैं। थोड़े-से स्वार्थ के लिए या समय की बचत के लिए डर दिखा-कर बच्चो की मानसिक शक्ति को कुण्ठित कर देना बड़ा अनुचित है।

तीसरी बात यह कि माता को अपनी दिनचर्या खूब व्यवस्थित और अनुकरण-योग्य रखनी चाहिए। वह जब बच्चे के पास जाय तो प्रसन्न-चित्त और हँसते मुँह से जाना चाहिए। प्रायः पाँच-छः महीने की अवस्था के बाद बच्चे जैसा देखते हैं, उसकी नकल करने लगते हैं। एक बड़े अंग्रेज़ विद्वान् बेकन का कहना है कि माता की देखा-देखी नकल उतारने की जो मनोवृत्ति बच्चों मे होती है वही दुनिया की सारी शिक्षाओं की जड़ है। इसलिए क्रोध मे, उत्तेजना मे या अत्यन्त लाड़-प्यार मे बच्चों

के सामने कोई ऐसी बात नहीं करनी चाहिए जिनसे आगे जाकर उनका भविष्य बिगडने की संभावना हो।

बच्चो के सामने किसी की उपेक्षा, अपमान और अवज्ञा नहीं करनी चाहिए, इससे बड़े होकर वे अविनयी और ढीठ हो जाते है।

जब बच्चा एक-दो वर्ष का हो जाय तो सदा उसके सामने अच्छी बाते करनी चाहिएँ; महात्माओ के नाम याद कराने चाहिएँ। बच्चा यदि कोई अनुचित बात कह देता है तो भी मारे लाड़ के स्त्रियाँ हँस पड़ती है। यह बुरी बात है, इससे उसकी आदत खराब होती है। ऐसे समय हँसना हर्गिज न चाहिए, न क्रोध करना चाहिए बल्कि गंभीरतापूर्वक उसे उसकी गलती बतानी चाहिए।

: ७ :

मातृत्व का गौरव !

माता ! अहा, इस शब्द मे कितनी मिठास है! इसमें कितनी पवित्र स्मृतियाँ छिपी हैं ! इसमें कितना गौरव भरा है ! इसीलिए हमारे धर्म मे स्त्री का रमणी रूप महान् नहीं माना गया; माता-रूप मे ही स्त्री पूजनीया मानी गई है । मातृत्व में ही स्त्री का गौरव है और इसीमें उसका आदर्श पूरा होता है ।

पर माता का सच्चा अर्थ बच्चों की माँ बन जाना नहीं है वरं अपने अन्दर उस अनादि शक्ति का अनुभव करना है—अपनी उस महानता को जानना है, जिसने आरम्भ की जंगली दुनिया को सभ्य बनाया है; जिसने मनुष्य को पशु से मनुष्य बनाकर आज उसे इतना ऊँचा उठा दिया है । माता का सच्चा अर्थ वैसी मातायें बनना है जिनके लिए नेपोलियन-सा दुनिया को विजय करने का साहस रखने वाला महावीर तरस कर कह गया—"मुझे सुमातायें दे सको तो मैं तुमको एक महान् जाति बना दूँ।" माता का अर्थ अपने अन्दर उस पवित्र तेज को उत्पन्न करना है जिसे देखकर पुरुष सच्चे पुरुष और स्त्रियाँ सच्ची स्त्रियाँ बनें । आज की मातायें, जो लाड़-प्यार मे बच्चो को बिगाड़ देती हैं; जो उन्हें चोरी करना, झूठ बोलना सिखाती हैं; जो जीवन की सबसे कोमल और प्रभाव-योग्य अवस्था में उनका स्वास्थ्य नष्ट कर देती हैं सच्ची मातायें नही हैं । माता वह है जो कभी अपने हित और सुख का ध्यान न करके बच्चों के हित की कामना मे दृढ़ रहे । आज-कल के माता-पिता १७-१८ वर्ष के लडकों को अपने पास से जुदा करना नहीं चाहते, चाहे उनका भविष्य

चौपट हो जाय। देखते हैं कि लड़का चौपट हो रहा है पर झूठा मोह और दुलार उन्हे दूर करने नहीं देता। यह मातृत्व नहीं है; यह पिता की मर्यादा नहीं है। वे यह भूलते हैं कि वे सदा न रहेंगे और यदि वे अपनी सन्तान को योग्य न बना गये तो अपना, अपने कुल, अपनी जाति और मनुष्यता की भी हानि करेंगे और उस लाड़-प्यार में पलकर नष्ट होते हुए बच्चे के लिए भी दुनिया में केवल कष्ट, अपमान, दुःख और कठिनाइयाँ छोड़ जायेंगे।

नहीं, माताओ! तुम्हे यह झूठा मोह, यह विनाशक दुलार छोड़ना पड़ेगा। तुम उन राजपूतनियो की ओर देखो जो अपने तुच्छ प्राण बचाने के लिए युद्ध-भूमि से भागने वाले पुत्रों के कलेजे मे कटार भोक देती थीं। तुम उन माताओ की ओर देखो जो धर्म के लिए अपने पुत्रो की बलि देने में अपने दूध का गौरव समझती थीं। तुम उन जननियों की ओर देखो जिन्होने दुनिया को सच्चे मनुष्यों का, सच्ची देवियों का दान दिया है। तुम उन मंगलमूर्तियों को देखो जिन्होने जगत् को सच्चा आत्मज्ञान सिखाया है; तुम अनुसूया, मैत्रेयी, अरुन्धती, गार्गी को देखो। तुम उस सीता की ओर देखो जिसके हृदय मे सच्ची जननी का आत्माभिमान चमक रहा था। तुम आज सच्चे मातृत्व की मंगलमयी उषा की तरह दुनिया को जीवन का सन्देश दो और सूर्य की भाँति तुम्हारा आशीर्वाद दुनिया को जीवन एवं प्रकाश दे।

माता आत्म-विसर्जन की प्रतिमा है! माता दया की मूर्ति है! माता कल्याण की उषा है! माता जीवन की पवित्र स्मृतियों का जीवित स्मारक है! माता करुणा का भण्डार है। माता अपने शरीर एवं मन का सारा सत्व विकसित करके, मनुष्यता को सदा दान देनेवाली अन्नपूर्णा है! माता

त्याग की आभा है ! माता जीवन-दीप का स्नेह है जो छिपकर, गुप्त रहकर, जलकर, मिटकर सबको प्रकाश देता है।

माताओ ! तुम ऐसी मातायें बनो। तुम महान् हो; कोई तुमसे बड़ा नहीं है, यह अनुभव कर लेने से तुममें मातृत्व के सच्चे गौरव का वह प्रकाश जग जायगा, जो हम मनुष्य नाम-धारी पशुओं को मनुष्यता के, देवत्व के, अमरता के सच्चे मार्ग पर चलायेगा !

माताओ !

मृत्योर्माऽमृतं गमय !

खण्ड ४ : कुछ सच्चे पत्र

"प्रेम को लेकर आत्म-समर्पण करने में जो सुख है, वह कोरी बराबरी के बाहरी अधिकार में नहीं है। मेरा विश्वास है कि प्रेम से सब-कुछ सम्भव है।"

—पत्र संख्या ५

कुछ सच्चे पत्र

[कुछ समय पूर्व एक बहन से ,स्त्री-पुरुष-समस्या के विषय मे मेरा जो पत्र-व्यवहार हुआ था, उसके आवश्यक अंश यहाँ दिये गये हैं। यह बहन बिहार प्रान्त के एक प्रतिष्ठित परिवार की कन्या हैं और बिहार के परदा-बहिष्कार आन्दोलन में पूज्य महात्माजी की अनुमति से काम भी करती रही हैं। आजकल अधिकार एवं बराबरी के झगड़े को लेकर पढ़ी-लिखी स्त्रियो मे जिस कच्ची भावना का प्रचार हो रहा है, इनके आरम्भिक पत्र इस बात के उदाहरण हैं। आरम्भिक पत्रो मे अधीरता की मात्रा अत्यधिक है पर बाद में उनके विचार बहुत बदल गये हैं। अब इनका विवाह भी बिहार के एक प्रतिष्ठित कुटुम्ब में हो गया है। ससुराल जाने तथा गृहस्थी की जिम्मेदारी आ पड़ने पर स्त्री जिस नये संसार में आ जाती है वह भी उनमे आ गई है, और उनका जो पत्र विवाह के बाद आया उसमें उन्होंने मेरे ९-११-२९ के पत्र की ताईद करते हुए लिखा है कि अब मैं सचमुच परिस्थिति की गुरुता का अनुभव कर रही हूँ और आपकी सूचना एवं शिक्षा का भरसक पालन करने की चेष्टा करूँगी।

ये पत्र यहाँ इसलिए दिये जा रहे हैं कि इनमें इस समस्या पर रोशनी पड़ती है। ये व्यक्तिगत हैं और जब ये लिखे गये, इन्हें प्रकाशित करने की कल्पना भी मन में न आई थी इसलिए इनमे दोनो ओर के सच्चे मनोभाव प्रकट हुए हैं। आशा है इन पत्रों में प्रकट किये हुए सद्विचारो से बहनें लाभ उठायेंगी।

—सुमन]

[१]

अजमेर

६–२–२६

प्रिय श्री—,

"स्त्रियाँ और पुरुषों की ज्यादतियाँ" नामक एक लेख कुछ दिन पूर्व मिला था। × × × । आप में प्रतिभा है, मानव-जाति की सेवा की भावना है, उत्साह है, इसलिए उपर्युक्त लेख में प्रकट की हुई भावनाओं के सम्बन्ध में आपको कुछ लिखने को बाध्य हुआ हूँ। आपसे मेरा परिचय नहीं है, इसलिए आपको यह विश्वास दिला देना कठिन है कि मेरे हृदय में आपसे अधिक क्षोभ और आग है। कितनी ही बार मैंने अँधेरी रात में बैठ कर अपनी अनेक बहनों की दुर्दशा और रोमाञ्चकारी दयनीय स्थिति पर आँसू बहाये हैं—; अपने उन मित्रों से, जो सुधार के समर्थक होने पर भी बहुत ज्यादा आगे बढ़ने से डरते हैं, लड़ता रहा हूँ। फिर भी आपको ये चन्द बातें लिखने को बाध्य हुआ हूँ।

आपने पुरुषों के अत्याचार की जो कहानियाँ लिखी हैं, वे ठीक हैं। मैंने तो उनसे भी घृणित अत्याचार देखे हैं और कलेजा थाम कर रह गया हूँ। जहाँतक मुझसे बन पड़ा है सदैव मैंने मातृजाति को सहारा देने की चेष्टा की है। परन्तु हमारी माताओं और बहनों को सामाजिक आन्दोलन करते समय, व्यक्तिगत उदाहरणों का ध्यान न रख समाज के सामूहिक हित का ध्यान रखना चाहिए। मैंने तो इसे ऐसा ही सोचा है।

मैं स्वयं देश, काल, जाति सबका भेद तोड़कर विवाह करने का पक्षपाती हूँ, फिर भी इसके लिए सामाजिक आन्दोलन करना उचित नहीं समझता। आप यदि व्यक्तिगत उदाहरणों की तह में पैठकर, समाज में क्या दोष आ गया है, यह देखें तो आपको मालूम होगा कि ये अभागे पुरुष क्रोध की अपेक्षा दया के ही पात्र अधिक हैं। जिसको अंग्रेज़ी में 'सेंस ऑव प्रपो-रशन' (संतुलन और सामञ्जस्य की भावना) कहते हैं, वह नष्ट हो गया है। सारे समाज की रचना ही दूषित हो रही है; इसमें पुरुषों और स्त्रियों—दोनों का भाग होते हुए भी, इसकी प्रधान ज़िम्मेदारी अलग-अलग नहीं डाली जा सकती। जैसे उदाहरण आपने पुरुषों की ज़बर्दस्ती के दिये हैं वैसे तो स्त्रियों की ज़बर्दस्ती के भी मैंने अपनी आँखों देखे है। फिर भी मुझे कभी उन स्त्रियो पर क्रोध नहीं आया। मैं जानता हूँ कि वह परिस्थिति का, वातावरण का दोष है, न पुरुष का न स्त्री का। हमे एक-दूसरे की निन्दा और भर्त्सना की जगह समाज की रचना ही नये सिरे से करने का प्रयत्न करना चाहिए; उसे ही बदलना चाहिए। जब समाज के मूल में घुसे हुए दोष दूर हो जायँगे तो उसमें उत्पन्न होनेवाले स्त्री-पुरुष स्वतः ठीक हो जायँगे। हमारा समाज तो उस भूमि के समान हो गया है जिसमें उपज की शक्ति ही नाममात्र को रह गई है और उसमें भी जो अधमरे, अशक्त पौधे उगते हैं उनको भूमि के कीड़े भीतर ही भीतर चाल डालते, खोखला और तत्त्वहीन कर देते हैं। उनका रूप-ढाँचा मात्र क़ायम है। इन पौधों का अन्न खाकर, इनकी अपौष्टिकता और सारहीनता पर इन्हें गाली देना व्यर्थ है—इससे क्या लाभ होगा? हमें तो खेत को ही नये सिरे से तैयार करना होगा।

हमारी मातायें और बहनें आज कैसी मर्मान्तक वेदना का जीवन विता रही है, यह क्या कहने की बात है? मैं तो जब-जब सोचता हूँ

अपने को अन्धकार में पाता हूँ। कभी-कभी क्रोध उमड़ पड़ता है। मनमें आता है, सचमुच ऐसे पुरुष नष्ट हो जाते तो अच्छा होता। पर जब शान्त होकर सोचता हूँ तो देखता हूँ कि इसमें उनका भी बहुत दोष नहीं है। वे निरुपाय हैं, अज्ञान हैं; परिस्थिति ने उनकी बुद्धि निकम्मी कर दी है; वे दया के पात्र हैं, क्रोध के नहीं। सन्तोष होता है जब मैं देखता हूँ कि हमारी बहनें, इस हीनावस्था में भी, त्याग और तपस्या की साधना की भाँति, अन्धकार में चिनगारी की तरह चमक रही हैं। उनकी दया, उनकी करुणा, उनकी तपस्या, उनकी ममता और उनके स्नेह एवं प्रेम से ही समाज के अभागे पुरुषों का उद्धार होगा। उनके स्नेह और आशीर्वाद, उनकी लगन और मंगल-कामना पर मुझे बड़ा भरोसा है। इसलिए जब उन्हें विचलित होते देखता हूँ तो ऐसा जान पड़ता है कि हमारी धरोहर में जो कुछ बचा था वह भी नष्ट होता जा रहा है। पुरुषों ने अपना पुरुषत्व खो दिया है, अब स्त्रियाँ अपना स्त्रीत्व खो दें तो हम रास्ते के भिखारी भी न रह सकेंगे। मैंने स्वयं कई विधवा बहनों की मौन तपस्या देखी है; उनके दुःख में रोया हूँ। जब ऐसी बहनों का मुँह देखता हूँ तो अपने को कितना तुच्छ बोध करता हूँ। कितना ये सहती हैं! यह तो मैं चाहूँगा कि उनका वह दुःख दूर हो जाय पर यह कभी न चाहूँगा कि उनमें दुःख सहने की, नीरव तपस्या और साधना की जो विभूति है, जो शक्ति है वही नष्ट हो जाय। आस्कर वाइल्ड[1] के इन शब्दों में मुझे विश्वास है—

"जहाँ दुःख है वहाँ पवित्रता है किसी दिन मनुष्य इसे समझेगा।"

इसलिए मैं तो यही चाहूँगा कि आप जो-कुछ लिखें, प्रतिद्वंद्विता और

१. अँग्रेजी भाषा का एक सुन्दर लेखक।

बदले के भाव से नहीं वरन् शान्त होकर लिखें। हमारे जीवन में ऐसे वेदनापूर्ण अवसर आते हैं जब भीतर का दुःख, अन्तर की आग हमें चंचल, अशान्त और अस्थिर बना देती है। हमें उस आग को जगाये रखकर भी संयम से, आत्म-दमन से, दृढ़ता पर शान्ति से काम लेना चाहिए। मैं युवक हूँ; यौवन के उत्साह का उपासक हूँ; विद्रोह को अपना धर्म मानता हूँ। मैं तो चाहूँगा कि हमारी बहनें भी विद्रोह करें, पर यह विद्रोह उस दल के प्रति न हो, जिसके साथ उनको मार्ग काटना है, वरं समाज की दूषित रचना के प्रति हो। जड़ ठीक हो जाय, मिट्टी उपजाऊ हो जाय तो सुन्दर पौधे अपने आप लहलहाने लगेंगे।

आपका..................

[२]

उत्तर

१४. २. २९.

सादर प्रणाम।

कृपापत्र के लिए कोटिशः धन्यवाद। आपने जो-कुछ लिखा है वह यथार्थ है—सत्य है। पर मैं कहती हूँ कि क्या पुरुषों के अत्याचारों के प्रति दया दर्शाना उनके भावों के उत्तेजन देना नहीं है? मान लीजिए यदि उनके अत्याचारों का ख़याल न किया जाय, दया दिखलाई जाय तो क्या इससे उन्हें दुगना उत्साह प्राप्त न होगा? वे क्या इस तरह स्त्रियों को और भी कुचल देने की चेष्टा न करेंगे? पुरुष समर्थ हैं, वे यदि चाहें तो बात की बात में सारे समाज की रचना नये सिरे से कर डालें। इसीलिए मैं समझती हूँ कि सारी सामाजिक बुराइयों के लिए पुरुष ही दोषी हैं। लेकिन मेरा यह कहना भी नहीं है कि सबकी-सब

कहीं-कहीं भारी अस्वाभाविक शिथिलता पायेंगे। आपकी इस बात को यथार्थ समझकर मैं यहाँ दोहराती हूँ—"हमारे जीवन में वेदनापूर्ण ऐसे अवसर आते हैं जब भीतर का दुःख, अन्तर की आग हमें चंचल, अशान्त और अस्थिर बना देती है!" पर मुझे यही मुश्किल मालूम पड़ रहा है कि उस आग को जगाये रखकर भी संयम से, आत्म-दमन से, दृढ़ता पर शान्ति से कैसे काम लिया जाय? हाँ, यह बात ज़रूर ठीक है कि "हम विद्रोह करें, पर यह विद्रोह उस दल के प्रति न हो जिसके साथ हमें जीवन का मार्ग काटना है, वरन् समाज की दूषित रचना के प्रति हो।" लेकिन हमें यहाँ भी एक मुश्किल सता रही है कि अगर हम उस रचना के प्रति विद्रोह करेंगी तो आखिर वह रचना किस पर लागू होगी? जो दोषी होगा उसी पर तो।...............

आपकी बहन

....

[३]

प्रत्युत्तर

१९-२-२९

मैंने जो कुछ आपको लिखा था वह आपके विचारों के प्रति द्वेष या पक्षपात से उद्बुद्ध होकर नहीं लिखा था; केवल मेरा व्यक्तिगत मत था। सामाजिक रूप से आन्दोलन करने के किसी वर्ग के अधिकार को मैं अस्वीकार नहीं करता पर बहुत कष्ट सहकर भी मैंने तो यही सीखा है कि—प्रेम का अधिकार ही सर्वोत्तम और सर्वोत्कृष्ट अधिकार है। यही नहीं जब-जब प्रेम और अधिकार की प्रतिद्वन्द्विता का मौका दुनिया में

आया है, प्रेम ही विजयी होता रहा है। मेरा मत है कि अधिकार मिल जाने से ही स्त्रियों की समस्या हल नहीं हो सकती। स्त्री हृदय की प्रतिनिधि है; जगत् में जो कुछ रहस्यपूर्ण, पवित्र, कोमल और अत्यन्त मानवतामय (human) है; उसकी प्रतिनिधि है। अधिकार से उसकी तृषा, उसकी भूख शान्त नहीं हो सकती। वह प्रेम से ही विजय करती है और प्रेम से ही जीती जा सकती है। यहाँ प्रेम शब्द को मै वर्तमान दूषित अर्थ मे प्रयुक्त नहीं कर रहा हूँ, वरन् उसके उस सच्चे अर्थ मे प्रयुक्त कर रहा हूँ जिससे मनुष्य मनुष्य है।

आपका यह समझना बिलकुल भ्रमपूर्ण है कि पुरुषों के चाहने से ही वर्तमान सब बुराइयाँ दूर हो जायँगी। पहले का किसी का दोष रहा हो पर इस समय सामाजिक सुधार में स्त्रियाँ पुरुषों से कहीं पीछे हैं और अधिक बाधक हो रही हैं। स्त्रियो का सम्पूर्ण वर्तमान आन्दोलन पुरुषों का ही आरम्भ किया हुआ है। और आज भी पुरुष ही उसका बहुत कुछ सञ्चालन कर रहे हैं। अभीतक बहुत कम शिक्षित पुरुषों ने इसका विरोध किया है। मैं अपने व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर कह सकता हूँ कि किसी घर में सुधार का आरम्भ होने पर स्त्रियों की ओर से ही तूफ़ान खड़ा किया जाता है। स्त्रियाँ स्वभावतः पुराण-प्रिय होती हैं। मेरे कई सुधारक मित्रों को घर मे सुधारों का प्रवेश कराने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा है। यहाँ तक कि एक का तो जीवन ही नष्ट हो गया।

ख़ैर; इन सब बातों के बाद भी मेरा हृदय स्त्रियों के प्रति भक्ति और उपासना के भावो से पूर्ण है। पुरुष और स्त्री का तो प्रश्न ही व्यर्थ है, दोष परिस्थिति का, हमारी मानसिक गुलामी और असहाय अवस्था का है। स्त्रियो की पीड़ायें, उनके त्याग महान् हैं पर अपना

पक्ष उपस्थित करते समय विपक्ष का भी ध्यान रखना चाहिए। पुरुषों के कष्ट भी कम नहीं हैं। आजकल जीवन की सबसे गम्भीर समस्या आर्थिक है और आप जानती हैं कि घर के पीछे पुरुषों को कितने अपमान सहने पड़ते हैं; कितने मालिकों की ठोकरें खानी पड़ती हैं। कितनी बार घर की सुख-सुविधा के लिए आत्म-सम्मान बेचकर, खून के घूँट पीकर नौकरियाँ करनी पड़ती हैं। पुरुष यह पीड़ा क्यों झेले? उसे अपने भरण-पोषण के लिए बहुत थोड़े की आवश्यकता है; वह मौज से, निर्द्वन्द्वतापूर्वक घूम सकता है पर इस आत्म-सुख का वह गार्हस्थ्य जीवन मे बलिदान करता है। गार्हस्थ्य जीवन अन्योन्याश्रम (Interdependence) अर्थात् परस्परावलम्ब का जीवन है। इसमे पुरुष की पीड़ा स्त्री को और स्त्री की पीड़ा पुरुष को समझनी पड़ेगी। दोनों एक दूसरे के पूरक है। जब तक ऐसा न होगा, न स्त्री सुखी हो सकती है, न पुरुष सफल हो सकता है।

आप ज़रा शान्त होकर अपने हृदय को सम्भालें। जो आँधी मे उड़ नही जाता, जो तूफान मे भी स्थिर रहता है, वही महान् है। मैं यदि अपने अनुभव इस सम्बन्ध में सुनाऊँ तो मैं भी स्त्रियों के प्रति विरोध-भाव जाग्रत कर सकता हूँ पर अत्यन्त कटु अनुभवों के बाद भी इस पूज्य मातृजाति में मेरा विश्वास अटल है। मुझे अपने विचारों को आप पर लादने का, आपके विचारों को दबाने का कोई अधिकार नहीं। आज पश्चिम मे जो कुछ हो रहा है, उसके प्रति भी मेरी भावना ख़राब नही है। मैं तो स्त्रियों को अपने-आप अपना आन्दोलन चलाते और अपना संचालन करते देखना चाहता हूँ। दूसरे को ज़बर्दस्ती अपने मार्ग पर चलाने का अधिकार किसीको नहीं है परन्तु कहीं ऐसा न हो कि ग़लत-फ़हमियाँ बढ़ती जायँ और अन्त में स्त्रियो को पुरुष-विरोधी संघ

और पुरुषों को स्त्री-बहिष्कार-मण्डल खोलने की ज़रूरत महसूस हो। यूरोप में ऐसा एकाध जगह हो भी रहा है। हमारे लिए वह दिन एक दुर्भाग्य का दिन होगा जब ऐसी घटना घटित होगी। इसका उपाय यही है कि पुरुष-स्त्री दोनो एक-दूसरे के प्रति जो कुछ कहें-सुनें, अपनापन का भाव रखते हुए कहे-सुनें। एक दूसरे को समझने और समझाने की, आपस की गलत-फ़हमियों को दूर करने, परस्पर सहायता, सहयोग और सहानुभूति की नीति धारण करें।

संभव है, पुरुष होने के कारण, आप मुझे भी पक्षपात से दूषित समझ ले। इसे मैं अपना दुर्भाग्य ही कहूँगा पर इस लाञ्छन को बर्दाश्त करके भी मै तो अन्त तक यही कहता रहूँगा कि आप जो लिखे सोच-समझकर, शांत होकर लिखें। लेखनी बहुत महत्वपूर्ण वस्तु है। यह याद रक्खें कि जो कुछ आप लिखेंगी, उसका असर समाज पर पड़ेगा।

आपने स्वयं अपने मन की अशान्ति की बात स्वीकार की है। आप उस अशान्ति को रोकिए। धारा के साथ बह जाने में आनन्द और आत्मोल्लास नहीं है; धारा के वेग को पराजित कर अपने को ऊँचा उठाने मे आनन्द है। सुख, हृदय की विशालता का नाम है और वह त्याग एवं तपश्चर्या, संयम एव बलिदान के बिना प्राप्त नही होता। मुझे दुःख होता है, जब मैं देखता हूँ कि स्त्री होकर भी, स्त्री का हृदय पाकर भी आप लोग यह भूल जाती हैं कि सुख का केन्द्र ग्रहण नहीं, दान है; अधिकार नहीं, आत्म-समर्पण है। स्त्री जगत की माता है और इसीलिए वह महान् है। उसमें माता का हृदय होना चाहिए। उसे साधना से स्खलित होते—गिरते देखते उसकी अपेक्षा कहीं अधिक दुःख होता है जितना एक पुरुष को गिरते देखकर होता है।

[४]

तीसरे पत्र का जवाब

२६-२-२९

मैंने यह कभी नही लिखा या समझा कि आपने जो कुछ लिखा है वह मेरे विचारों से उद्‌बुद्ध होकर। यदि आपने मेरे पत्र के किसी अंश से ऐसा ख़याल किया है तो मैं उस अंश को लिखने के लिए लज्जित हूँ और क्षमा-प्रार्थी हूँ। पर मुझे जहाँ तक ख़याल है वहाँ तक कह सकती हूँ कि मैंने अपने पत्र में किसी ऐसे शब्द का प्रयोग नहीं किया है जिससे आप ऐसा ख़याल कर सकें।

आपने जो कुछ लिखा है उसे मैं मानती हूँ। यह तो ध्रुव सत्य है कि प्रेम का अधिकार ही सर्वोत्तम—सर्वोत्कृष्ट है। पर यहाँ पर मैं जो कुछ लिखूँ उसके लिए क्षमा-प्रार्थना करते हुए मैं पूछना चाहती हूँ कि आजकल जैसी धाँधली मची है उसे देखते हुए क्या यह माना जा सकता है कि इसे हम प्रेम से जीत लेंगे? यदि ऐसा भी माना जा सके तो इसके लिए बहुत बड़े धैर्य की आवश्यकता है और जैसा कि मैं लिख चुकी हूँ कि दुर्भाग्य या सौभाग्य से इतने धैर्य की क्षमता मुझमें नहीं है पर तो भी मुझे भान हो रहा है—मेरा हृदय स्वीकार कर रहा है कि आप जो कुछ कह रहे हैं, उसे मानना मेरा धर्म है—मेरा कर्तव्य है—और चाहे जैसे हो मुझे धैर्य रखना ही पड़ेगा।

हो सकता है कि मेरी यह धारणा (पुरुषों के चाहने से सामाजिक बुराइयों का दूर होना) ग़लत हो पर जहाँतक मैं समझती हूँ सामाजिक बुराइयों को दूर करने में पुरुषों का बहुत बड़ा हाथ है और अधिकांशतः इसकी ज़िम्मेदारी उन्हीं पर है। यह तो मैं क्या, दूसरी कोई भी निर्वि-

बाद मानेगी कि इस समय जो कुछ भी सामाजिक सुधार हुआ है उसमें पुरुषों का बहुत बड़ा हाथ है और इसीसे तो मैं कहती हूँ कि वर्तमान सामाजिक बुराइयाँ पुरुष बहुत शीघ्र ही कोशिश करके दूर कर सकते हैं।

बेशक सामाजिक सुधारों में स्त्रियाँ बाधक हो रही है। क्योंकि वे दुर्बल विश्वास की हैं; समझने की शक्ति नहीं है, इसलिए वे पुराण-प्रिय भी हैं। पर मै तो यह कहना चाहती हूँ कि वे पुरुष, जो विद्वान् होने का दावा करते है, इन रूढ़ियों, कुप्रथाओं को क्यों मानें? यहाँ मैं प्रसंग-वश एक प्रसिद्ध घराने की बात लिखती हूँ जो कि बड़े अमीर इज़्ज़तवाले हैं—कुप्रथाओं को नहीं माननेवाले हैं। दुर्भाग्य से उनकी पत्नी महाशया ऐसी मिलीं जो रूढ़ियों में प्रबल विश्वास रखनेवाली थीं। पति महाशय को पत्नी के इन 'गुणों' पर एतराज था। उन्होंने इसके लिए उन्हें कई प्रकार से समझाया; अन्त में छोड़ देने की धमकी दी (यह एक ऐसा रामवाण उपाय है जिससे हरेक स्त्री कावू में आ सकती है) तब कहीं पत्नी उनकी आज्ञानुसार चलने लगीं, और आज वे ही एक सुप्रसिद्ध और भद्र महिला मानी जा रही हैं। तो क्या इससे हम यह नहीं मानें कि पुरुष सब कुछ कर सकते हैं?

मुझे मालूम होता है कि आप मुझमें पुरुषों के प्रति श्रद्धा के भाव की बहुत कमी समझते हैं। यदि सचमुच ही आप ऐसा समझते हों तो यह मेरा दुर्भाग्य है। पर वास्तव में बात ऐसी नहीं है। हाँ, आप ऐसा समझें भी तो आश्चर्य नहीं क्योंकि मैंने अबतक आपके सम्मुख अपने जिन विचारों को रक्खा है उनमें पुरुषों के प्रति विद्वेष ही दिखाया गया है। पर पुरुषों के प्रति श्रद्धा के भावों की मुझमें कमी नहीं है; हाँ मेरा अशान्त हृदय जब कुछ भी देखता है तो एकबारगी भड़क उठता है। मैंने

अबतक पुरुषों की जो ज्यादतियाँ देखी हैं उनसे मेरा हृदय दहल उठा है। कुछ पुरुषों से तो मुझे खूँख्वार शेर से भी ज्यादा डर लगता है। इसलिए मेरी लेखिनी से बरबस ही पुरुषों के प्रति विद्रोह की बाते निकल पड़ती हैं। यह मेरा दुर्भाग्य है कि अबतक जितने पुरुषों का परिचय मैं पा सकी हूँ, किसीके हृदय को विशाल, निर्भीक तथा स्त्रियों के प्रति स्नेह के भावों से भरा हुआ नहीं पाया। इसलिए यदि पुरुषों के प्रति मेरे मन मे विद्रोह की बातें उठें तो वह स्वाभाविक ही कहा जा सकता है। हाँ, दो-चार पुरुष मेरे देखने में ऐसे आये हैं जिन्हें मैं आदर-भक्ति की दृष्टि से देखती हूँ तथा उनका गुण-गान करने से भी नहीं चूकती।

एक बात आपने अवश्य मार्के की लिखी अर्थात् जितने अपमान, जितनी ठोकरें पुरुषों को सहनी पड़ती हैं वे सिर्फ़ 'घर' अर्थात् स्त्रियों के लिए। पर मैं इसे नही मान सकती। पुरुषों ने ही तो उन्हें पंगु बना दिया। अच्छा, विद्रोह की बातें छोड़ हम सरसरी निगाह से देखें तो हमें मालूम होगा कि स्त्रियो का पालन करना पुरुषों का सर्वश्रेष्ठ कर्तव्य है क्योकि गृहस्थी के भीतर दो ही कर्णधार होते है—एक पुरुष, दूसरा स्त्री! हमारे पूर्वजों ने बहुत दूर तक का ध्यान रखकर गृहस्थी के भीतर संचालन का भार स्त्रियों को दिया और बाहरी पुरुषो को। पुरुषों का काम हुआ द्रव्यादि लावें और स्त्रियाँ उसका उचित उपयोग करके घर भर के व्यक्तियों को सुख-सुविधा पहुँचावे। पर इससे यह अर्थ नहीं निकला कि पुरुप स्त्री के ही लिए आत्म-सम्मान बेचकर द्रव्य पैदा करता है—इसे वह अपना कर्त्तव्य समझकर करता है, अपना गार्हस्थ्य जीवन सुखी बनाने के लिए करता है। यदि उसकी आवश्यकता बहुत थोड़े से पूर्ण हो सकती है और उससे वह निर्द्वन्द्व काल-यापन कर सकता है तो वह

स्त्री को छोड़ दे, उससे कोई सम्पर्क न रक्खे, फिर देखिए स्त्रियाँ अपने लिए कुछ करती है कि नहीं। आज भी नीची श्रेणी के लोगों में पुरुषों के रहते हुए भी स्त्रियाँ मेहनत-मजूरी करके पेट पालती हैं तो क्या भविष्य में पुरुषों के छोड़ देने पर नहीं कर सकतीं ? क्या उन्हे इसका भरोसा नहीं है ?

पर ईश्वर न करे कि इन आँखो से वह दिन देखना पड़े ! यहाँ की स्त्रियाँ सब कुछ चाहेंगी पर इतनी भीषण कल्पना नहीं कर सकतीं। आपका समर्थन करते हुए मैं भी दोहराती हूँ कि 'पुरुष की पीड़ा स्त्री को और स्त्री की पीड़ा पुरुष को समझनी चाहिए। इसीमे दोनो का कल्याण है न कि परस्पर के विद्रोह मे।'

मैं नहीं समझती कि एक भाई को अपनी बहन को समझाने या अपने विचारों को उससे मनवाने का अधिकार क्यो नहीं है ? जबकि वह समझता हो कि मेरी एक बहन ग़लत रास्ते पर चली जा रही है।

यूरोप की बात दूसरी है। आज स्त्रियों की स्वाधीनता का वहाँ कैसा दुरुपयोग किया जा रहा है ! वह स्वाधीनता किस काम की जिसमें धर्म को कोई स्थान नही। वहाँ की स्त्रियाँ जैसी उच्छृङ्खल हो रही हैं, उसे देखते हुए मैं अपने परवशतामय, परतन्त्र जीवन को लक्ष रख कर भी कह सकती हूँ कि वहाँ की स्वाधीनता से यहाँ की परतंत्रता लाख दर्जे अच्छी है, जहाँ अब भी सीता-सावित्री जैसी कुल-ललनायें पाई जा रही है, जहाँ अब भी गार्हस्थ्य धर्म सर्वश्रेष्ठ माना जा रहा है और सर्वसाधारण उसका पालन कर रहे है। आज यूरोप में ऐसे घराने बिरले ही होंगे जहाँ गार्हस्थ्य धर्म के नियमो का यथोचित पालन किया जा रहा हो। वहाँ की स्त्रियों के मन में सब कुछ पाकर भी न जाने कैसी ज्वाला धधक रही है कि वे नीचे से

नीचे गिरती जा रही हैं पर उन्हे इसका भान नहीं होता है। वहाँ पुरुष और स्त्री दोनों का यही हाल है। इसीलिए वहाँ पर 'स्त्री-बहिष्कार-मण्डल' और 'पुरुष-विरोधी-संघ' की आवश्यकता जान पड़ी है पर हम लोग तो यह नहीं चाहती। हम तो चाहती है कि हम भी मनुष्य मानी जायँ; हमारा भी कुछ अधिकार माना जाय; हम बिल्कुल ही पुरुषों के मन-माफ़िक घुमाई जाने वाली कठपुतली न समझी जायँ; हम लोगों की पुकार भी सुनी जाय; एकतरफ़ा डिग्री न हो। ऐसा क्यों हो कि पुरुष जन्म-भर व्यभिचारी रह कर भी समाज के मुखिया माने जायँ और स्त्रियाँ अनजाने में भी कुछ ऊँच-नीच कार्य करने से समाज के बाहर कर दी जायँ! आख़िर हम भी तो मनुष्य ही हैं; कबतक इतनी अवहेलना बर्दाश्त कर सकेंगी? ज़रा-ज़रा सी बातों के लिए लाँछित होना, कुत्तों के समान दुतकारा जाना हमारा हृदय कबतक बर्दाश्त कर सकता है? आप लोग यह न समझें कि आज की हालत में रहने वाली स्त्रियाँ प्रसन्न हैं। नहीं, हमारा तो यह हाल है कि पर्वत के भीतर ज्वालामुखी धाँय-धाँय जल रहा है और ऊपर पेड़-पत्ते-तृण सभी हरे हैं। आठ-दस बहनों के पत्र मेरे सामने पड़े हैं जिनमें उनके मन की अशान्ति झलक रही है; उनकी दुर्दशा अकथ है और उन सब बातों को देने की यहाँ जगह भी नहीं है क्योंकि पत्र आवश्यकता से अधिक लम्बा हो गया है। × ×

आपकी बहन

[५]

पिछले पत्र का उत्तर

अजमेर

४-३-२९

मेरे पास कोई नई बात लिखने की नहीं है। मुझे तो अपने इस

विचार पर पूरा विश्वास है कि प्रेम जीवन का वसन्त है; उसको लेकर आत्म-समर्पण करने में जो सुख है वह कोरी बाहरी बराबरी के अधिकार मे नहीं है। मेरा विश्वास है कि प्रेम से सब कुछ सम्भव है। धैर्य की ज़रूरत होती है पर धैर्य कोई बुरी चीज़ नहीं है। तपस्या और त्याग से सब-कुछ सम्भव है। मैं तो त्यागमय दुःख को सदैव साधारण लौकिक सुखो से अधिक अच्छा समझता आया हूँ। अपने को दूसरो के सुख के लिए, दुःख की वेदी पर बलिदान कर देने मे जो सुख, जो आत्मोल्लास होता है उसकी समता केवल बराबरी के अधिकार का बाह्य सामाजिक आचरण कभी नहीं कर सकता। × × × जीवन मे ऐसा अवसर आता है जब मनुष्य का हृदय किसी के चरणो पर सब कुछ चढा देने—आत्मसमर्पण करने—को उत्कण्ठित हो उठता है। यही विवाह का, यही प्रेम का, यही मैत्री का और यही समाज-रचना का आदि प्रेरक कारण है। इस कारण की उपेक्षा सम्भव नहीं है; उपेक्षा करने से पतन और निम्न कोटि के दुःखो का आगमन अनिवार्य है। यदि आप लोग संयम से काम लेंगी तो अपना उद्धार तो करेंगी ही पुरुषों को भी, अपने त्याग और तपस्या के बल पर, ऊँचा उठाने में समर्थ होंगी। मैं यह सब न तो पुरुष की हैसियत से लिख रहा हूँ, न स्त्री की। मेरे भीतर इसके बारे में जो वेदना है उसे स्पष्ट कर देना था। थोड़ा-सा कवि का हृदय मैंने पाया है अतएव उसमें स्वभावतः पुरुष (वीरता, साहसिकता) की अपेक्षा स्त्री (कोमलता, स्नेह, पवित्रता, त्याग) के लिए अधिक ऊँचा स्थान है और चूँकि मेरे हृदय में स्त्रियो के लिए पुरुषों से अधिक आदर है, इसीलिए मैं चाहता हूँ कि स्त्रियाँ सदैव 'स्त्रीत्व' की रक्षा में तन्मय दिखाई दे। पुरुषों ने अपना पौरुष छोड़ दिया है। अपने गुणों की रक्षा-द्वारा स्त्रियाँ उन्हें रास्ता दिखायेंगी।

आपकी पुरुषों के द्वारा ही सारे सुधार हो जाने की बात ठीक नहीं। गृहस्थाश्रम और समाज मे पुरुष की प्रेरक शक्ति स्त्री है, न कि स्त्री की प्रेरक शक्ति पुरुष। आज जो इतना शोर-गुल होने पर भी काम बहुत थोड़ा हो रहा है उसका कारण यही है कि हमारी मातायें, हमारी बहनें, हमारी पत्नियाँ और हमारी बेटियाँ, जीवन की दौड़ मे हमसे पीछे हैं। उन्हे तो रास्ता दिखाना चाहिए; आदर्श उपस्थित करना चाहिए और कम से कम पुरुषों के साथ-साथ तो होना ही चाहिए। स्त्रियाँ विद्रोह करें, स्त्रियाँ आगे बढ़कर परिस्थिति को सम्भालें, मैं भी यही चाहता हूँ पर ऐसा करते समय वे अपना वह सत्व, वह 'ग्रेस' (ओज) न खोदे, जिसके बिना वे कुछ नहीं है।

× × × मुझे दुःख है कि जीवन में कभी आपने किसी पुरुष को स्त्री के लिए सम्मान और भक्ति से पूर्ण नहीं पाया पर इससे आपको यह अनुमान नही कर लेना चाहिए कि सभी पुरुष ऐसे होते हैं। यह विचार तो वैसा ही है जैसा हमारे बहुत-से प्राचीन कवि, आचारशास्त्री और स्मृतियाँ, आत्म-वंचना के साथ, कह गई हैं—'स्त्रियो का विश्वास मत करो, उनसे बचे रहो; वे ताड़ना और शासन की अधिकारिणी हैं।'

मै तो एक ओर पुरुषो से कहूँगा कि अपनी कलुषित भावनायें छोड़ो और स्त्रियो के लिए मन में आदर उत्पन्न करो और दूसरी ओर स्त्रियो से कहूँगा कि तुम लोग हमे मातृत्व के वात्सल्य, भगिनीत्व के स्नेह एवं पत्नीत्व के सौख्य और प्रेम से सुसंस्कृत करो अन्यथा तुम भी नष्ट हो जाओगी।

[६]

[बीच के दो पत्र ग़ायब हो गये]

४-४-२९

... "साधनामय जीवन, तपस्या और त्याग को मैं अपना ध्येय मानती हूँ। लौकिक सुखों की अपेक्षा सदा ही मैंने इन बातों को श्रेष्ठ समझा और इनके अनुकूल बनने की चेष्टा की है। × × × बड़े-से-बड़े स्वार्थ को दूसरे के हितार्थ मैंने बिना किसी हिचकिचाहट के छोड़ दिया है। अब रही विद्रोह की बात, सो भी मैंने स्वार्थमय भावनाओं से प्रेरित होकर विद्रोह को नहीं अपनाया है। मैंने अपनी उन बहनों की दुर्दशा देखी जो घर की चाहार दीवारी के अन्दर बन्द रहकर दिन-रात आत्मीयों एवं स्वजनों की झिड़कियाँ, लाञ्छायें एवं डाँट-डपट सह रही हैं। मनुष्य होकर भी वे क्यों इतनी यातनायें सहें? यही सोचकर मैंने पुरुषों की ज्यादतियों के विरुद्ध आवाज़ उठाई। इसमें मेरा कोई स्वार्थ नहीं है।

मै मानती हूँ कि 'अपने सुख को, दूसरे के सुख के लिए, दुःख की वेदी पर बलिदान कर देने मे जो सुख, जो आत्मोल्लास होता है, उसकी समता केवल बराबरी के अधिकार का, वाह्य सामाजिक आवरण कभी नहीं कर सकता।' पर एक बात है। आप सोचें तो सही कि सभी महान् नहीं बन सकते। संसार स्वार्थों के लिए आकाश-पाताल एक कर रहा है। फिर यदि उसे आप त्याग का पाठ पढ़ायेंगे तो वह उसपर अमल नहीं करेगा। स्वार्थ छोड़ना आसान बात नहीं। इसलिए ऐसे बहुत कम मनुष्य पाये जायेंगे जो अपने स्वार्थों की अवहेलना हँसते-हँसते कर सकें। स्त्रियाँ भी किसी दूसरी सृष्टि की जीव नहीं, इसीसे मनुष्योचित अधिकार के लिए वे भी लालायित हैं। एक स्त्री होने की हैसियत से मैं उनके जितना

निकट पहुँच सकती हूँ, उतना पुरुष होकर आप लोग नहीं। बहुत कम सत्य बातें आपके सुनने में आई होंगी और जो कुछ आपने सुना या समझा है वह केवल अपने अनुभव अथवा अन्य लोगों के द्वारा, जो या तो अतिरंजित होंगी या संक्षिप्त।

जब कुछ स्त्रियाँ इकट्ठी होकर आपस में अपने दुःख की बातें करने लगती है तो उन्हें सुनकर कौन ऐसा सहृदय व्यक्ति होगा जो उनकी दुर्दशा पर दो बूँद आँसू न गिरा दे? ऐसी अभागिनी बहनों के बीच पहुँचने का मुझे अवसर आया है जिन्हें पहले तो मैं बड़ा सुखी समझती थी पर जब उनसे घनिष्ठता बढ़ी तब मुझे मालूम हुआ कि वे कैसी विपदा में है। बाहरी या एक-दो दिनों तक देखने वाला व्यक्ति उनके दुःखों को नहीं जान सकता। वे अपने सारे दुःखों को अपने हृदय में दबाये रखती हैं। उनसे बातचीत करने पर मालूम होता है कि उनके जीवन का कुछ मूल्य नहीं; उनका जीना और न जीना दोनों बराबर है। इसीसे मैंने यह अनुभव किया है कि यदि उन्हे बराबरी का अधिकार दिया जाय तो सर्वांश में नहीं तो कुछ अंशों में तो अवश्य ही उनकी तकलीफ़ें दूर हो सकती हैं।

मैं नही चाहती कि स्त्रियाँ अपना 'स्त्रीत्व' खो दें। मैं इसके पक्ष में नहीं हूँ। हमारे लिए वह दुर्भाग्य का दिन होगा जिस दिन स्त्रियाँ अपना 'स्त्रीत्व' खो देंगी। पर मैं पूछना चाहती हूँ कि क्या बराबरी का अधिकार मिल जाने से ही उनके 'स्त्रीत्व' में धब्बा लग जायगा अथवा वे अपनी कोमलता एवं स्त्री-सुलभ गुणो को त्याग देंगी?

हाँ, किसी-किसी के जीवन में ऐसा समय आता है जब किसी के चरणो पर सब कुछ चढ़ा देने, आत्म-समर्पण करने को वह उत्कण्ठित हो उठता है। उस समय अधिकार-अनधिकार की बातें नहीं रह जातीं।

इसीका नाम 'प्रेम' है पर हम यदि आजकल अधिकांश व्यक्तियों का जीवन देखें तो उनमें 'प्रेम' नाम की कोई चीज़ नहीं पायेंगे। केवल स्वार्थ-भावना से ही प्रेरित होकर वे परस्पर सम्बन्ध बनाये हुए हैं और इस सम्बन्ध में भी एक को सारे अधिकार प्राप्त हैं और एक को कुछ नहीं। एक, दूसरे पर अत्याचार करता है पर उसका कुछ प्रतीकार नहीं है। इसीलिए मैं 'अधिकार' के लिए लड़ रही हूँ। इसी विषय पर एक महाशयजी से मेरी बात-चीत हुई थी। उन्होंने कहा—"स्त्रियाँ सब कुछ करें, उन्हें रोकता कौन है जी? वे स्वयं दब्बू बनी हैं।" पर जब उनकी स्त्री ने साधारणतः अपने आराम की बातें कहीं तब आप लगे गरजने-तरजने। यहाँ तक कि उसका बुरा हाल है; कठिन बीमारी है पर उसकी कुछ पूछ नहीं; मरे या जिये उन्हें मतलब?

× × ×

आपकी बहन..........

[७]

पिछले पत्र का उत्तर

१५-४-२९

× × आपका यह दावा तो मैं मानता हूँ कि एक स्त्री होने की हैसियत से आप स्त्रियों को अधिक समझ सकती हैं पर इस समझने के कारण ही मैं यह आशा रखने का अधिकारी हूँ कि आप अपनी दुखिया बहनो, और साथ ही अज्ञान भाइयों, के लिए अपने हृदय में स्नेह, ममता, करुणा और सहानुभूति धारण करेंगी—क्रोध, अभिमान, द्वेष और अधि-

कार के कटु भाव नहीं। दुनिया की ओर से, उसकी गति से उदासीन होना तो ठीक नहीं परन्तु केवल दुनिया की ओर देखकर, उसकी गति का अन्धानुसरण करके मानव-हृदय की पवित्रता और सरलता क़ायम न रह सकेगी।

स्त्रियों के एकत्र होकर बातें करते समय तो मैं उनके बीच नहीं रहा हूँ क्योंकि वर्तमान सामाजिक अवस्था में यह सम्भव नहीं है पर अनेक बहनो के हृदय में जलनेवाली वेदना की उस शिखा को मैंने बहुत नज़दीक से देखा है जो भीतर ही भीतर जलती है और बाहर लज्जा और पवित्रता के आवरण को चीरकर निकल नही पाती। ऐसी बहनो को जब-जब मैंने देखा है, अपने को उनके आगे बहुत ही तुच्छ अनुभव किया है। उनको सिर झुकाकर मन ही मन प्रणाम करता हूँ और हृदय उनके चरण धोने को उमड़ता भी रहा है। पर उनका वह पवित्र तेज, वह दूसरो को भी पवित्र कर देने वाली वेदना मुझे इतनी अमूल्य, इतनी महान् मालूम होती है कि कभी मैंने अधिकार-जैसी तुच्छ वस्तु के लिए उस महान् मातृत्व के प्रकाश को नष्ट करने की क्षमता अपने मे न पाई। मन ही मन रोया हूँ, उनकी अवस्था पर कलेजा मसोस कर रह गया है। ऐसी देवियों को कष्ट देने वाले समाज पर घृणा के भाव भी जाग्रत हुए है परन्तु उन तपस्विनी बहनो की तपस्या देखने मे भी मुझे सन्तोष रहा है। उन्हे देखकर गर्व से—गौरव से छाती फूल उठती है। यदि उनका दु:ख दूर करने मे सारा जर्जर समाज नष्ट हो जाय तो भी मुझे उतना दु:ख न होगा; उसकी मुझे उतनी चिन्ता नहीं है पर कहीं ऐसा न हो कि इन बहनों की तपस्या नष्ट हो जाय; कही वे विलास और भोग की धारा में बह न जायँ। आप लोग तो हम अभागे पुरुषो की ओर न देखिए; आप लोग तो अपने भगिनीत्व, अपने पत्नीत्व

और अपने मातृत्व की ओर देखिए। आज विश्व में जो कलुष, जो पाप बढ़ रहा है, द्वेष-दम्भ की जो आँधी चल रही है राजनीतिज्ञ कमज़ोर देशों को दबाकर समूचा निगल जाने का, युद्ध की विराट तैयारी का जो षड्यंत्र रच रहे हैं, उसमें भी पश्चिम की स्त्रियाँ भाग लेकर उनका विरोध कर रही हैं और उनके प्रयत्नों से शान्ति-स्थापना में बड़ी सहायता मिली है। यद्यपि यूरोपीय बहनों की तेजस्विता, साहस, वीरता और सामाजिक निर्भीकता का मैं अनन्य प्रशंसक हूँ फिर भी कोमलता, मातृत्व, क्षमा, दया, स्नेह और करुणा को उनपर श्रेष्ठता देनी ही पड़ेगी। हमारी माँओ और बहनों में दोनों का समन्वय, दोनों का मिलाप होना चाहिए; एक को खोकर दूसरे को ग्रहण करना उचित न होगा। यदि आप मेरी बात पर विश्वास रख सके तो मैं कहूँगा कि स्त्री-पुरुषों की वर्तमान कटुता बहुत-कुछ ग़लतफ़हमी से ही उत्पन्न हुई है। इसमें पुरुषों और स्त्रियों का उतना दोष नहीं है जितना परिस्थिति और हमारी ग़ुलाम मनोवृत्ति का है।

मैंने यह कभी नहीं लिखा कि बराबरी का अधिकार मिल जाने से स्त्रियाँ 'स्त्रीत्व' खो देंगी। मैं तो समाज में स्त्रियों को पुरुषो से भी अधिक महत्वपूर्ण अंग समझता हूँ और सच पूछिए तो इसीलिए इतना लिखा है। पर मैं यह नहीं समझता कि बराबरी का निश्चित्त रूप क्या है? क़ानून मे संशोधन होना चाहिए; सामाजिक मामलों एवं उत्तराधिकार के प्रश्नों में स्त्री का हाथ होना चाहिए, इसे तो सभी विचारवान मानते हैं। इसके लिए प्रयत्न भी हो रहा है पर अधिकार का रोग कहीं इतना न बढ़ जाय कि घरेलू जीवन की नींव उखड़ जाय; गृहस्थ की सुख-शान्ति चौपट हो जाय। याद रखिए, कुटुम्ब समाज की आरम्भिक श्रेणी है। यदि कौटुम्बिक जीवन सुखी, शान्त न रहा तो समाज ही नष्ट हो जायगा। इसके लिए सबसे अच्छा उपाय यही है कि पुरुष स्त्रियो

को गाली न देकर उन्हें समझें और स्त्रियाँ पुरुषों को गाली न देकर उन्हें समझें। प्रेम और सहानुभूति से ही यह समस्या हल हो सकती है।

× × ×

[८]

पिछले पत्र का उत्तर

२०–४–२९

............हाँ मैं तो ज़रूर ही त्याग और बलिदान के भावों को श्रेष्ठ समझती हूँ पर मैंने तो इसलिए लिखा था कि सभी स्त्रियाँ साधना-मय जीवन बिताने को तैयार नहीं; इसलिए अपनी इच्छा के विरुद्ध जीवन होने से वे दुखी हैं और उस दुःख को दूर करने के लिए ही उन्हें 'अधि-कार' की आवश्यकता जान पड़ी है। इसलिए उन्हें 'अधिकार' मिलना चाहिए। इससे घरेलू जीवन की नींव नहीं उखड़ेगी और न गृहस्थ की सुख-शांति चौपट होगी वरन् दोनों का जीवन अधिकाधिक सुखी होगा। आजकल जैसा दाम्पत्य जीवन पाया जाता है, उनका दाम्पत्य जीवन उससे कहीं ज्यादा सुखी होगा। आजकल से ज्यादा वे एक दूसरे के दुःख-सुख को समझेंगे; परस्पर प्रेम में अधिक श्री-वृद्धि होगी।

आप उन अभागिनी बहनों के दुःख को समझते हुए भी—उनके दुःख मे समवेदना रखते हुए भी—डरते हैं कि कही ऐसा न हो कि इन बहनो की "तपस्या नष्ट हो जाय; कहीं वे विलास और भोग की धारा में न बह जॉय।" पर आप विश्वास रक्खे ऐसा डर एकदम नहीं तो बहुत अंशों में व्यर्थ हो सकता है। उदाहरण के लिए आज विधवा-विवाह इतनी कम

मात्रा में क्यों हो रहा है? इसका साफ़ जवाब है हमारा वातावरण, हमारी महिलाओं की मनोवृत्ति! मुझे तो बदचलन बहनों पर आश्चर्य होता है कि कैसे वे इस तरह के वातावरण मे रहकर भी बदचलन हो जाती हैं! पर ऐसी बहनें बहुत कम देखने में आती हैं। कई बाल-विधवा बहनें—विधवा-विवाह की कट्टर समर्थक होते हुए भी—अपना ही विवाह करने को राज़ी नहीं। इसलिए आप डरें नहीं। वे सामान्य अधिकार माँग रही हैं अपना दुःख दूर करने के लिए; बेजा स्वतन्त्रता के लिए नहीं। मैं स्वयं बेजा स्वतन्त्रता की विरोधिनी हूँ क्योंकि कुछ बहनें अपनी स्वतन्त्रता का इस तरह दुरुपयोग कर रही हैं कि उनकी चाल-ढाल को देखकर भविष्य अन्धकार से आच्छादित दिखाई पड़ता है और इसमें हमारी शिक्षिता कहलाने वाली कालेजी बहनों का बहुत बड़ा हाथ है। मुझे इन बहनों के ऊपर बड़ा क्षोभ होता है। तारीफ़ तो यह कि अपनी बातों के आगे वे किसी की बातों की क़द्र करना जानती नहीं। और ऐसी हालत में, मेरी समझ में, उनकी विद्वत्ता का कोई मान ही नहीं रह जाता है। वे कालेज से विलासिता की साक्षात् मूर्ति ही निकलती हैं। उनसे देश, समाज या जाति क्या आशा कर सकती है? वे बहुत अंशो में पश्चिम का अन्ध अनुसरण करती हैं पर वह भी अवगुणों का ही। पश्चात्य महिलायें, जीवन में विलासितापूर्ण होते हुए भी, अपने देश का कितना ध्यान रखती हैं? पर यहाँ हमारी कालेजी बहनें इस तरफ़ बहुत कम ध्यान देती हैं और इसी कारण अधिकांश व्यक्ति 'अधिकार' के नाम से भड़कते हैं। हर्ष है कि ऐसी बहनों की संख्या बहुत ही न्यून है। खैर—मुझे तो विश्वास है कि स्त्रियाँ किसी-न-किसी दिन अधिकार पायेंगी और उनके दुःखों का अन्त होगा?

× × ×

[९]

[बीच के पत्र नहीं मिल सके]

१८–६–२९

................आप इसे लिखते समय यह क्यों भूल जाते हैं कि जहाँ मनुष्य अपना जीवन न्यौछावर कर देगा वहाँ अधिकार के झगड़े-का क्या प्रयोजन ? वहाँ तो किसी तरह अधिकार का प्रश्न ही नहीं उठ सकता है। अधिकार का प्रश्न तो वहीं उठेगा जहाँ परस्पर प्रेम का अभाव होगा। आज स्त्रियों मे 'अधिकार'-'अधिकार', का हल्ला उठ रहा है वह केवल प्रेम के अभाव मे। उनका स्वयं कोई ऐसा प्रेमी नहीं जिसके चरणों पर वे अपना जीवन समर्पण कर दें। न स्त्रियों को पुरुषों के प्रति प्रेम है और न पुरुषों को स्त्रियों के प्रति ! इसलिए इतना हल्ला-गुल्ला मचा है। गृहस्थ-धर्म का पालन कहाँ हो रहा है ? सबसे ज्यादा दुःखपूर्ण तो उनका दाम्पत्य जीवन है। नाई–ब्राह्मणों के द्वारा ब्याह होने से कितने भारतीय दम्पती सुखी हैं ? लोग कहते हैं कि भारतीय स्त्रियाँ पति के हजार कष्ट देने पर भी उनका कुछ अमंगल कतई नहीं चाहतीं। यह एकदम फिजूल बात है। मैंने इसे कभी सच नहीं माना कि प्रेम के कारण ही वे उनका अमंगल नहीं चाहतीं। वे क्यों उनका अमंगल नहीं चाहतीं इसका सबसे बड़ा कारण तो उनका संस्कार है और दूसरा उनका स्वार्थ। वे खूब अच्छी तरह जानती हैं कि पति के मंगल और अमंगल से उनकी दीन-दुनिया बनने-बिगड़ने वाली है। इसीलिए हजार कष्ट पाने पर भी कुछ बुरा नहीं सोच सकतीं। उनकी अज्ञानता में ही उनका जीवन-सूत्र किसी के साथ बाँध दिया जाता है तो फिर उनका साथ न करें तो क्या करें ? उनको कोई दूसरा मार्ग भी तो नहीं है। पर यहाँ पर उनकी मंगलकामना

की तह में जो लोग प्रेम का स्थान पा जाते हैं वे भूल करते हैं। और यदि उनके कहने के अनुसार मान भी लिया जाय तो वहाँ प्रेम का एक-दम दूसरा ही अर्थ लगाना पडेगा, उसका कायापलट ही हो जायगा।

× × × जब स्त्री-पुरुष में परस्पर प्रेम न हो तो ग़लतफ़हमी का बढ़ना अवश्यम्भावी है और ऐसी हालत में यदि समाज ने एक को सबल और एक निर्बल बना दिया है तो निश्चय ही सबल का निर्बल पर अत्याचार होगा और यह अत्याचार सहते-सहते निर्बल यदि ऊब उठे और सबल के अत्याचारो के प्रति आवाज़ उठाये तो इससे आश्चर्य ही क्या है? पर ऐसी हालत में भी यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता कि अगर किसी का किसी के साथ गाढ़ा स्नेह हो और दोनो परस्पर एक-दूसरे को अपना ही अंश समझते हों तो भी वहाँ यह अधि-कार रूपी झगड़ा पहुँचेगा।

[१०]

बीच के पत्र नहीं मिल सके।

९-११-२९

.........हिन्दू कन्या तो जन्म से ही त्याग करना सीखती है। वह देवता के चरणो पर चढी हुई कली के समान है! उसका सारा जीवन आत्म-समर्पण और बलिदान का जीवन है। कभी माता-पिता के चरणो मे, कभी पति के लिए, बाद में संतान एवं कुटुम्ब की हित-चिन्ता में वह अपने जीवन का सम्पूर्ण सत्व अर्पण कर देती है—जैसे पारिजात का वृक्ष स्वतः अपने समस्त फूलो को, एक-एक करके, पृथ्वी माता के चरणो पर चढा देता है!

तुम विवाह के कारण दुखी न होना; दुखी होना तो भी तुम्हारी आँखो से आँसू न निकले। हृदय की आग को संयम के आवरण-द्वारा हृदय मे ही रख सकेगी तो तुम एक ज्योतिर्मय आदर्श बनकर दीन-हीन अशक्त बहन-भाइयो को अपनी ओर खींच सकोगी। तुम आदर्श से गिर गई तो मेरे, तुम्हे बहन कहने के, अभिमान को बड़ा धक्का लगेगा। तुम्हारा विरोध, तुम्हारा दुःख तबतक सार्थक था, जबतक तुम्हारा जीवन तुम्हीं तक था। अब समाज के स्वीकृत बन्धनो-द्वारा तुम एक प्राणी के जीवन के साथ मृत्यु तक के लिए बाँध दी गई हो। अब तुम केवल अपने लिए हँस या रो नहीं सकती। अब तुम कुमारीत्व की सुनहली स्वतन्त्रता से नारीत्व के कठोर शासन मे आ गई हो। तुम्हे अधिकार था कि अनिच्छा होने पर अपनी समस्त शक्ति से तुम उसे अस्वीकार कर देती पर जब तुमने (किसी भी कारण से ही) वह पथ नहीं पकड़ा तो तुम्हारी जिम्मेदारी बढ गई है। मुझे आशा है कि तुम हिन्दू नारी को समझती हो और उसके उच्च उत्सर्ग की गाथा मे, आवश्यकता पडने पर, वह अध्याय लिखोगी जो मुझे जैसे हजारो को तुम्हे बहन कहकर पुकारने के लिए लालायित और उत्कण्ठित कर देगा।"

तुम्हारा भाई

....

'मण्डल' की 'सर्वोदय माला' की पुस्तकें

[नोट—X चिह्नित पुस्तकें अप्राप्य हैं]

१—दिव्य जीवन	।=)	२७—क्या करें ?	१।)
२—जीवन-साहित्य	१।)	२८—हाथ की कताई-बुनाई X	॥-)
३—तामिल वेद	॥।)	२९—आत्मोपदेश X	।)
४—व्यसन और व्यभिचार	॥।=)	३०—यथार्थ आदर्श जीवन X	॥।-)
५—सामाजिक कुरीतियाँ X	॥।)	३१—जब अंग्रेज़ नहीं आये थे	≡)
६—भारत के स्त्री-रत्न X	३)	३२—गंगा गोविंदसिंह X	॥=)
७—अनोखा X	१।=)	३३—श्रीरामचरित्र X	१।)
८—ब्रह्मचर्य विज्ञान	॥।=)	३४—आश्रम-हरिणी X	।)
९—यूरोप का इतिहास X	२)	३५—हिंदी मराठी कोष X	२)
१०—समाज-विज्ञान	॥।)	३६—स्वाधीनता के सिद्धान्त X	॥)
११—खद्दर का सम्पत्ति शास्त्र X	॥।≡)	३७—महान् मातृत्व की ओर X	॥।=)
१२—गोरों का प्रभुत्व X	॥।=)	३८—शिवाजी की योग्यता X	।=)
१३—चीन की आवाज़ X	।-)	३९—तरंगित हृदय	॥)
१४—दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह	१॥)	४०—नरमेध X	१॥)
१५—विजयी बारडोली X	२)	४१—दुखी दुनिया	।=)
१६—अनीति की राह पर	॥=)	४२—ज़िन्दा लाश X	॥)
१७—सीता की अग्नि-परीक्षा X	।-)	४३—आत्मकथा (गांधीजी)	१) १॥)
१८—कन्या-शिक्षा	।)	४४—जब अंग्रेज़ आये X	१।=)
१९—कर्मयोग	।=)	४५—जीवन-विकास	१।)
२०—कलवार की करतूत	=)	४६—किसानों का बिगुल X	=)
२१—व्यावहारिक सभ्यता	॥)	४७—फाँसी !	।=)
२२—अँधेरे में उजाला	॥)	४८—अनासक्तियोग	=) ≡) ।)
२३—स्वामीजी का बलिदान X	।-)	४९—स्वर्ण-विहान X	।=)
२४—हमारे ज़माने की गुलामी X	।)	५०—मराठों का उत्थान-पतन X	२॥)
२५—स्त्री और पुरुष	॥)	५१—भाई के पत्र	१॥)
२६—घरों की सफ़ाई	।=)	५२—स्वगत X	।=)
		५३—युगधर्म X	१=)